पाश्चात्य मध्ययुगीन राजनीतिक सिद्धांतों का इतिहास

लेखक
आर० डब्ल्यू० कार्लाइल
तथा
ए० जे० कार्लाइल

खण्ड-4

दशम शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के बीच
साम्राज्य एवं पोप-पद के सम्बन्ध
विषयक सिद्धांत

लेखक
ए० जे० कार्लाइल

अनुवादक
एम० पी० राय
अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

Scanned by CamScanner

पाश्चात्य मध्ययुगीन राजनीतिक सिद्धांतों का इतिहास

लेखक
आर० डब्ल्यू० कार्लाइल
तथा
ए० जे० कार्लाइल

खण्ड-4

दशम शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के बीच
साम्राज्य एवं पोप-पद के सम्बन्ध
विषयक सिद्धांत

लेखक
ए० जे० कार्लाइल

अनुवादक
एम० पी० राय
अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

Scanned by CamScanner

शिक्षा तथा समाज-कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय ग्रन्थ-निर्माण योजना के अन्तर्गत राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित।

©William Blackwood & Sons Ltd., English Version

© Rajasthan Hindi Granth Academy,
A–26/2, Vidyalaya Marg,Tilak Nagar, Jaipur–4 Hindi Version

This book is the Hindi translation of the IIIrd impression of the original English book entitled A History of Mediaeval Political theory in the west vol. IV—by R. W. Carlyle & A. J Carlyle and published by William Blackwood & Sons Ltd., the translation rights were obtained by the Commission for Scientific and Technical Terminology. It has been brought out under the scheme of production of University level books sponsored by Government of India, Ministry of education & Social welfare.

प्रथम-संस्करण : १९७४

मूल्य : 11·50

© सर्वाधिकार प्रकाशक के अधीन

प्रकाशक :
राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
ए-२६/२, विद्यालय मार्ग, तिलक नगर,
जयपुर–४

मुद्रक :
जयपुर मान प्रिन्टर्स,
बाणवालों का दरवाजा, चौड़ा रास्ता,
जयपुर

Scanned by CamScanner

प्रस्तावना

भारत की स्वतन्त्रता के बाद इसकी राष्ट्रभाषा को विश्वविद्यालय शिक्षा के माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रश्न राष्ट्र के सम्मुख था। किन्तु हिन्दी में इस प्रयोजन के लिए अपेक्षित, उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकें उपलब्ध नहीं होने से यह माध्यम-परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। परिणामतः भारत सरकार ने इस न्यूनता के निवारण के लिए "वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दावली आयोग" की स्थापना की थी। इसी योजना के अन्तर्गत १९६९ में पाँच हिन्दी-भाषी प्रदेशों में ग्रन्थ अकादमियों की स्थापना की गई।

मध्य युग में पाश्चात्य देशों में राजनीतिशास्त्र के सिद्धांतों के विकास का जो इतिहास डॉ० ए० जी० कार्लाइल द्वारा लिखा गया है वह इस विषय का प्रामाणिक एवं विद्वज्जन समादृत ग्रन्थ है। यह उसका चतुर्थ खण्ड है। आशा है इससे राजस्थान के अध्येता लाभान्वित होंगे।

प्रस्तुत पुस्तक इसी क्रम में तैयार करवाई गई है। इस पुस्तक की परिवीक्षा के लिए अकादमी प्रो० अम्बादत्त पंत अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग के प्रति आभारी है।

खेतसिंह राठौड़
शिक्षा मन्त्री, राजस्थान सरकार एवं
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

गोपीकृष्ण व्यास
निदेशक

Scanned by CamScanner

प्राक्कथन

इस ग्रन्थ में दसवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बीच पोप-पद एवं साम्राज्य के सम्बन्ध विषयक सिद्धान्तों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मैंने धार्मिक एवं लौकिक व्यवस्थाओं के सम्बन्धों एवं विरोधों के अधिक सामान्य विषय के विवेचन का प्रयत्न नहीं किया है। इनके कुछ पक्षों का विवेचन इस ग्रन्थ की प्रथम एवं द्वितीय पुस्तकों में किया जा चुका है तथा सम्भवतः इन पर हम अगली पुस्तक में पुनः विचार करेंगे, किन्तु मैं अपने पाठकों को स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि इस ग्रन्थ का विषय मध्ययुग का धार्मिक अथवा नागरिक इतिहास नहीं है किन्तु राजनीतिक सिद्धान्त हैं तथा हम लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के सम्बन्धों पर उतना ही विचार करेंगे जहाँ तक वे इन सिद्धान्तों के विकास को प्रभावित करने को प्रवृत्त होते हैं।

मैं वास्तव में नहीं समझता कि सामान्य रूप से इन सम्बन्धों का उतना ही प्रभाव राजनीतिक सिद्धान्तों पर पड़ा है जितना प्रायः सुझाया जाता है। मध्ययुग की महान् राजनीतिक अवधारणाएँ, जैसे विधि की सर्वोच्चता, समाज की सत्ता, शासक एवं शासित के बीच सांविधिक सम्बन्ध दोनों सत्ताओं के सम्बन्धों के प्रश्नों से मात्र प्रासंगिक रूप से ही प्रभावित थे। तथापि मेरे विचार में हमारे द्वारा ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में साम्राज्य एवं पोप-पद के सम्बन्धों का एक सम्पूर्ण पुस्तक में विवेचन करने का हमारा कार्य दो कारणों से उचित है। प्रथम, इस कारण से कि दो सत्ताओं द्वारा जिनमें एक लौकिक एवं दूसरी धार्मिक है, मानव समाज के नियंत्रण का सिद्धान्त उस विकास का प्रतिनिधित्व करता है जो प्राचीन एवं आधुनिक जगत् का विशिष्ट विभेद है। दूसरे, इस कारण से कि कभी-कभी यह सोचा जाता है कि मध्ययुग में धार्मिक जीवत की स्वतन्त्रता का अर्थ धार्मिक सत्ता की सर्वोच्चता समझा जाता था। मैं इस पुस्तक में इस सम्पूर्ण विषय के विवेचन का दावा नहीं करता। अगली पुस्तक में हम तेरहवीं शताब्दी में इसके विकास को प्रदर्शित करने की आशा करते हैं। मैंने इस पुस्तक में यह विचार करने का प्रयत्न किया कि ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी के महान् संघर्ष से कौन-कौन से प्रश्न उठे तथा इस समय में सर्वोच्चता के सिद्धान्तों के स्वरूप तथा विस्तार के बारे में हम किन निष्कर्षों पर पहुँचे।

मैं कायस कॉलेज केम्ब्रिज के श्री जेडब्रुक के प्रति आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिनने इसके प्रूफों को पढ़ा तथा जिनके संशोधनों एवं सुझावों के लिए मैं अत्यन्त आभारी हूँ यद्यपि इस विषय के विवेचन के अन्तिम स्वरूप अथवा इसमें व्यक्त निर्णयों के लिए उनका कोई दायित्व नहीं है। मुझे यहाँ यह आशा व्यक्त करने की अनुमति दी जाय कि शीघ्र ही उनके द्वारा किया गया ग्रेगोरी सप्तम का अध्ययन हम सबको सुलभ हो सकेगा।

Scanned by CamScanner

मैं प्रोफेसर ऑटो फॉन गीर्क के श्रेष्ठ ग्रन्थ, विशेषतः स्वर्गीय प्रोफेसर मैटेलेण्ड द्वारा अनूदित अंश के प्रति निरन्तर आभार व्यक्त करता हूँ। मध्ययुग के विशाल साहित्य पर कार्य करने का प्रयास करने वाले ही इसके चिरस्मरणीय विवेचन का महत्त्व तथा उसमें अत्यन्त प्रासंगिक रूप से भी दिये गए उल्लेखों की यथार्थता का अनुभव कर सकते हैं। मैं ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी के विवादास्पद साहित्य के प्रोफेसर मिर्ब्ट द्वारा किये गए श्रेष्ठ एवं विस्तृत अध्ययन "Die Puslizistic im Zeitalter Gregors VII" के प्रति अपनी प्रशंसा व्यक्त करना चाहूँगा। तथा मैं कृतज्ञतापूर्वक मध्ययुग के धार्मिक इतिहास के एक सर्वश्रेष्ठ विद्वान् लाहेपजिग के प्रोफेसर हॉक के ग्रन्थ के प्रति आभार व्यक्त करना स्मरण रखूंगा। दुर्भाग्य से जिनका इन वीरता भरे कठिन वर्षों में देहावसान हो गया है।

ऑक्सफोर्ड, दिसम्बर, 1921.

Scanned by CamScanner

विषय-सूची

भाग एक

900 ई० से 1076 ई० तक धार्मिक एवं राजनैतिक सत्ता के सम्बन्ध में

प्रथम अध्याय

धार्मिक एवं राजनैतिक सत्ता की अन्योन्यातिव्याप्ति 1

इस पुस्तक की विषय वस्तु……दसवीं शताब्दी तथा ग्यारहवीं शताब्दी में लौकिक राजाओं का चर्च की परिषदों में योगदान……दूसरे लौकिक व्यक्तियों का योगदान……लौकिक शासकों की नियुक्ति में पोप तथा बिशपों का योगदान।

द्वितीय अध्याय

दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में पोप का चुनाव 7

898 ई० में पोप के निर्वाचन के सम्बन्ध में रोम की परिषद् के विधान–962–64 में रोम में ऑटो प्रथम का कार्य……लियो अष्टम् का निर्वाचन……ऑटो प्रथम के विशेषाधिकार……ऑटो तृतीय के कार्य एवं दावे……मर्सबर्ग के थीटमार की आलोचना……सुत्री में हेनरी का कार्य……लीज के वाज़ो का दृष्टिकोण तथा "डी आरडीनेन्डो पोन्टीफीस" की आलोचना…… पीटर डेमियन तथा कार्डीनल हम्बर्ट का दृष्टिकोण……लियो नवम् के निर्वाचन की परिस्थितियाँ……विक्टर द्वितीय तथा स्टीफेन नवम् का निर्वाचन……निकोलस द्वितीय का निर्वाचन तथा पोप पद के निर्वाचनों के सम्बन्ध में उसकी घोषणा।

तृतीय अध्याय

1075 ई० तक बिशपों की नियुक्ति 15

इसके विभिन्न तत्त्वों के विषय में सामान्य मतैक्य……कुछ लेखकों द्वारा पादरियों तथा जनता द्वारा निर्वाचन पर बल……अन्य लेखकों द्वारा लौकिक शासक के योगदान पर बल……गेरबर्ट का मत…… पीटर डेमियन का मत……कुछ विशेष नियुक्ति के उदाहरण……विशेषतया लीज के वाज़ो की नियुक्ति ……बिशपों की नियुक्ति में पोप का स्थान।

चतुर्थ अध्याय

लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं की सापेक्ष गरिमा 24

लौकिक सत्ता की तुलना में धार्मिक सत्ता की उत्कृष्ट गरिमा……लौकिक मामलों में पादरी के लौकिक सत्ता के अधीन होने की स्वीकृति……पीटर डेमियन धार्मिक मामलों में लौकिक सत्ता का स्थान स्वीकार

Scanned by CamScanner

करता है····किन्तु धार्मिक सत्ता के उच्चतर गौरव पर बल देता है·····प्रत्येक सत्ता के पृथक्-पृथक् कार्यों को स्वीकार करता है।

भाग दो

अधिष्ठापन विवाद

प्रथम अध्याय

धर्म-विक्रय 30

धार्मिक एवं लौकिक अधिकारियों के सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्धों में परिवर्तन तथा उसके कारण····· ग्यारहवीं शताब्दी में धर्मपद विक्रय में वृद्धि, रोडोल्फस स्लेबर, कार्डीनल हम्बर्ट, हर्सफेल्ड के लेम्बर्ट····· लियो नवम् द्वारा उसके दमन के उपाय·····लौकिक कार्यों को करने की क्षमता के कारण मनुष्यों की बिशप पद पर नियुक्ति से उत्पन्न कठिनाइयाँ।

द्वितीय अध्याय

अयाजकीय "प्रतिष्ठापन" का निषेध 37

हेनरी तृतीय की मृत्यु के बाद लौकिक अधिकारियों का धर्मपद विक्रय से सम्बन्ध·····इसके कारण फ्रांस के राजा के विरुद्ध कठोर उपायों के अवलम्बन का ग्रेगोरी सप्तम का निर्णय·····धार्मिक पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में लौकिक अधिकारियों के स्थान पर विवाद का प्रारम्भ·····कार्डीनल हम्बर्ट तथा पीटर डेमियन का मत·····ग्रेगोरी सप्तम द्वारा 1079 ई० तक के पत्रों में किसी सीमा तक योगदान का निषेध नहीं·····दण्ड एवं मुद्रा से प्रतिष्ठापन का प्रश्न–कार्डीनल हम्बर्ट·····मिलान नगर का प्रश्न··· ···सभी गृहस्थ प्रतिष्ठापनों के निषेध के विषय में ग्रेगोरी सप्तम की घोषणा·····1078 ई० व 1080 ई० में निषेध की पुनः पुष्टि।

तृतीय अध्याय

"प्रतिष्ठापन" प्रश्न पर वाद-विवाद (1) 47

ट्रीवर का वेनेरिब·····फेरेरा का विडो बिशप की धार्मिक एवं लौकिक स्थिति में विभेद करता है····· मेनेगोल्ड का दावा कि पादरियों एवं जनता के निर्वाचन के बिना किसी भी बिशप की नियुक्ति नहीं हो सकती·····लौकिक अधिकारियों द्वारा मुद्रा से प्रतिष्ठापन का विरोध·····कार्डीनल ड्यूसडेडिट द्वारा इस कल्पना का खण्डन कि राजा स्वेच्छा से नियुक्ति कर सकता है·····पोप निकोलस द्वितीय की घोषणा की व्यवस्थाओं का खण्डन कि नियुक्ति के विषय में पोप सम्राट् से सम्मति लें·····कस्वे के पादरी के विषय में निर्वाचन के सिद्धान्त का उपयोग···संक्षेप।

चतुर्थ अध्याय

"प्रतिष्ठापन" प्रश्न पर वाद-विवाद (2) 54

मध्यस्थतावादी दृष्टिकोण का विकास·····चाट्रेस का ईवो, गृहस्थ द्वारा प्रतिष्ठापन का निषेध एक प्रशासनिक नियम चर्च का विधान नहीं·····फ्लेडरी का ह्यूज निर्वाचकों तथा सम्राट् दोनों के अधिकारों को स्वीकार करता है जिसे लौकिक सम्पदाओं से प्रतिष्ठापन करना चाहिए दण्ड अथवा मुद्रा से नहीं·····

Scanned by CamScanner

"ट्रैक्टेटस दे इन्वेस्टी पर एपिस्कोपोरम"–लौकिक सम्पदाओं के सम्बन्ध में लौकिक सत्ताओं का प्रतिष्ठापन का दावा······केटीनों का ग्रेगोरी, गृहस्थ द्वारा प्रतिष्ठापन लौकिक सम्पदाओं के विषय में ही······एयूका का रेनजेटियस मुद्रा एवं दण्ड के बारे में समझौता रहित······संक्षेप ।

पंचम अध्याय

पैस्कल द्वितीय तथा हेनरी पंचम 61

फ्रांस एवं इंगलैंड में प्रतिष्ठापन प्रश्न का निर्णय······1106 ई० से 1110 ई० तक हेनरी पंचम से समझौता वार्ता······हेनरी पंचम इटली में, पारस्परिक प्रतिज्ञाएँ, लौकिक सम्पदा का चर्च द्वारा समर्पण, प्रतिष्ठापन के अधिकार का सम्राट् द्वारा समर्पण······अभिषेक के दिन जारी की जाने वाली पैस्कल द्वितीय की घोषणा······हेनरी द्वारा बहु सम्बोधित पत्र द्वारा वार्ता एवं अपने दृष्टिकोण का वर्णन······समझौते के प्रयत्न की विफलता······पैस्कल का बन्दी बनाया जाना तथा प्रतिष्ठापन के अधिकार को मान्यता देना······पैस्कल का विशेषाधिकार पत्र ।

षष्ठ अध्याय

पैस्कल द्वितीय के कार्यों एवं प्रस्तावों पर विचार 70

पैस्कल द्वितीय के आत्म समर्पण पर चर्च का विद्रोह······सेगनी का ब्रूनों वेण्डोम का गाडफ्रे-मध्यस्थतावादी प्रवृत्ति की निरन्तरता, चाट्रेस का ईवो तथा "डिस्प्यूटियों वेन डिफेन्सियों पेश्चलिस पेपी"······मोननतूला के प्लेसीडस द्वारा पैस्कल के आत्म समर्पण की निन्दा······इसकी स्वीकृति कि दूसरे साधारण व्यक्तियों के समान राजा का भी नियुक्ति में स्थान है······यह प्रस्ताव कि अभिषेक के पश्चात् बिशप चर्च की सम्पदा के विषय में राजा से अधिकार प्राप्त करें······इस मान्यता का खण्डन कि चर्च की कोई सम्पदा नहीं है ।

सप्तम अध्याय

वॉर्म्स का समझौता 76

पैस्कल द्वितीय हेनरी पंचम को दी गई सुविधाओं का निषेध करने को विवश······पैस्कल द्वितीय की मृत्यु······गिलेशियस द्वितीय का निर्वाचन तथा उसकी मृत्यु······चालोन्स के बिशप तथा क्लूनी के एबट द्वारा स्ट्रासबर्ग में समझौता वार्ता······माउजन की वार्ता की विफलता······रीम्स का पोप परिषद् में मतभेद······वेन्डोम के गाडफ्रे के दृष्टिकोण का परिवर्तन··· ह्यूगो मेटेलस तथा ह्यूनाल्ड चार्मेन राजकुमारों का हस्तक्षेप······केलीक्सटस द्वितीय तथा हेनरी पंचम की समझौता वार्ता······वॉर्म्स का समझौता तथा उसकी व्यवस्थाएँ···संक्षेप ।

भाग तीन

पोप-पद एवं साम्राज्य का राजनैतिक संघर्ष

प्रथम अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम की स्थिति तथा दावे 88

नवीं शताब्दी में गिलेशियन सिद्धान्तों का पुनः कथन एवं परिवर्तन······लौकिक सत्ता की तुलना में

धार्मिक सत्ता की श्रेष्ठता की कल्पना रोडोल्फस ग्लेबर, पीटर डेमियन; कार्डीनल हम्बर्ट……हेनरी तृतीय की मृत्यु के बाद की नई परिस्थितियाँ……ग्रेगोरी सप्तम की नई नीतियाँ, चर्च की अव्यवस्था के लिए उत्तरदायी लौकिक सत्ता पर आक्रमण……फ्रांस के सम्बन्ध में इस नीति का विकास, राजा को धर्म-बहिष्कृत तथा पदच्युत करने की धमकी……1073 ई० से 1076 ई० तक हेनरी चतुर्थ तथा ग्रेगोरी सप्तम के सम्बन्ध……हेनरी चतुर्थ तथा वॉर्म्स की परिषद् द्वारा ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति, बिशपों तथा हेनरी चतुर्थ के पत्रों में उसके कारणों का विवेचन … ग्रेगोरी सप्तम द्वारा हेनरी चतुर्थ का धर्म-बहिष्कार तथा पदच्युति……हेनरी चतुर्थ तथा ग्रेगोरी सप्तम के पत्रों में अपने कार्यों का समर्थन ……जर्मनी में हेनरी चतुर्थ की सत्ता का अंत……हेनरी द्वारा केनोसा में आत्म-समर्पण तथा उसकी शर्तें……फोरशीम में रूडोल्फ का निर्वाचन……हेनरी तथा रूडोल्फ के प्रति ग्रेगोरी की नीति … ग्रेगोरी सप्तम तथा हेनरी चतुर्थ के बीच अंतिम विघटन हेनरी का धर्म-बहिष्कार तथा पदच्युति…… ग्रेगोरी के दावों का कथन … ग्रेगोरी सप्तम की ब्रिक्सेन में पदच्युति, विरोधी पोप ग्यूबर्ट का निर्वाचन ……मेट्ज के हर्मन को अपने कार्य का समर्थन करते हुए ग्रेगोरी का पत्र … रूडोल्फ की मृत्यु…… ग्रेगोरी सप्तम का परनाऊ के अल्टमान को पत्र।

द्वितीय अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों एवं दावों का विवेचन (1) 110

1076 ई० से 1080 ई० के बीच विवेचन … कान्सटेन्स का बर्नार्ड तथा बर्नाल्ड … साल्जबर्ग का गेबहार्ट संघर्ष का कारण धर्म-बहिष्कृत व्यक्ति के सम्बन्धों के सिद्धान्तों की अवहेलना का तथा ग्रेगोरी सप्तम का वॉर्म्स में पदच्युति को बताता है … ट्रीयर का बेनेरिच राजाओं को पदच्युत करने के ग्रेगोरी सप्तम के दावों का खण्डन करता है … पीटर केस्सस……,'डिक्टा क्यूसडेम दे डिसकार्डियों पेपीएट रेजिस" में पोप के निर्वाचन में सम्राट् के अधिकार का प्रतिपादन … ओसनाबर्ग के विडो द्वारा पोप के निर्वाचन में सम्राट् के अधिकार का प्रतिपादन तथा ग्रेगोरी द्वारा प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने की निन्दा कान्सटेन्स का बर्नार्ड "लाइबर केनोनम कन्ट्रा हेनेरीसम क्वार्टम" … मेनेगोल्ड द्वारा ग्रेगोरी के कार्यों का तर्क-संगत समर्थन … बोनीजा … ल्यूका का एन्सलम … बर्नाल्ड–फेरेरा के विडो द्वारा पहले ग्रेगोरी के चरित्र एवं कार्यों का समर्थन बाद में उसके मत का खण्डन……"डी यूनीटेट एक्लीशिया कन्सरवेन्डा" राजाओं के धर्म-बहिष्कार तथा पदच्युति के दृष्टान्तों की तर्क पूर्ण परीक्षा…… जिलेशियन सिद्धान्तों का सतर्क पुनः कथन……संक्षेप।

तृतीय अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों तथा दावों का विवेचन (2) 131

1085 ई० में ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु से लेकर 1105 ई० में हेनरी चतुर्थ की मृत्यु तक की ऐतिहासिक घटनाएँ……कार्डीनल ड्यूसडेडिट द्वारा लौकिक सत्ता की पृथक् एवं दैवी स्वीकृति किन्तु धार्मिक कानूनों की प्रधानता पर बल……गेम्बलाक्स के सीजबर्ट द्वारा उन व्यक्तियों का समर्थन जो हेनरी चतुर्थ के प्रति निष्ठा की शपथ से बँधे हैं, पोप द्वारा हिंसा के आश्रय का विरोध फ्लेउरी के ह्यूज द्वारा लौकिक सत्ता के पापपूर्ण उदय का प्रतिपादन करने वाले ग्रेगोरी सप्तम के शब्द समूह का खण्डन तथा इसका प्रतिपादन कि राजा, पिता ईश्वर की प्रतिमूर्ति हैं तथा बिशप ईसा की किन्तु बिशप के पद की गरिमा उच्चतर हैं… …राजा के धर्म-बहिष्कार के अधिकार की स्वीकृति किन्तु पदच्युति के ग्रेगोरी के दावे का खण्डन…… "ट्रेक्टेटस इबोरेसेन्सेस" राजा ईसा के दैवी रूप का प्रतिनिधि है पुरोहित मानवी स्वरूप का……केटीना का ग्रेगोरी, राजा चर्च का अध्यक्ष है……नोननटूला का प्लेसीडस "कान्सटेन्टाइन के दान" का अर्थ यह बताता है कि कान्सटेन्टाइन ने पश्चिम में पोप को सम्पूर्ण राजनैतिक सत्ता सौंप दी……वेन्डोम का

Scanned by CamScanner

गाडफ्रे कहता है कि लौकिक सत्ता का उदय दैवी है तथा धर्म बहिष्कार के बुद्धिमत्ता हीन प्रयोग में खतरे हैं……आगसबर्ग का होनोरियस मानता है कि ईसा ने केवल "धर्मसत्ता" को बनाया "राजसत्ता" को नहीं जो चर्च की शासक बनी……कान्सटेन्टाइन के दान का अर्थ पोप को सभी राजनैतिक सत्ता सौंपना, "धार्मिक सत्ता" राजकीय सत्ता की स्थापना करती है तथा उसे आदेश देती है……लौकिक सत्ता के पापपूर्ण उदय के बावजूद एक दैवी संस्था है पोप तथा सभी पादरी लौकिक विषयों में उसके अधीन हैं…… राजा चाहे धर्मद्रोही……नास्तिक एवं धर्म में फूट डालने वाला हो तो भी धैर्यपूर्वक सहन किया जाए… …संक्षेप।

चतुर्थ अध्याय

पोप पद की सामन्ती सत्ता का विकास 152

ग्रेगोरी सप्तम के तात्कालिक पूर्वाधिकारियों के समय से महत्त्वपूर्ण बनी……निकोलस द्वितीय तथा दक्षिण इटली व सिसली के नारमनों के सम्बन्ध……एलेक्जेण्डर द्वितीय तथा विजेता विलियम…… ग्रेगोरी सप्तम तथा दक्षिण इटली के नारमन……स्पेन…हंगरी…रूस…डेनमार्क…कार्सिका… डालमेशिया…सेक्सनी=प्रोबेन्स……पसाऊ के अल्तमान को पत्र तथा जर्मन साम्राज्य।

भाग चार

चर्च एवं साम्राज्य 1122 ई० से 1177 ई० तक

प्रथम अध्याय

फ्रेडरिक प्रथम तथा पोप-पद 157

वॉर्म्स का समझौता तथा तीस वर्षों तक साम्राज्य एवं पोप-पद के बीच शांति……समझौते की शर्तों का कहाँ तक पालन हुआ……1152 ई० से 1157 ई० तक पोपों एवं फ्रेडरिक प्रथम के सम्बन्ध…… 1153 ई० में कान्सटेन्स की संधि … हेड्रियन चतुर्थ तथा नारमनों के बीच 1156 ई० में बेनेवेण्टम की संधि……हेड्रियन के पत्र के कारण हेड्रियन चतुर्थ एवं फ्रेडरिक प्रथम में संघर्ष जिसमें साम्राज्य को पोप के अधीन सामन्ती पद माना गया था……हेड्रियन तथा फ्रेडरिक के बीच पोप की कुछ माँगों पर संघर्ष……एलेक्जेण्डर तृतीय तथा विक्टर का 1160 ई० में विवादास्पद निर्वाचन……फ्रेडरिक द्वारा इसके निर्णय के लिए पेवियाँ की परिषद् का आवाहन ……परिषद् द्वारा विक्टर के पक्ष में निर्णय ……1177 ई० तक साम्राज्य एवं पोप पद के बीच विवाद।

द्वितीय अध्याय

सैलिस्बरी का जॉन 169

धार्मिक सत्ता तथा कानून की लौकिक सत्ता पर श्रेष्ठता का प्रतिपादन–दो तलवारों के सिद्धान्त का प्रतिपादन जो दोनों चर्च की हैं……संत बर्नार्ड तथा संत विक्टर के ह्यूज के लेखों में समानताएँ…… दोनों सत्ताओं के सम्बन्ध में उसकी मान्यता की आगसबर्ग के होनोरियस से तुलना……चर्च के पोप शासन में विद्यमान लोभ तथा दूसरे दोषों की उसके द्वारा कठोर निन्दा।

Scanned by CamScanner

तृतीय अध्याय

राइखर्सबर्ग का गेर्होह 175

उस ग्रन्थ का ऐसे व्यक्ति की रचना के रूप में महत्त्व जो दोनों सत्ताओं में सन्तुलन रखता है·····चर्च की लौकिक सम्पदा एवं सत्ता के विषय में ब्रेशियां के आनोल्ड का मत·····प्रारम्भिक ग्रन्थों में गेर्होह चर्च द्वारा लौकिक सम्पदा के धारण के औचित्य पर संदेह करता है कुछ बाद में वह उसे स्वीकार कर लेता है·····बाद में वह पैस्कल द्वितीय द्वारा सम्पदा के समर्पण को प्रस्तुत होने का विवरण देता है तथा चर्च द्वारा उसके धारण के औचित्य पर संदेह करता है·····1151 ई० के माने गए उसके ग्रन्थ में पोप द्वारा राजा को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत करने के अधिकार को मान्यता देता है किन्तु लौकिक सत्ता के एवं धार्मिक सत्ता के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार करता है·····उसके उत्तरकालीन ग्रन्थ में फ्रेडरिक प्रथम तथा एलेक्जेण्डर तृतीय के संघर्ष का विवरण है·····निर्वाचन की परिस्थितियों का विवरण···उसकी अपनी अनिश्चयता, यह सोचता प्रतीत होता है कि केवल सामान्य परिषद् ही इसका निर्णय कर सकती है==पोप के न्यायालय की नीति की निन्दा विशेषतया साम्राज्य पर राजनैतिक अधिकार की·····1166-67 में कार्डीनलों को सम्बोधित उसका 'ग्रन्थ एलेक्जेण्डर तृतीय को पोप मानता है किन्तु माँग करता है कि वे सम्राट् के विरुद्ध षडयंत्र के आरोप से पोपपद को मुक्त करें····· उसके अन्तिम ग्रन्थ में चर्च तथा रोम दोनों के प्रति निष्ठा।

चतुर्थ अध्याय

उपसंहार 192

मानव समाज में लौकिक एवं धार्मिक द्विविध सत्ता की कल्पना·····कहाँ तक वास्तव में एक सत्ता दूसरी में हस्तक्षेप करती थी·····कहाँ तक एक पर दूसरी की उत्कृष्टता का सिद्धान्त विकसित हुआ··· ···ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी की वास्तविक परिस्थितियों में इस सिद्धान्त का क्या महत्त्व रहा।

Texts of Authors Referred to in Volume IV 201

Index of Names Referred to in Volume IV 206

—×—

Scanned by CamScanner

प्रथम भाग

900 ई० से 1076 ई० तक धार्मिक एवं राजनैतिक सत्ता के सम्बन्ध में

प्रथम अध्याय

धार्मिक एवं राजनैतिक सत्ता की अन्योन्यातिव्याप्ति

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में हमने नवीं शताब्दी के धार्मिक एवं राजनैतिक सत्ताधारियों के सम्बन्धों के मुख्य सिद्धांतों एवं विशेषताओं पर विचार करने का प्रयत्न किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि, यद्यपि यह स्पष्टतया सोचा गया कि इन सम्बन्धों का नियामक सिद्धांत यह था कि प्रत्येक सत्ता अपने-अपने क्षेत्र में दूसरी से पूर्णतया स्वतन्त्र एवं सर्वोच्च है, वास्तविकता में यह सम्बन्ध अत्यन्त जटिल थे एवं यदाकदा इस सिद्धांत से असंगत दिखलाई देते थे। वास्तव में राजनैतिक सत्ता धर्मिक क्षेत्र में निरन्तर अत्यधिक प्रभावशाली थी और धार्मिक सत्ता राजनैतिक क्षेत्र में निरन्तर अत्यधिक नियन्त्रण करती थी। यद्यपि सिद्धान्त पर्याप्त रूप से सुस्पष्ट था किन्तु पूर्णतः सिद्धांत पर आधारित व्यवहार करना निश्चय ही अत्यन्त कठिन था। सम्राट् या राजा प्रायः अपने आप को ऐसी स्थिति में पाता था कि उसका कर्तव्य इस बात को देखना होता था कि चर्च के धार्मिक अधिकारी अपना कर्तव्य-निर्वाह ठीक से कर रहे हैं अथवा नहीं और इसलिए यथार्थ रूप में धार्मिक विषयों में उसको अनिर्धारित होते हुए भी व्यापक अधिकार प्राप्त थे। दूसरी ओर धार्मिक अधिकारी भी अनेक बार लौकिक विषयों में आदेश एवं निर्देश देने में प्रवृत्त होते थे।

जनता द्वारा गृहीत सिद्धांत सुनिश्चित एवं देखने में सरल थे किन्तु दोनों महान् सत्ताधारियों के वास्तविक सम्बन्ध अत्यन्त जटिल थे। तथापि समग्र रूप से यह कहना कठिन नहीं है कि इस जटिलता के होने पर भी दोनों सत्ताओं में गम्भीर संघर्ष अथवा विरोध नहीं था।

Scanned by CamScanner

इस खण्ड में हम इस बात का विचार करेंगे कि ये अपेक्षाकृत शांत परिस्थितियाँ किस प्रकार बदल गईं तथा पोप ग्रेगोरी सप्तम (Gregory VII) के अभिषेक के वर्ष 1073 ई० से लेकर 1303 ई० में पोप बोनीफेस अष्टम (Boniface VIII) की मृत्यु तक लगभग दो सौ पचास वर्षों में पश्चिमी यूरोप, साम्राज्य एवं पोप पद के महान् संघर्ष की गूंज से स्तब्ध हो गया, जबकि दूसरे पश्चिमी देशों में भी राजनैतिक एवं धार्मिक सत्ताओं का संघष स्वरूप की दृष्टि से सनसनीभरा न होने पर भी स्वभावतः किसी प्रकार से कम गम्भीर नहीं कहा जा सकता। इस खण्ड में इन्नोसेण्ट तृतीय (Innocent III) के अभिषेक की तिथि (1198 ई०) से आगे इस विषय पर विचार नहीं करेंगे क्योंकि उसके अधिकारी होने के पश्चात् से इन सम्बन्धों में एक नया परिवर्तन आया, जिसे तेरहवीं शताब्दी के सिद्धांतों एवं परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही अध्ययन करना चाहिए।

हमें यह देखना है कि (1) यह महान् संघर्ष किस प्रकार प्रारम्भ हुआ, (2) इस प्रश्न का यथार्थ स्वरूप एवं इस संघर्ष के आधारभूत सिद्धांत क्या-क्या थे एवं (3) बारहवीं शताब्दी में आंशिक या स्थायी रूप से इसके समाधान के लिए क्या-क्या उपाय किए गए? सर्वप्रथम हमें यही विचार करना होगा कि यह महान् संघर्ष कैसे प्रारम्भ हुआ क्योंकि इतिहास के अन्य स्थलों से अधिक यहाँ पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि किसी स्थिति की अग्रगत घटनाओं अथवा कारणों का विवेचन करके ही हम किसी परिस्थिति की यथार्थ व्याख्या कर सकते हैं। इसलिए वैसा करने के लिए हम पोप ग्रेगोरी के पदारोहण के पूर्व दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी में धार्मिक एवं राजनैतिक इन दो महान् सत्ताओं के सम्बन्धों के यथार्थ स्वरूप के विचार से प्रारम्भ करेंगे।

जब हम इस काल के इतिहास का निष्पक्षतया परीक्षण करना प्रारम्भ करते हैं तो सर्वप्रथम हमें यह तथ्य प्रभावित करता है कि, यद्यपि इस विचार का कोई कारण नहीं कि किसी को इसमें सन्देह था कि धार्मिक एवं राजनैतिक सत्ताएँ विभिन्न एवं दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र क्षेत्र वाली हैं,[1] तथापि वास्तविक व्यवहार में राजनैतिक शासक एवं जनसाधारण निरन्तर धार्मिक विषयों की व्यवस्था में बड़ा भाग लेते थे तथा पोप एवं बिशप राजनैतिक विषयों में अनेक अधिकारों का प्रयोग करते थे।

दसवीं शताब्दी में हमें राजनैतिक सत्ताधारियों एवं जनसाधारण द्वारा चर्च की परिषदों में उपस्थित होकर विचार-विनिमय में योगदान तथा इनके निर्णयों को अपनी सत्ता का समर्थन प्रदान करने का निरन्तर उल्लेख मिलता है। इसका श्रेष्ठ उदाहरण ऑग्सबर्ग (Augsburg) में 952 ई० में हुई एक परिषद् की कार्यवाही का विवरण है। यह सभा बिशपों की सम्मति से ऑटो प्रथम (Otto I) द्वारा धार्मिक विषयों एवं ईसाई साम्राज्य की दशाओं पर विचार करने के लिए बुलाई गई थी। इसमें धार्मिक विषयों में विचार के अवसर पर विशेषरूप से बिशपों ने उसको उपस्थित होने का निमन्त्रण दिया। ऑटो ने वास्तव में चर्च के नियमों की उद्घोषणा में भाग नहीं लिया, किन्तु वह उन पर विचार के समय उपस्थित था तथा उनके व्यवस्थापन के लिए भी पादरी उसकी सहायता की अपेक्षा करते थे।[2]

दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दियों में न केवल जर्मनी में वरन् इटली में भी इसके अनेक

Scanned by CamScanner

उदाहरण मिल सकते हैं। जॉन तेरहवें (John XIII) की पदावधि में हुई विभिन्न परिषदों की रिपोर्टों में सम्राट् ऑटो प्रथम की उपस्थिति तथा सहमति का उल्लेख है।[3] 998 ई० में पोप ग्रेगोरी पंचम द्वारा बुलाई गई रोम की एक अन्य परिषद् में सम्राट् ऑटो तृतीय को आक्सोने (Auxonne) के बिशप पद के विवादास्पद निर्वाचन पर हुई बहस में सक्रिय रूप से भाग लेता हुआ प्रदर्शित किया गया है।[4] पुनः ऑटो तृतीय ने पोप ग्रेगोरी पंचम के साथ रोम में हुई परिषद् की अध्यक्षता की जिसमें मर्सबर्ग (Merseburg) के पादरी पद एवं उसके मूल गौरव की पुनः स्थापना की गई।[5] सम्राट् कोनार्ड द्वितीय (Conrad II) ने पोप जॉन उन्नीसवें के साथ, 1027 ई० में रोम में सम्पन्न एक परिषद् की अध्यक्षता की, जो एक्वीलिया के प्राधिधर्माध्यक्ष (Patriarch of Aquileia) के साथ ग्रैडो के सम्बन्धों के निर्धारण के लिए बुलाई गई थी तथा उसका निर्णय भी पोप एवं सम्राट् द्वारा ही लिया गया बताया जाता है। सम्राट् कोनार्ड ने फ्रैंकफर्ट में बिशपों की एक परिषद् की अध्यक्षता की थी जिसमें छोटे पादरी एवं एक विशाल संख्या में जन-साधारण भी उपस्थित थे।[6]

पाविया (Pavia) में 1046 ई० में हुई एक धर्म सभा में हेनरी तृतीय की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है तथा उस धर्म सभा में बेरोना के बिशप (Bishop of Verona) की प्राथमिकता का निर्णय उसके "निर्देशानुसार" (Praceptum) होना बतलाया गया है। 1049 ई० में पोप लियो नवम द्वारा मेंज (Maintz) में बुलाई गई परिषद् की विज्ञप्तियों में पोप द्वारा हेनरी तृतीय के अपने साथ सभा में बैठने एवं परिषद् द्वारा बेसन्सन (Besancon) के आर्च बिशप पद के सम्बन्ध में एक विवादास्पद दावे के निर्णय को स्वीकृति देने का उल्लेख किया गया है। छोटे पादरी एवं जनसाधारण भी उसमें उपस्थित तथा अपनी स्वीकृति देते हुए बताए गए हैं।

ये उल्लेख इस बात के उदाहरण हैं कि दसवीं शताब्दी के राजाओं एवं सम्राटों का धार्मिक सभाओं की गतिविधियों में प्रायः महत्त्वपूर्ण योगदान था। यह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि फ्रैंकफर्ट एवं मेंज की पूर्वोल्लिखित परिषदों के विवरणों में, जनसाधारण की उपस्थिति का भी उल्लेख है। इसके कुछ अन्य दृष्टांत भी ध्यान देने योग्य हैं। पोप लियो नवम ने अपने एक पत्र में, 1049 ई० में, उसके द्वारा राइम्स (Rheims) में बुलाई गई परिषद् के निर्णयों का उल्लेख किया है, जिनको उसने स्वयं बिशपों की सम्मति तथा छोटे पादरियों एवं जनसाधारण की स्वीकृति से लिया था।[7] कुछ वर्षों के बाद पोप निकोलस द्वितीय द्वारा गॉल (Gaul), एक्वीटेन (Aquitaine) तथा गेस्कोनी (Gascony) के बिशपों को सम्बोधित एक पत्र में, 1059 ई० में बुलाई गई रोम की परिषद् का वर्णन है, जिसमें उसने पोप के चुनाव सम्बन्धी प्रसिद्ध नवीन आदेश दिया था तथा उस परिषद् में बिशप, एबट, छोटे पादरी एवं जनसाधारण उपस्थित थे।[8] पुनः कतिपय वर्षों के बाद 1067 ई० में पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय द्वारा क्रेमोना के चर्च (Church of Cremona) के पादरियों एवं जनसाधारण को सम्बोधित एक अन्य पत्र में ईस्टर के बाद प्रस्तावित एक परिषद् के लिए प्रतिनिधि भेजने का निमन्त्रण दिया गया है।[9] इसलिए हमें यह आश्चर्य-जनक प्रतीत नहीं होता है कि लेनफ्रैंक (Lanfranc) के जीवन चरित्र में इसका उल्लेख

Scanned by CamScanner

मिलता है कि धार्मिक नियमों सम्बन्धी व्यवस्था एवं इंगलैण्ड के चर्च के आदेशों की पुनः स्थापना के लिए उसके द्वारा बुलाई गई परिषद् को पोप एलेक्जेण्डर एवं सम्राट् विलियम के अधिकार से बुलाया गया था तथा उसमें बिशप, राजकुमार, छोटे पादरी एवं जनता के सम्मिलित होने का उल्लेख है।[10] 1076 ई० में ग्रेगोरी सप्तम द्वारा आहूत धर्म सभा अथवा रोम की परिषद् में जिसमें सम्राट् हेनरी चतुर्थ को धर्म बहिष्कृत एवं पदच्युत घोषित किया गया, न केवल बिशप, एबट एवं छोटे पादरी ही वरन् जनसाधारण भी उपस्थित बताए जाते हैं।[11] ग्यारहवीं शताब्दी की समाप्ति के आसपास पोप अरबन द्वितीय (Pope Urban II) के दो पत्रों में हम इसी तथ्य का दूसरा उदाहरण पाते हैं, जिनमें ब्रिटेनी में टूर्स के आर्च बिशप के धार्मिक अधिकारों का प्रश्न उठाया गया था। इनमें वह घोषणा करता है कि उसके निर्णय जिस परिषद् में लिए गए उसमें केवल बिशप एवं अन्य छोटे पादरी ही नहीं वरन् रोमन न्यायाधीश और "कॉन्सलर" भी उपस्थित थे तथा निर्णय भी उनकी राय से लिए गए थे।[12]

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि अपने आप में ऐसे वाक्यांश अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, निस्संदेह कई स्थलों पर ये केवल औपचारिक मात्र हैं, किन्तु उससे इनका महत्त्व कम नहीं होता, वास्तव में वे इस बात को सूचित करते हैं कि, दोनों सत्ताओं तथा पादरियों एवं जनसाधारण के दो वर्गों की पृथक्ता के सिद्धान्त को जनता द्वारा चाहे जितनी मान्यता दी जाए, व्यवहार में जनसाधारण को भी संगठित चर्च सम्बन्धी सत्ता से पूर्णतया बहिष्कृत नहीं माना जाता था।

यदि इस तथ्य को ध्यान में रखना महत्त्वपूर्ण है कि दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी में राजनैतिक शासक एवं जनसाधारण को चर्च सम्बन्धी विषयों की व्यवस्था में कुछ स्थान प्राप्त था तो उस युग के लेखों में पाए जाने वाले वे कुछ उल्लेख भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं जिनमें पोप व दूसरे चर्च सम्बन्धी अधिकारियों द्वारा राजनैतिक विषयों में हस्तक्षेप का उल्लेख है। हमें बाद में इस पर गम्भीरता से विचार करना होगा कि इसके सम्बन्ध में किए गए दावों का जब महान् संघर्ष छिड़ा, यथार्थ स्वरूप क्या था ? इस बीच, उस समय से पूर्व, इस विषय की ओर हम केवल प्रासंगिक संकेत करना चाहते हैं।

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में हम कह चुके हैं कि नवीं शताब्दी में यह प्रायः स्वीकार किया जाता था कि पोप एवं चर्च के बिशप का राजाओं एवं सम्राटों की नियुक्ति में महत्त्वपूर्ण स्थान था।[13] जैसा कि हम कह चुके हैं कि उन निश्चित सिद्धांतों का निर्धारण अत्यन्त कठिन है जिन पर यह मान्यता आधारित थी। पोप द्वारा सम्राट् की नियुक्ति के सम्बन्धों के मूल में फ्रैंक शासकों की रोमन सम्राटों के रूप में मान्यता से सम्बद्ध विशिष्ट परिस्थितियाँ थीं। सामान्यतः बिशपों के बारे में यह कहना कठिन है कि उनके अधिकार किस सीमा तक उनके धार्मिक पद एवं सत्ता के प्रति आदर पर आधारित थे एवं किस सीमा तक इस तथ्य पर कि बिशप लोग समाज के वे बड़े व्यक्ति थे जिनको शासक को चयन एवं प्रस्तावित करने का दायित्व प्रायः सौंपा गया था। वास्तव में यह अत्यन्त संदिग्ध है कि नवीं शताब्दी में वे सब तथ्य जिन पर चर्च के अधिकारियों का राजनैतिक विषयों में हस्तक्षेप आधारित था सुस्पष्ट एवं सुनिश्चित थे और यह प्रतीत होता है कि

Scanned by CamScanner

इस विषय में वही अनिश्चितता उसके बाद के युग में भी बनी रही ।

नवीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष में हमें पोप जॉन नवम को लिखे गए मेंज के आर्च बिशप हेट्टो (Hatto, the Archbishop of Maintz) के नाम से प्रसिद्ध पत्र में कुछ महत्त्व-पूर्ण वाक्यांश प्राप्त होते हैं, जिनमें जर्मनी में लुई "दी चाइल्ड" (Louis, "the Child") के सम्राट् रूप में निर्वाचन का उल्लेख है । हेट्टो चुनाव के सम्बन्ध में पोप की सम्मति की उपेक्षा का कारण बताते हुए कहता है कि उस समय जमनी और रोम के बीच की सड़कें "मूर्तिपूजकों" (Pagans) द्वारा अवरुद्ध थीं । अस्तु, पोप से प्रार्थना की गई है कि अब पुनः उससे सम्पर्क सम्भव हो सकने के बाद इस कार्य की पुष्टि की जाय ।[14] यह पत्र स्पष्टतया इस ओर संकेत करता है कि, पोप का इस विषय में अधिकार इस प्रकार से मान्य था कि उसे राजी करना तथा उसकी सहमति एवं समर्थन पाना महत्त्वपूर्ण माना जाता था । दसवीं शताब्दी में जब पोप पद का गम्भीरतम अधःपतन हो चुका था तब भी पोप जॉन द्वादश, ऑटो प्रथम के रोम आने का वर्णन करता है ताकि वह उसके हाथों से संत पीटर द्वारा राजकीय मुकुट ग्रहण कर सके और यह भी घोषणा करता है कि उसने चर्च की रक्षा के लिए, संत पीटर के आशीर्वाद से, उसका सम्राट् पद पर अभि-षेक किया है ।[15] रोडोल्फस ग्लेबर (Rodolphus Glaber) ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में, स्पष्टतया इस सिद्धान्त का वर्णन करता है कि पोप जिसे उस पद के लिए उपयुक्त समझे एवं जिसे सम्राट् पद प्रदान करे उसके अतिरिक्त कोई न तो सम्राट् बन सकता है न कहला सकता है ।[16] एनाल्स ऑफ हिल्डेशीम (Annals of Hildesheim) के परिशेष-कर्त्ता ने हेनरी तृतीय द्वारा अपने अबोध पुत्र के, पोप एवं अन्य बिशपों तथा राजकुमारों द्वारा चुने जाने पर राजा बनाने का वर्णन किया है ।[17]

इस समय, दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दियों में धार्मिक एवं राजनैतिक दो महान् सत्ताओं की अन्तर्व्याप्ति की सीमाओं के उदाहरण के रूप में पर्याप्त कहा जा चुका है, और यह भी बताया जा चुका है कि किस प्रकार प्रायः राजनैतिक सत्ता धार्मिक विषयों में हस्तक्षेप करती थी एवं धार्मिक सत्ता राजनैतिक विषयों में । अब हम अधिक विस्तार से उन कतिपय प्रश्नों पर विचार करेंगे जिनके सम्बन्ध में अन्ततः ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी में महान् संघर्ष प्रारम्भ हुआ ।

सन्दर्भ

1. Acta Concili I Trosliani, A. D. 909; Mansi 'Concilia' vol. xiii Chap. 1. They quote.
2. M. G. H., Legum, Sect. IV., Const. 9. Conventus Augustana, 952 A. D.
3. Mansi, 'Concilia' vol. xviii. A., P. 509.
4. Mansi, 'Concilia' vol. xix. p. 228.
5. M. G. H., Legum, Sect. IV., Const. 24, Concilum Romanum (998-999), li.
6. Id. id., 51.
7. Pope Leo IX., 'Epistles', 17.
8. Pope Nicholas II., 'Epistles', 71.
9. Pope Alexander II., 'Epistle', 36.
10. Migne, P. L., vol. 150 ; Lanfranc, 'Vita' x.

Scanned by CamScanner

11. Pope Gregory VII., Registrum III., 10 (a).
12. Pope Urban II., 'Epistle', 113.
13. Cf. vol. i. pp. 282–287.
14. Mansi, 'Concilia', vol. xviii. A., p. 204.
15. Id. id., p. 461.
16. Rodolphus Glaber, 'Historiae', i. 5.
17. "Annales Hildesheimenses" Cont., Anno. 1056 (p. 104)., (Heinricus).

Scanned by CamScanner

द्वितीय अध्याय

दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दी में पोप का चुनाव

यदि हम गम्भीरतापूर्वक उत्तरवर्ती संघर्ष के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करें, तो हमें सर्वप्रथम ऑटो प्रथम से लेकर हेनरी तृतीय तक के जर्मन सम्राटों द्वारा पोपों की नियुक्ति एवं पदच्युति के लिए किए गए योगदान का विचार करना पड़ेगा। हम यहाँ इस काल के पोपों के चुनाव की सम्पूर्ण परिस्थितियों के विस्तृत एवं परिपूर्ण अध्ययन का मिथ्या दावा नहीं करते; उसकी इतनी आवश्यकता भी नहीं है, क्योंकि उस पर अनेक पांडित्यपूर्ण ग्रन्थ पहले से विद्यमान हैं। फिर भी हमारे विचार में उस युग में सामान्यतः स्वीकृत कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को स्वीकार करना संभव है तथा हम पर्याप्त निश्चिन्ततापूर्वक विवाद एवं संदेह के सबसे महत्त्वपूर्ण स्थलों को पृथक् कर सकते हैं। एक ओर तो यह निश्चित है कि दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर ग्रेगोरी सप्तम के राज्यारोहण तक की इस सम्पूर्ण अवधि में पोप के चुनाव में सम्राट् का स्थान भी स्वीकार किया जाता था, दूसरी ओर यह भी हम देख सकते हैं कि चुनाव में राजकीय योगदान की सीमा के बारे में तथा किसी भी व्यक्ति द्वारा चाहे वह जनसाधारण हो या पादरी, पोप के ऊपर अपने अधिकार के दावे को सिद्ध करने के प्रयत्न के विषय में गंभीर संदेह भी थे।

पोप जॉन द्वारा 898 ई० में रोम में बुलाई गई परिषद् की कार्यवाही का दसवां खण्ड इन परिस्थितियों का वर्णन करता हुआ माना जा सकता है जिन पर वास्तव में दसवीं शताब्दी के पोप के चुनावों में राजकीय सत्ता का योगदान आधारित था। इस विवरण में किसी पोप की मृत्यु होने पर उसके उत्तराधिकारी के अभिषेक के अवसर पर, रोमन धर्मपीठ के विरुद्ध संभावित हिंसा का भी उल्लेख है, यदि सम्राट् को इसकी सूचना न हो और उसके दूत उस समय घटित होने वाली हिंसा तथा लोकापवादों के निवारणार्थ वहाँ पर उपस्थित न हों। इसमें यह निर्दिष्ट है कि भविष्य में बिशपों एवं पादरियों द्वारा चुनाव सेनेट एवं जनता के प्रस्ताव पर ही किए जायँ,

Scanned by CamScanner

पोप का राजकीय प्रतिनिधियों की उपस्थिति में अभिषेक किया जाय, किसी भी व्यक्ति द्वारा निर्वाचित पोप को प्राचीन मान्यताओं से भिन्न कोई प्रतिज्ञा अथवा शपथ बल-पूर्वक नहीं दिलाई जाय ताकि चर्च लोकापवाद से मुक्त रहे तथा सम्राट् के लिए देय सम्मान भी कम न हो सके।[1]

यह लेख इस बात को स्वीकार करता है कि, यद्यपि रोमन जनसाधारण के प्रस्ताव पर पोप का निर्वाचन बिशपों एवं पादरियों का ही कार्य है तथापि यह चुनाव बिना राजा को सूचित किए और अभिषेक के समय उसके प्रतिनिधियों की उपस्थिति के बिना पूर्ण नहीं माना जा सकता। इसके लिए विशिष्ट कारण यह बताया गया है कि सम्राट् के संरक्षण के अभाव में यह नियुक्ति शांति एवं स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं हो सकती।

यहाँ हमारा उद्देश्य दसवीं एवं प्रारम्भिक ग्यारहवीं शताब्दी में पोप पद के इतिहास के, सम्पूर्ण ऐतिहासिक महत्त्व की समीक्षा का प्रयत्न नहीं है। यहाँ यह स्वीकार करना ही पर्याप्त है कि जब ऑटो प्रथम दूसरी बार इटली आया तथा 962 ई० में पोप जॉन द्वादश द्वारा सम्राट् के रूप में अभिषिक्त किया गया, उसने रोम के पोप पद को अत्यन्त हीन दशा में तथा रोमन सामन्तों के गुटों से नियन्त्रित पाया। जॉन द्वादश ने ऑटो का सम्राट् पद पर अभिषेक किया तथा जैसा बताया जाता है, ज्योंही ऑटो ने रोम को छोड़ा उसके विरुद्ध षड्यन्त्र करना प्रारम्भ कर दिया। ऑटो रोम को लौट आया। क्रेमोना के बिशप ल्यूटप्रेन्ड (Luitprand) के विवरण के अनुसार, उसने एक परिषद् बुलाई जिसमें इटली, सैक्सोनी तथा फ्रेंकोनिया के बिशप एवं रोम के पादरी तथा प्रमुख नागरिक उपस्थित थे। पोप पर विभिन्न प्रकार के नैतिक एवं धार्मिक अपराधों के आरोप लगाए गए, तथा परिषद् ने उसे उपस्थित होने एवं उन आरोपों के विरुद्ध सफाई देने को कहा। जॉन ने इसके उत्तर में धमकी दी कि यदि उन्होंने दूसरे पोप की नियुक्ति का प्रयास किया तो वह उन्हें धर्म-बहिष्कृत कर देगा। अतिरिक्त विचार-विनिमय के बाद सम्राट् ने परिषद् के सामने भाषण दिया कि पोप ने उसके साथ की गई शपथ को भंग किया है तथा उसके विरुद्ध शत्रुओं के साथ मिलकर षड्यंत्र किया है। पादरियों एवं जनता ने कहा कि इस अभूतपूर्व अपराध का निर्णय भी अभूतपूर्व साधनों से किया जाय, पोप ने अपने लम्पट आचरण द्वारा न केवल स्वयं को ही वरन् दूसरों को भी हानि पहुँचाई है तथा माँग की कि उसे पदच्युत करके नवीन पोप का निर्वाचन किया जाय। सम्राट् ने उनकी माँग स्वीकार कर ली तथा उन लोगों ने, लियो को जो रोमन चर्च का "प्रोटोस्क्रीनेरियस" (Protoscrinarius) था एकमत से पोप चुन लिया[2] (964 ई०)। यद्यपि प्रतीत होता है कि रोमन जनता एवं पादरियों की यह एकमतता केवल नाममात्र की थी क्योंकि जैसे ही सम्राट् ने रोम छोड़ा जनता लियो अष्टम के विरुद्ध हो गई तथा वह भागकर सम्राट् के पास चला गया। पोप जॉन द्वादश का देहावसान हो गया तथा रोमवासियों ने बेनेडिक्ट पंचम को चुन लिया। सम्राट् लौटा तथा बेनेडिक्ट को वेटिकन की परिषद् में प्रस्तुत किया गया और उसे जर्मनी को निर्वासित कर दिया गया।[3]

दूसरे वर्ष (965 ई०) में लियो अष्टम की मृत्यु हो गई तथा रेजिनो के क्रानिकल

Scanned by CamScanner

के परिशेषकर्ता द्वारा दिया गया उसके उत्तराधिकारी के चुनाव का विवरण महत्त्वपूर्ण है। वह कहता है कि लियो की मृत्यु पर, रोमवासियों ने एजो (Azo), जो प्रोटोस्क्रीनेरियस था तथा सुत्री के बिशप मेक्सिमस को सम्राट् के पास, जो उस समय सेक्सोनी में था, यह कहला कर भेजा कि वह चाहे जिसे पोप नियुक्त करले। किन्तु सम्राट् ने वैसा नहीं किया, तथा स्पायर्स के बिशप ओटगार तथा क्रेमोना के बिशप लियूजो को रोम भेजा तथा अनुमान किया जाता है कि उनकी उपस्थिति में रोमवासियों ने नार्नी के बिशप जॉन को पोप चुन लिया।[4]

यह निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा कि यह विवरण सम्पूर्ण परिस्थिति का समग्र वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। हमें इस संभावना को स्वीकार करना चाहिए कि ये घटनाएँ उनके वर्णनकर्त्ताओं की पद-स्थिति से अतिरंजित हो सकती हैं।

ऑटो प्रथम एवं परिषद् द्वारा पोप जॉन द्वादश की पदच्युति का कार्य, 1049 ई० में हेनरी तृतीय एवं सुत्री की परिषद् के कार्य के समान ही थे। लियो तृतीय तथा लियो चतुर्थ के शुद्धीकरण ऐसे पूर्वोदाहरण हैं जो यह दिखलाते हैं कि चर्च के अध्यक्ष के चरित्र के विषय में चर्च तथा सम्राट् दोनों के ही हस्तक्षेप करने के दावे थे।[5] यहाँ यह ध्यान रखना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि, जॉन द्वादश के निष्कासन में चाहे जो असंगति रही हो यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि लियो अष्टम एवं जॉन तेरहवें के निर्वाचन के समय परम्परागत विधि का विशेषतया ध्यान रखा गया था। ल्यूटप्रेन्ड के विवरण के अनुसार रोम के नागरिकों एवं पादरियों ने ही लियो अष्टम को चुना था तथा सम्राट् ने तो केवल उनके चुनाव की सहमति दी थी। रेजीना के परिशेषकर्त्ता के विवरण से स्पष्ट है कि लियो अष्टम की मृत्यु के बाद ऑटो प्रथम ने किसी को भी पोप पद पर स्वयं नियुक्त नहीं किया किन्तु चुनाव का कार्य रोमवासियों को ही सौंप दिया, जो सम्भवतः उसके दूतों की उपस्थिति एवं सहमति से किया गया हो।

इस वर्णन की पुष्टि ऑटो प्रथम के पोप के चुनाव सम्बन्धी "विशेषाधिकार पत्र" (Privilegium) की व्यवस्थाओं से होती है, जिसका समय 962 ई० माना गया है तथा जिसकी प्रामाणिकता को सही माना गया है।[6] इसकी व्यवस्था के अनुसार रोम के पादरी एवं सामंत इस बात का ध्यान रखेंगे कि चुनाव धर्म वैधानिक तथा न्यायपूर्वक हो तथा जो इस पद के लिए चुना जाय उसका अभिषेक तब तक न हो जब तक वह साम्राज्यिक प्रतिनिधियों की उपस्थिति में वे ही घोषणाएँ न करे जो पोप लियो ने स्वेच्छा से की थीं। यह भी कहा गया है कि रोम के निवासियों की स्वतन्त्रता में कोई हस्तक्षेप न करे, जिनको प्राचीन परम्परा एवं पूज्य धर्माचार्यों के विधान के अनुसार निर्वाचन का अधिकार प्राप्त है, और यह निषेध सम्राट् के दूतों पर भी लागू होता है।[7] ये व्यवस्थायें पायस लुई के "समझौते" तथा लोथेयर प्रथम के "रोमन संविधान" (Constitutio Romana) में उपलब्ध व्यवस्थाओं से मिलती-जुलती हैं[8] और यह स्पष्टतया स्वीकार करती हैं कि निर्वाचन का अधिकार रोमवासियों का है, परन्तु इस प्रक्रिया में सम्राट् को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

इसी शताब्दी में कुछ समय बाद हम यह देखते हैं कि इन संवैधानिक परम्पराओं

Scanned by CamScanner

का इतने ध्यान से पालन नहीं किया जाता था। संत अदलबर्ट के जीवन चरित्र में 996 ई० में पोप ग्रेगोरी पंचम की नियुक्ति का विवरण उपलब्ध होता है। इससे यह प्रतीत होता है कि जब पोप जॉन पन्द्रहवें की मृत्यु हुई तब ऑटो तृतीय रेवेना में था। रोम के प्रधान नागरिकों (Proceres etsenatorius or do) ने पत्र एवं दूतों को भेजकर पोप की मृत्यु की घोषणा की, एवं उसके स्थान पर किसको चुना जाए इस सम्बन्ध में राजकीय निर्णय पाने की इच्छा व्यक्त की। ऑटो तृतीय ने राजकीय गिरजाघर के एक युवक एवं विद्वान् उपदेष्टा ब्रूना को छाँटा, जो उसका रिश्तेदार था, उसे स्पष्टतया रेवेना में एक मेयोरीबस (maioribus) के रूप में निर्वाचित किया गया तथा उसे मेन्ज के आर्च बिशप व अन्य बिशपों के साथ रोम भेजा गया, जहाँ उसका सम्मान पूर्वक स्वागत हुआ।[9] यह प्रथा अधिकांशतः उससे मिलती-जुलती है जिसका उदाहरण हम तब पायेंगे जब अगले अध्याय में बिशपों की नियुक्ति का वर्णन करेंगे।

कुछ वर्षों के बाद के एक लेख में, जिसकी प्रामाणिकता पर संभवतः अकारण ही संदेह किया गया है, हम पाते हैं कि ऑटो तृतीय बहुत स्पष्टतया यह दावा करता है कि उसने स्वयं ही 999 ई० में गेरबर्ट (सिलवेस्टर द्वितीय) को पोप बनाया था।[10] इसका वास्तविक अभिप्राय क्या है यह आसानी से नहीं कहा जा सकता, किन्तु कम से कम इसका अभिप्राय यह अवश्य है कि ऑटो तृतीय को उसकी नियुक्ति में अपना स्वयं का भाग अत्यधिक प्रतीत होता था।

हमारे द्वारा उल्लिखित घटनाओं के संबंध में समकालीन निरीक्षणों एवं आलोचना के रूप में हमारे पास बहुत कम साक्ष्य है, किन्तु यह कहना महत्त्वपूर्ण है कि मर्सबर्ग के थीटमार ने जो ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथम चरण के बाद नहीं लिख रहा था, बेनेडिक्ट पंचम की, जिसे वह "valentiorem sibi (i.e., the Emperor) in Christo" कहता है, पदच्युति से असहमति प्रकट की है तथा यह माना है कि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी को भी उसकी जाँच करने का अधिकार नहीं है।[11]

ऑटो तृतीय की मृत्यु के बाद, पोप पद सम्राट् के दबाव से अपेक्षाकृत मुक्त रहा परन्तु साथ ही उसका समर्थन भी खो बैठा तथा एक बार फिर उसके बुरे दिन आए, क्योंकि जर्मनों के हस्तक्षेप से मुक्त होकर वह अधिक असहाय रूप से स्थानीय गुटों के आधिपत्य में आ पड़ा तथा ग्यारहवीं शदाब्दी के मध्य तक स्थिति पुनः विषम हो गई। हम हेनरी तृतीय द्वारा किये गये हस्तक्षेपों का विस्तार से अध्ययन नहीं करेंगे। यहाँ यही स्मरण रखना पर्याप्त है कि ग्रेगोरी षष्ठ को हेनरी तृतीय की उपस्थिति में सम्पन्न परिषद् में पदच्युत किया गया था जो दिसम्बर 1046 ई० में सुत्री में हुई थी तथा बेम्बर्ग के बिशप स्यूडगर को क्लेमेंट द्वितीय के रूप में पोप चुना गया।[12]

इसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं कि हेनरी तृतीय का कार्य अच्छे उद्देश्य से प्रेरित था। वास्तव में उसे पोप पद की दशाओं एवं स्वरूप में सुधार लाने में सफलता मिली, जिनका स्थायी प्रभाव पड़ा। इसके लिए प्रयुक्त साधनों के औचित्य का प्रश्न इससे सर्वथा भिन्न है।

1047 ई० में क्लेमेंट द्वितीय का देहावसान हुआ, जबकि ग्रेगरी षष्ठ जीवित ही

Scanned by CamScanner

था। साम्राज्य के सबसे सम्मानित बिशपों में लीज का बिशप वाज़ो (Wazo) था, जिसका वर्णन आगे और आएगा। हेनरी तृतीय ने क्लेमेन्ट के उत्तराधिकारी की नियुक्ति के बारे में उससे राय माँगी किन्तु उसके जीवन चरित्र के रचयिता के वर्णन के अनुसार वाज़ो ने अत्यन्त नम्रता एवं दृढ़ता से उत्तर देते हुए धार्मिक पद के न्यायसंगत अधिकारी के जीवित रहते हुए अन्य किसी की नियुक्ति के विरुद्ध हेनरी तृतीय को चेतावनी दी तथा धर्माचार्यों का यह मान्य सिद्धान्त बताया कि उस सर्वोच्च धार्मिक अधिकारी का निर्णय भगवान् के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं कर सकता।[13] ऐसा प्रतीत होता है कि वाज़ो का उत्तर हेनरी तृतीय के पास तब तक नहीं पहुँचा जब तक कि ब्रिक्सेन के पोपो की देमेसुस द्वितीय (Damasus II) के नाम से पोप पद पर नियुक्ति नहीं हो चुकी थी, किन्तु उसका यह निर्णय बहुत महत्त्वपूर्ण है।

वाज़ो ने जो मत दृढ़तापूर्वक, किन्तु विनम्र एवं चुने हुए शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया था वही अधिक कठोर रूप में एक तत्कालीन फ्रेंच चर्च के पादरी की रचना में व्यक्त किया गया है। उसने सम्राट् को अत्यन्त दुरात्मा बताकर उसकी निन्दा की है तथा उसे चुनौती देते हुए कहा है कि वह विचार करे कि पूर्ववर्ती सम्राटों एवं राजाओं के दृष्टान्तों को ध्यान में रखते हुए उसके द्वारा एक धर्माधिकारी के सम्बन्ध में निर्णय करने के लिए बैठना कहाँ तक उचित है। वह यहाँ तक कहता है कि हेनरी तृतीय अपनी संबंधी पोइतू की एग्नेस (Agnes of Poitou) से निषिद्ध-समागम विवाह के कारण एक साधारण आदमी का न्याय करने का भी अधिकारी नहीं है। वह कहता है कि जिस प्रकार एक साधारण आदमी पादरी के सामने अपराध-स्वीकृति करता है, पादरी बिशप के सामने तथा बिशप पोप के सामने, उसी प्रकार पोप केवल ईश्वर के सामने अपराध-स्वीकृति करता है, क्योंकि ईश्वर ने उसे अपने निर्णय के लिए सुरक्षित रखा है। वह घृणापूर्वक कहता है कि सम्राट् ईसा मसीह के स्थान पर न होकर, जब वह तलवार का प्रयोग एवं रक्तपात करता है शैतान के स्थान पर है।[14] यह भी महत्त्वपूर्ण है कि वह फ्रेंच बिशपों की राय एवं सहमति के बिना पोप के निर्वाचन का विरोध करता है तथा यह प्रतिपादन करता है कि चूँकि उनका चुनाव में कोई योगदान नहीं था वे आज्ञापालन के लिए बाध्य नहीं हैं।

वाज़ो तथा इस फ्रेन्च लेखक का दृष्टिकोण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथा उसी सिद्धान्त का निरूपण करता है जो पहले इसी शताब्दी में जैसा कि हम देख चुके हैं, मर्सबर्ग के थीटमार द्वारा अभिव्यक्त किया गया था। यद्यपि हमें यहाँ पर ध्यान रखना चाहिए कि हेनरी के कार्यों की इस निन्दा से चर्च के सुधारवादी दल के प्रमुख सदस्य सहमत नहीं थे। सुधारों का सबसे प्रधान इटालियन प्रतिनिधि पीटर डेमीयन था तथा वह हेनरी तृतीय तथा उसके द्वारा धर्म-विक्रय (Simony) जैसी तत्कालीन प्रथाओं के विरोध द्वारा की गई चर्च की सेवाओं का सर्वोच्च प्रशंसक था। लियो नवम के पदावधि काल में लिखे गये एक ग्रन्थ में वह यहाँ तक कहता है कि इस संबंध में की गई उसकी सेवाओं के कारण, दैवी विधान द्वारा यह आदेशित हुआ कि रोमन चर्च उसके संकल्पानुसार व्यवस्थित हो तथा उसकी अनुमति के बिना किसी का भी

Scanned by CamScanner

रोम के धर्मासन के लिए निर्वाचन नहीं किया जाना चाहिए ।[15]

इस काल का दूसरा सबसे प्रसिद्ध सुधारक सिल्वाकेन्डिडा का पादरी कार्डिनेल हम्बर्ट अपने "एडवर्सज सिमोनियेकोस" (Adversus Simoniacos) नामक ग्रन्थ में धर्म-विक्रय के खिलाफ हेनरी तृतीय द्वारा की गई चर्च की सेवाओं की प्रशंसा अत्यन्त उत्साहपूर्ण शब्दों में करता है ।[16] और यह भी ध्यान देने योग्य है कि, ग्रेगोरी सप्तम भी हेनरी तृतीय की प्रशंसा में सर्वोत्कृष्ट शब्दावली का प्रयोग करता है; तथा उसकी और उसकी पत्नी की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है ।[17]

इन विरोधी सम्मतियों के विवेचन से यह तो स्पष्ट है कि चर्च के सुधार के लिए सर्वाधिक उत्साही व्यक्ति भी सुत्री में हेनरी तृतीय के कार्यों के सम्बन्ध में अपने निर्णय में पूर्णतया एकमत नहीं थे ।

पोप की नियुक्ति में सम्राट् के योगदान के अधिकार का प्रश्न कुछ अंशों तक भिन्न था । यह कहीं भी प्रतीत नहीं होता कि अभी तक किसी ने गम्भीरतापूर्वक राजा के उसमें भाग लेने के औचित्य पर आपत्ति उठाई हो, किन्तु उसके योगदान का स्वरूप अनिश्चित था । अब हम सुत्री-की परिषद् के काल से लेकर पोप निकोलस द्वितीय तक इस प्रश्न के इतिहास का तथा पोप के चुनाव के सम्बन्ध में उसकी शासकीय आज्ञप्ति का संक्षेप में विवेचन करेंगे ।

हेनरी तृतीय ने रोम में "पेट्रीशियस" की उपाधि धारण की थी, तथा कुछ लेखक तो यहाँ तक कहते हैं कि इसके साथ पोप के चुनाव में कुछ विशेषाधिकार भी जुड़ा हुआ था ।[18] जैसा हम देख चुके हैं कि क्लेमेंट द्वितीय अपने अभिषेक के दूसरे ही वर्ष 1047 ई० में दिवंगत हो गया तथा ब्रिक्सन का पोपो, डेमेसस द्वितीय के रूप में जर्मनी के सम्राट् एवं उसकी सभा द्वारा, सम्भवतः वाजो द्वारा लिखे गए ग्रेगोरी षष्ठ के जीवित रहते हुए किसी अन्य के चुनाव की निन्दा करने वाले पत्र के सम्राट् को पहुँचने के पूर्व ही, पोप पद पर नियुक्त कर दिया गया । इसलिए जब डेमेसस द्वितीय की भी उसी वर्ष मृत्यु हो गई, तो यह स्पष्ट हो गया कि पोप के निर्वाचन के सही ढंग का प्रश्न गम्भीरतापूर्वक लोक-मानस को प्रभावित कर रहा है । टूल के ब्रूनो (Bruno of Toul) के लुई नवम के रूप में चुनाव के एक से अधिक विवरण उपलब्ध हैं । इनमें से पहला जो एनसलम (Anselm) द्वारा लिखे गए राइम्स के चर्च के इतिहास में विद्यमान है, वर्णन करता है कि पोप डेमेसस द्वितीय की मृत्यु पर रोम-वासियों ने हेनरी तृतीय को किस प्रकार से सूचित करके कहा कि उसके स्थान पर नयी नियुक्ति की जाए । सम्राट् ने बिशपों और साम्राज्य के "सामंतों" (Optimates) की राय लेकर टूल के ब्रूनो को जो अपने चरित्र एवं विद्वता के लिए विख्यात था तथा उसका अपना सम्बन्धी था, इसके लिए चुना । धर्मगुरु के गौरव का "अधिकार चिह्न" उसे समर्पित किया गया तथा उसे रोम भेजा गया (ad haec secumdum eccle-siastiones sanctiones susci iendas) । वहाँ पहुँचने पर रोमनिवासियों ने उसका सम्मानपूर्ण स्वागत किया तथा संत पीटर के सिंहासन पर लियो नवम के रूप में उसका अभिषेक कर दिया गया ।[19]

Scanned by CamScanner

विबर्ट (Wibert) द्वारा लिखे गए लियो नवम के जीवन चरित्र में, जो कि उसके अधीन ट्रूल का आर्कडीकन था, अतिरिक्त तथा महत्त्वपूर्ण विवरण मिलता है। लेखक ने लियो के सम्राट् हेनरी तृतीय की उपस्थिति में वॉर्म्स नामक स्थान पर बिशपों एवं पादरियों (proceres) की परिषद् द्वारा चुने जाने का वर्णन किया है। उसके अनुसार लियो ने विचार के लिए तीन दिन की अवधि माँगी तथा उस अवधि में उपवास एवं प्रार्थनाएँ करने के बाद पद को स्वीकार करने के लिए इस शर्त पर अपनी स्वीकृति दी कि सारे रोमन पादरी एवं रोम निवासियों की सहमति का उसे विश्वास दिलाया जाय। वह नंगे पैरों चलकर रोम आया तथा नगर में पहुँचकर उसने राजकीय चुनाव की घोषणा की परन्तु यह माँग की कि रोम निवासी जो भी अपनी इच्छा हो व्यक्त करें, उसने यह कहा कि परम्परानुसार सभी सत्ताओं से पूर्व पादरियों एवं जनता द्वारा चुनाव है, अतएव यह विश्वास दिलाया कि यदि वे उसके निर्वाचन से खुश न हों तो वह प्रसन्नतापूर्वक अपने घर लौट जाएगा। जब उसने देखा कि वे उसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर रहे हैं तभी उसने अभिषिक्त होने के लिए अंततः स्वीकृति दी।[20] इसमें हमें इस सम्भावना को स्वीकार करना चाहिए कि यह वर्णन किसी सीमा तक लेखक के सिद्धान्तों से भी प्रभावित है किन्तु इस सम्भावना को स्वीकार करने पर भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह इसे अस्वीकार करता प्रतीत नहीं होता कि पोप की नियुक्ति में सम्राट् का भी योगदान है, किन्तु वह रोम के पादरियों एवं जनता के अधिकारों का उल्लंघन अथवा अवहेलना नहीं कर सकता जो कि प्राथमिक निर्वाचक संस्था है।

लियो नवम के उत्तराधिकारी के रूप में, 1054 ई० में आइकस्टाट के बिशप गेभार्ट (विक्टर द्वितीय) की नियुक्ति का विवरण विभिन्न विद्वानों ने कुछ पृथक् शब्दों में किया है, किन्तु यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह चुनाव स्वयं सम्राट् ने बिशपों एवं राजसभा की राय से तथा रोमन चर्च के प्रतिनिधियों की स्वीकृति से किया था।[21]

स्टीफेन नवम (1057 ई०) के चुनाव के विषय में सम्राट् की राजसभा से सलाह लेने का कोई सूत्र उपलब्ध नहीं होता किन्तु अगले वर्ष उसके देहावसान के बाद रोम के संभ्रान्तवर्गों ने अपना अधिकार बनाये रखने का फिर प्रयास किया तथा वेल्लेट्री के बिशप को बेनेडिक्ट दशम (Benedict X) के रूप में पोप चुना, किन्तु कार्डीनलों ने उसे मान्यता देना अस्वीकार कर दिया तथा राजसभा की सहमति से निकोलस द्वितीय को सियेन नामक स्थान पर चुना गया। रोमन वर्गों के इस प्रयत्न ने ही निस्संदेह निकोलस द्वितीय को अप्रैल 1959 ई० में पोप के चुनावों की विधि को नियंत्रित करने वाले प्रसिद्ध आदेश को जारी करने के लिए बाध्य किया। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण धाराएँ ये थीं—चुनावों में कार्डीनल बिशपों एवं अन्य कार्डीनलों को प्राथमिक स्थान प्रदान करना, आवश्यकता पड़ने पर रोम से बाहर पोप के चुनाव करने की स्वीकृति देना जो तुरन्त रोम में अभिषेक न किया जाने पर भी सम्पूर्ण पोप के अधिकार क्षेत्र की सत्ता को उपयोग कर सकेगा, और अंततः हेनरी एवं उसके उत्तराधिकारियों के चुनाव से सम्बन्ध की स्वीकृति देना। शब्दावली अस्पष्ट होने पर भी निश्चित रूप से यह

Scanned by CamScanner

इसकी स्वीकृति देता प्रतीत होता है कि साधारण परिस्थिति में पोप की नियुक्ति की विधि में उनका भी न्यायोचित स्थान होगा ।[22]

सन्दर्भ

1. Mansi, 'Concilia' vol. xviii, A.,p.225.
2. Luitprand, Bishop of Cremona—De Rebus Cestis Ottonis, (M. G. H., S. S., vol. iii).
3. 'De Rebeus Gestis Ottonis' 21.
4. 'Continuator Reginonis', i, 627, (M. G. H.)
5. Cf. vol. i., p. 263.
6. Cf. Editor of 'Constitutiones' in M. G. H. ad loc.
7. M. G. H., Legum, Sect. IV., Const. 12.
8. Cf. vol. i., p. 271.
9. 'Vita S. Adalberti', xxi; Migno P. L., vol. 137. Otto III was at Revenna.
10. M. G. H., Legum, Sect. IV., Const. 26.
11. Thietmar : "Chronicon" ii. 18.
12. इन परिस्थितियों पर पूर्ण विचार के लिए तुलना करो। बेनेडिक्ट नवम एवं ग्रेगोरी षष्ठ पर आर० एन० पूल द्वारा (Proceedings of the British Academy) में प्रकाशित लेख ।
13. Anselmi, "Gesta Episcoporum Leodiensium". 65 : M. G. H. : S. S., vol. 7.
14. Peter Damian 'Liber Gratissimus', xxvii, ; 'Lib. De Lite', i. p. 56.
15. M. G. H., 'Lib. De Lite' vol. i. pp. 12–14. 'De Ordinando Pontifice'.
16. Humbert, 'Adversus Simoniacos' : M. G. H., Lib. De Lite'.
17. Gregory VII., Reg. iv. 2.
18. Cf. Bonizo, 'Lib. De Lite', vol. i., p. 586, and Ann. Rom. M. G. H. : S. S. v. p. 469, and Peter Damian, 'Disceptatio Synodalis', M. G. H., 'Lib. De Lite', i., p. 80.
19. Anselm, Monk of Rheims. 'Historia de dicationis Ecclesiae S. Renigli', 7; Migne, P. L., vol. 142.
20. Leo IX., 'Vita', 2 : Migne, P. L. vol. 143.
21. 'Annales Romani', a. 1054 : Berthold, 'Annales', a. 1054 : 'Annales Haserensis', a. 1054.
22. M. G. H., Legum, Sect. IV., Const. vol. i, 382.

Scanned by CamScanner

तृतीय अध्याय

1075 ई० तक बिशपों की नियुक्ति

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में हमने संक्षेप में उन सिद्धान्तों का विवरण देने का प्रयत्न किया जो नवीं शताब्दी के केरोलिन्जियन साम्राज्य में बिशपों की नियुक्ति के दिए निर्देशक सिद्धांतों के रूप में स्वीकृत थे। जैसा की निष्कर्ष रूप में हमने बताया, इन नियुक्तियों की वैधता के लिए निम्न पूर्वापेक्षाएँ अनिवार्य मानी जाती थीं—जैसे प्रदेश के पादरियों तथा जनता द्वारा चुनाव, उसी प्रान्त के बिशपों तथा प्रमुख गिरजाघर के बिशपों की स्वीकृति और राजा की सहमति, सामान्यतः यह भी माना जाता था कि इनमें से किसी भी तत्त्व की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।[1] इसमें संदेह नहीं कि उस समय व्यवहार तो प्रायः कुछ अनिश्चित था किन्तु स्वीकृत-सिद्धान्त स्पष्ट थे, तथा उनके बारे में कोई गम्भीर विवाद नहीं था। हमें अब संक्षेप में उस समय तक, अर्थात् 1075 ई० तक, इस प्रश्न के इतिहास पर विचार करना है, जबकि धर्माध्यक्ष की नियुक्तियों के सम्बन्ध में पोप एवं साम्राज्य के बीच महान् विवाद छिड़ गया। वास्तव में इसका अध्ययन कुछ ध्यान से करना आवश्यक है, यदि हम इस महान् संघर्ष का वास्तविक स्वरूप समझना चाहें तथा उसमें प्रतिनिधित्व किए गए विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ न्याय करना चाहें और इस महान् संघर्ष के विषय में उस दोषपूर्ण एवं अनैतिहासिक विचार से बचना चाहें जो इसे केवल धार्मिक आक्रमण अथवा राजकीय अत्याचार के रूप में प्रस्तुत करता है।

यह हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि इस महान् संघर्ष के प्रारम्भ तक नवीं शताब्दी के साहित्य में वर्णित सिद्धान्त स्वीकार किए जाते रहे तथा कम से कम सिद्धान्त रूप में तो यह स्वीकार किया जाता रहा कि पादरियों तथा जनता द्वारा चुनाव, उसी प्रान्त के बिशपों तथा प्रमुख धर्माध्यक्ष की स्वीकृति, और राजा की सहमति, ये सभी किसी बिशप की वैध नियुक्ति के सामान्य तत्त्व थे। इसके प्रमाणों का हम कुछ अधिक विस्तार से अध्ययन करेंगे।

हम देखते हैं कि ऐट्टो के एक ग्रन्थ में, जो कि 945 ई० में वर्सली का बिशप (Vercelli) बना तथा जिसका देहावसान 961 ई० में हुआ, धर्माध्यक्षीय नियुक्तियों की

Scanned by CamScanner

दशाओं को अत्यन्त स्पष्टतया वर्णन किया गया है। सिद्धान्तों के अनुसार, पादरियों एवं जनता को, जिसे वे सर्वोत्कृष्ट समझें चुनने का स्वतंत्र एवं निर्बाध अधिकार होना चाहिए। इस प्रकार निर्वाचित व्यक्ति की प्रधान गिरजाघर के एवं उस प्रान्त के अन्य बिशपों द्वारा सावधानी से परीक्षा की जानी चाहिए, यदि वे उसे किसी गम्भीर दोष से ग्रस्त पायें तो उसके अभिषेक को अस्वीकार कर दें। यदि वे उसे पद के योग्य पायें, तो जिस प्रदेश में वह पद स्थित है वहाँ के राजा को उचित सूचना देकर तथा उसकी स्वीकृति से अभिषेक किया जाना चाहिए।[2]

यही सिद्धान्त ओडोरेम्नस की जो सेन्स (Scns) नामक स्थान पर विद्यमान संत पीटर के गिरजाघर का साधु था, ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना में एक स्थल पर वर्णित है, जो निर्वाचन का नियम प्रतीत होता है। सेन्स का गिरजाघर फ्रेंक्स के राजा, सम्प्रान्तीय बिशपों, महापुरुषों, छोटे व बडे पादरियों तथा दोनों लिंगों के निष्ठावानों की स्वीकृति एवं इच्छा से बिशप की नियुक्ति की घोषणा करता है।[3]

इन उद्धरणों में, बिशप की नियुक्त की उचित दशाओं के विषय में उस युग के सामान्य आदर्शों का विवरण प्रतीत होता है। तथा यह सत्य है कि, नियुक्ति के निर्धारक तत्त्वों में से किसी एक के महत्त्व की न्यूनाधिक विवादास्पद स्थापना की दशा में ही प्रायः इन प्रश्नों का विवेचन होता था, यह इस विषय के विवेचन में किसी सीमा तक अव्यवस्था का कारण रहा है, क्योंकि एक असावधान या जल्दबाज विद्यार्थी के लिए इस प्रकार के उद्धरण प्रायः अन्य तत्त्वों की उपेक्षा करके एक तत्त्व के महत्त्व पर अधिक बल देते हैं। अतः हमें इस विषय का विवेचन सावधानी से प्रारम्भ करना चाहिए।

सर्वप्रथम, हम उन कतिपय वाक्यांशों पर विचार कर सकते हैं जो पादरियों एवं जनता द्वारा चुनाव के सिद्धान्त को सामान्य अथवा अनिवार्य मानने पर बल देते हैं। फ्ल्यूरी के एबट (Fleury) ऐवो की दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की रचना में, जिसका तीसरी पुस्तक में बहुधा उल्लेख किया गया है हमें चर्च तथा राज्य में चुनावों के सिद्धान्त की अत्यन्त प्रबल परिपुष्टि मिलती है। वह कहता है कि उसे तीन सामान्य (Generals) सिद्धान्तों का ज्ञान है, राजा अथवा सम्राट् का सम्पूर्ण साम्राज्य की स्वीकृति से, बिशप का नागरिकों एवं पादरियों की निर्विरोध सहमति से, तथा महाध्यक्ष का मठवासी साधु-मण्डली के प्रबुद्धतर निर्णय द्वारा।[4]

इसी के साथ ही हम इस प्रश्न का और अधिक निश्चित उल्लेख फुलबर्ट द्वारा किया गया पाते हैं जो 1006 ई० से 1028 ई० के बीच चाट्रेस का बिशप (Chartres) था। अपने एक पत्र में उसने दृढतापूर्वक थियोडोसियस नामक व्यक्ति के बिशप के रूप में अभिषेक में इस कारण से भाग लेना अस्वीकार किया है कि राजा को कोई अधिकार नहीं कि वह किसी व्यक्ति को किसी धर्म प्रदेश पर बिशप के रूप में क्षेत्र पर इस प्रकार थोप दे कि पादरी, जनता अथवा अन्य बिशप स्वतंत्र रूप से निर्णय न ले सकें। परन्तु उसके एक अन्य पत्र से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि फुलबर्ट का उद्देश्य यह निषेध करना नहीं कि बिशप पद पर नियुक्ति के निर्धारण में राजा का भी समुचित स्थान है। यह पत्र किसी एविसगउडस (Avisgaudus) को लिखा गया जिसने बिशप पद से त्यागपत्र दे दिया

Scanned by CamScanner

था तथा अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति के बाद पुनः अपने पद पर लौटना चाहता था। फुलबर्ट कहता है कि उसे वैसा करने का कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि उसके उत्तराधिकारी की नियुक्ति पादरियों एवं जनता के चुनाव, राजा की सहमति तथा रोमन प्रधान पादरी की स्वीकृति से सेन्स के आर्च बिशप द्वारा हुई है जो उस क्षेत्र का प्रमुख धर्माध्यक्ष है।[6]

बाद में, ग्यारहवीं शताब्दी में हम पाते हैं कि चर्च तथा राज्य के सुधारवादियों द्वारा अत्यन्त दृढ़तापूर्वक पादरियों एवं जनता द्वारा चुनाव के सिद्धान्त का समर्थन एवं क्रियान्वयन किया गया। लियो नवम द्वारा राइम्स में 1049 ई० में बुलाई गई परिषद् में यह व्यवस्था प्रकाशित की गई, कि पादरियों एवं जनता द्वारा चुनाव के बिना कोई चर्च पर शासन करने के लिए नियुक्त नहीं किया जाए। उसी वर्ष उसके द्वारा मेन्ज में हुई परिषद् में दो दावेदार बेसन्सों के आर्च बिशप पद (Besancon) के लिए उपस्थित हुए, एक बर्थोल्ड जो यह दावा करता था कि उसको ब्रर्गण्डी के राजा रूडोल्फ द्वारा इस पद पर स्थापित एवं प्रान्त के बिशपों द्वारा अभिषिक्त किया गया है, तथा दूसरा ह्यू (Hugh) जो उसके विरोध में यह कहता था कि बर्थोल्ड का निर्वाचन अथवा स्वागत पादरियों अथवा जनता द्वारा नहीं हुआ अपितु उसने अपनी नियुक्ति रुपए के बल पर राजा से खरीदी है परन्तु वह स्वयं जनता एवं पादरियों द्वारा चुना गया है। परिषद् ने व्यवस्था के नियमों को ध्यान में रखकर यह निर्णय दिया कि क्योंकि बर्थोल्ड चर्च के पुत्रों द्वारा न तो चुना गया न धर्म-गुरु के रूप में उसका स्वागत किया गया, अपितु सदा ही उसे अस्वीकृत किया गया है, अतः उसे अनिच्छुक जनता पर न तो थोपा जा सकता है न थोपा जाना चाहिए, जबकि ह्यू जो कि जनता एवं पादरियों द्वारा आर्चबिशप के रूप में निर्वाचित एवं वांछित है तथा जिसने अनिन्दनीय रूप से इतने लम्बे समय तक अधिकार-पद को धारण किया है, शांतिपूर्वक उसे बनाए रखे, क्योंकि वही सच्चा गड़रिया (नेता) है जो द्वार से प्रविष्ट हुआ है, तथा जो दूसरे ढंग से आया है वह चोर एवं लुटेरा है।[7] यह उल्लेखनीय है, कि परिषद् का निर्णय ह्यू द्वारा बर्थोल्ड पर लगाए गए धर्म-विक्रय के आरोप के आधार पर, जो कि सिद्ध नहीं किया जा सकता था, न होकर इस आधार पर किया गया कि चुनाव में पादरियों तथा जनता के अधिकार की उपेक्षा की गई है। इसके अतिरिक्त यह और भी उल्लेखनीय है कि, सम्राट् हेनरी तृतीय भी, जैसा पिछले अध्याय में हम उल्लेख कर चुके हैं, इस परिषद् में उपस्थित था तथा यह विशेषतया वर्णित है कि उसने इस निर्णय पर स्वीकृति दी।[8]

यदि इन वाक्यांशों में हम इस सिद्धान्त पर स्पष्ट बल दिया जाता हुआ पाते हैं कि बिशप का चुनाव उस धर्म-क्षेत्र के पादरियों एवं जनता द्वारा किया जाना चाहिए, तो हम दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दियों के साहित्य में ऐसे अनेक वाक्यांश भी पा सकते हैं जिनकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है कि उनके अनुसार लौकिक शासक, चाहे वह राजा हो अथवा सम्राट्, वास्तव में धर्म-पद पर नियुक्ति के असीमित अधिकारों से सम्पन्न था। संत उदालरिक (St. Udalric) के जीवन-चरित्र में, जो सम्भवतः दसवीं शताब्दी के आखिरी वर्षों में लिखा गया था, एक स्थान पर कहा गया है कि उसने सम्राट् से कहा कि

Scanned by CamScanner

उसकी अपनी मृत्यु के बाद बिशप पद जिस पर वह आसीन था उसके भतीजे अदलबेरा (Adalbero) को प्रदान किया जाए तथा सम्राट् ने वैसा करने की प्रतिज्ञा की।[9] अब हम उन वाक्यांशों पर विचार करेंगे, जिनमें उसके जीवनी लेखक ने संत उदालरिक के उत्तराधिकारी की नियुक्ति की वास्तविक परिस्थितियों का वर्णन किया है, इसके ही साथ यह देखना भी महत्त्वपूर्ण है कि लगभग स्वेच्छाचारी तरीके से सम्राट् को यह अनियमित अनुरोध स्वीकार करता हुआ बताया गया है।

पुनः यह भी उल्लेखनीय है कि वेरोना का राथेरियस (Ratherius of Verona) जो कि राजा की तुलना में बिशपों के उच्चतर गौरव का सबल समर्थक है तथा इस बात पर बल देता है कि राजा लोग जो बिशपों द्वारा "पद पर स्थापित" किये जाते हैं बिशपों को अभिषिक्त नहीं कर सकते, तो भी वह राजाओं द्वारा बिशपों के निर्वाचन अथवा पद स्थापना के अधिकार का वर्णन करता है।[10]

साथ ही, रोडल्फस ग्लेबर अत्यन्त दृढतापूर्वक धर्म-विक्रय की व्यक्तिगत रूप में तथा एक भाषण द्वारा जो उसके कथनानुसार हेनरी तृतीय ने गॉल तथा जर्मनी के बिशपों को दिया था, निन्दा करते हुए, यह स्वीकार करता हुआ प्रतीत होता है कि राजा को पवित्र पदों पर नियुक्ति का अधिकार प्राप्त है।[11]

यह स्वाभाविक ही होगा यदि कोई अविचारी अध्येता इन वाक्यांशों से यह निष्कर्ष निकाले कि इस युग में धर्म-पदों की अधिकांश नियुक्तियाँ लौकिक शासकों द्वारा, पादरियों, जनता अथवा दूसरे धार्मिक अधिकारियों की इच्छाओं का ध्यान रखे बिना की जाती रही हैं तो भी वास्तव में इस प्रकार का निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए; परिस्थिति के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हमें तभी होगा जब हम यह देखेंगे कि इस प्रकार के स्पष्टतः असंगत वाक्य उस युग के कतिपय प्रसिद्धतम चर्च के अधिकारियों के लेखों में भी मिलना असम्भव नहीं।

गेर्बर्ट के पत्र-व्यवहार में, जो बाद में पोप सिल्वेस्टर द्वितीय हुआ, हम ऐसे वाक्य पा सकते हैं जो चर्च के पदों पर नियुक्ति के सही तरीके के किसी भी मत का समर्थन करने के लिए उपयोग किए जा सकते हैं। राइम्स के आर्च बिशप अदेलबेरो के नाम से ओटो द्वितीय की विधवा रानी थियोफेनी को लिखे जाने वाले एक पत्र का प्रारूप प्रतीत होने वाले एक लेख में उससे कहा गया है कि यदि कोई बिशप पद रिक्त हो तो किसी ऐसे व्यक्ति की उस पर नियुक्ति न करें जिसकी सिफारिश आर्च बिशप ने नहीं की हो तथा विशेषतया गेर्बर्ट को एक ऐसा पद प्रदान करें।[12] दूसरे पत्र में, जो उसी आर्च बिशप के नाम से लिखा गया है, अदेलबेरो राजा द्वारा प्रदत्त बिशप पद को स्वीकार करने की अनुमति भतीजे को प्रदान करता हुआ दिखलाई देता है।[13] पुनः एक अन्य पत्र में जो सम्भवतः ट्रीयर के आर्च बिशप के नाम से लिखा गया है वह वरदून की जनता की इस बात के लिए निन्दा करता है कि उसने एक अन्य अदेलबेरो को बिशप मानना अस्वीकार कर दिया है जो सम्राट् द्वारा प्रान्त के बिशपों की स्वीकृति एवं सहमति से नियुक्त किया गया था।[14] ऑटो तृतीय के नाम से लिखे गए एक दूसरे पत्र में फिर ऑटो को यह कहता हुआ बतलाया गया है कि उसने कापुआ में विद्यमान संत विन्सेन्ट के मठ को किसी साधु को प्रदान कर

Scanned by CamScanner

दिया है।[15]

यदि हम केवल इन वाक्यांशों से ही निष्कर्ष निकालें तो स्वाभाविक रूप से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि गेर्बर्ट धार्मिक पदों पर नियुक्ति को लौकिक सत्ताधारियों का अधिकार मानता था तथा अधिक से अधिक उसमें सम्प्रान्तीय बिशपों के अधिकारों को केवल थोडा-सा महत्त्व देता था। किन्तु जब हम उसके पत्रों की गम्भीरतर परीक्षा करते हैं तो, हम पाते हैं कि अन्य अवसरों पर वे पूर्णतया एक भिन्न मत का प्रतिनिधित्व करते हैं। राइम्स के मठ के भिक्षुओं के नाम से फ्ल्यूरी के साधुओं को लिखे गए एक अन्य पत्र में वह ऐसे एक व्यक्ति के प्रति क्रोध एवं घृणा व्यक्त करता है जो केवल राजकीय नियुक्ति के आधार पर एक मठ के लिए दावा प्रस्तुत करता है।[16] पुनः 989 ई० में आर्नल्फ के राइम्स के आर्च बिशप चुने जाने की घोषणा के अभिलेख में प्रान्त के बिशप यह कहते हुए बताए गए हैं कि वे सभी पादरियों व जनता की राय से तथा सभी राजाओं की सहमति से उसे अपना अध्यक्ष चुनते हैं।[17] उन्हीं बिशपों के एक पत्र में जो स्वयं गेर्बर्ट के आर्नल्फ के पदच्युत किए जाने के बाद वर्जी की परिषद् द्वारा, 991 ई० में, राइम्स के आर्च बिशप चुने जाने की घोषणा करता है जनता द्वारा निर्वाचन की आवश्यकता के यथार्थ स्वरूप के बारे में एक मनोरंजक वाद-विवाद है। वे कहते हैं कि आर्नल्फ को उनके द्वारा जनता की माँग के प्रभाव में चुना गया था क्योंकि जैसा धर्म-ग्रन्थ कहते हैं "जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है" तथा शास्त्रानुसार बिशप के चयन में पादरियों एवं जनता की इच्छा एवं अभिलाषा से चुनाव किया जाना आवश्यक है। वे कहते हैं कि वे नहीं समझते थे यह बात सदा सच नहीं होती कि जनता की आवाज ईश्वर की आवाज है, और इसीलिए सभी पादरियों एवं जनता की आवाज को बिशप के चुनाव के लिए आवश्यक मानने के बजाय केवल उन्हीं की राय आवश्यक है जो कि सरल चित्त एवं अदूषित हों। वे धर्मपिताओं को यह कहते हुए उद्धृत करते हैं कि बिशप का चुनाव अनियन्त्रित भीड द्वारा न किया जाए, किन्तु वह बिशपों के ही द्वारा हो, ताकि जिसका अभिषेक किया जा रहा है उसकी वे परीक्षा कर सकें। अतः वे राइम्स प्रांत के बिशप, राजाओं, ह्यू तथा रॉबर्ट की सम्मति और स्वीकृति से तथा जनता एवं पादरियों की सहमति से, जो कि देवताओं के अपने हैं, घोषणा करते हैं, कि साधु गेर्बर्ट को उनके द्वारा अपना आर्च बिशप चुन लिया गया है।[18]

जब हम इन सभी वाक्यांशों को सम्मुख रखते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि गेर्बर्ट इससे सुपरिचित था कि बिशपों एवं मठाध्यक्षों की नियुक्ति लौकिक सत्ता के स्वेच्छाचारी निर्णय का विषय नहीं है। किन्तु इस नियुक्ति में उस धर्म-क्षेत्र की जनता के चाहे वे पादरी हों या सामान्य जनता तथा बिशपों की नियुक्ति में प्रान्त के बिशपों तथा मठाध्यक्षों की नियुक्ति के विषय में मठ के साधुओं के न्यायोचित एवं वैधानिक अधिकार हैं।

गेर्बर्ट का पत्र-व्यवहार इस प्रकार दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दियों के लेखकों के अवसरिक वाक्यांशों की व्याख्या करते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता बताने वाला एक उदाहरण हो सकता है तथा पीटर डेमियन की रचनाएँ इसे बहुत स्पष्ट कर देती हैं कि ग्यारहवीं शताब्दी के तीसरे चतुर्थांश में सुधारवादी दल का सबसे प्रसिद्ध

Scanned by CamScanner

प्रतिनिधि भी उन तत्त्वों की जटिलता को स्वीकार करता था जो एक न्यायसंगत तथा सुव्यवस्थित धार्मिक नियुक्ति के लिए आवश्यक है। इस समय चर्च धर्म-विक्रय के अपराधों को दृढ़ता से दंड देने के लिए सजग था, इस प्रश्न पर हम कुछ समय बाद विस्तार से विचार करेंगे और चर्च के सुधारक सदस्य जैसे पीटर डेमियन इस दोष की निरन्तर निन्दा करते रहते थे तथा इसके दमन के लिए कठोरतम उपायों के प्रयोग करने का प्रतिपादन करते थे, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वे लौकिक सत्ताधारियों द्वारा धार्मिक पदों पर नियुक्ति में योगदान के औचित्य को अस्वीकार अथवा उस पर संदेह करते हों।

उदाहरणार्थ पीटर डेमियन के एक लघुतर प्रबन्ध में, अत्यन्त दृढ़तापूर्वक मनुष्यों को राजकीय पदों के प्रशासन में की गई सेवाओं के लिए बिशप के कार्यालय के अन्तर्गत शाही या राजकीय गिरजों के छोटे पादरी के रूप में नियुक्ति करने की प्रथा पर आक्रमण किया गया है तथा राजकुमारों एवं अन्य सभी से जिनको धार्मिक पदों पर नियुक्ति का अधिकार है, अनुरोध किया गया है कि उनका यह कर्त्तव्य है कि वे यह याद रखें कि उनको अपने अधिकारों का प्रयोग स्वेच्छाचारी अथवा अस्थिर ढंग से नहीं करना चाहिए।[19] वह उनको अधिकारों के दुरुपयोग के विरुद्ध चेतावनी देता है, किन्तु वह यह नहीं कहता कि उनका अधिकार न्यायोचित नहीं। दूसरे स्थानों पर फाएन्जा के (Faenza) पादरियों एवं जनता को लिखे एक पत्र में वह बहुत स्पष्टतया उनके बिशप को चुनने के अधिकार की तथा उसकी नियुक्ति में पोप के भी भाग को स्वीकार करता है, किन्तु वह उनकी इसके लिए प्रशंसा करता है कि उनके द्वारा राजा के आने तक चुनाव नहीं करने का निश्चय किया गया था।[20] परमा के केडेलुअश (Cadelous of Perma) को लिखे गए एक पत्र में, जो कि एलेकजेण्डर द्वितीय के विरुद्ध 1061 ई० में जर्मन और लेम्बार्ड बिशपों की एक धर्मसभा द्वारा होनोरियस द्वितीय (Honorius II) के रूप में पोप पद के लिए चुना गया था, पीटर कुछ सीमा तक अनियंत्रित शब्दों में रोमन चर्च की इच्छा के बिना, रोमन धर्माधिकार को पाने के प्रयत्नों के लिए उसकी धृष्टता की निन्दा करता है। यदि सेनेट, छोटे पादरियों तथा जनता को वह छोड़ दे तो भी उसे कम से कम कार्डीनल बिशपों का स्थान तो स्वीकर करना ही चाहिए जो कि पोप के निर्वाचन में प्रमुख स्थान रखते थे। धर्मवैधानिक सत्ता का यह आदेश था कि छोटे से गिरजाघर का पादरी भी इसका निर्णय स्वतंत्र रूप से कर सके कि उससे ऊपर के पद पर किसे नियुक्त किया जाए। वह पोप पद के उचित निर्वाचन के प्रमुख तत्त्वों का संक्षिप्त विवेचन भी करता है। वह कहता है कि कार्डीनल बिशपों का प्रथम स्थान है, उसके बाद सामान्य रूप से पादरियों और तीसरे स्थान पर जनता की स्वीकृति आती है। अंत में इस पर तबतक प्रतीक्षा की जाएगी जबतक कि राजकीय सत्ता की राय न ले ली जाय, यदि, जैसा कि एलेक्जेण्डर द्वितीय के चुनाव में हुआ था, परिस्थितियाँ ऐसी न हों कि प्रतीक्षा करना खतरनाक हो।[21] इस पत्र के शब्द पोप के चुनाव के सम्बन्ध में पोप निकोलस द्वितीय के नए विधानों की ओर उल्लेख करते प्रतीत होते हैं तथा उसको हम इस तथ्य के उदाहरण के रूप में उद्धृत करते हैं कि पीटर डेमियन बिशप पद के निर्वाचनों में पादरियों

Scanned by CamScanner

एवं जनता दोनों के अधिकारों तथा राजा और सम्राट् के सम्मति देने के अधिकारों को भी स्वीकार करता था।

सम्भवतः इस युग के धार्मिक पदों पर नियुक्तियों के सिद्धान्तों का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण चुनावों के उन कतिपय विवरणों में उपलब्ध होगा जो कि सुरक्षित रखे गए हैं। सबसे पहला जिस पर हम ध्यान देंगे वह संत उदालरिक के जीवन चरित्र में सुरक्षित है, जिसका हम पहले ही उल्लेख कर आये हैं। उससे हमें पता चलता है कि उसकी मृत्यु के बाद उस बिशप धर्म-प्रदेश से सम्राट् को प्रतिनिधि भेजे गए जो बिशप के धर्म-दण्ड को अपने साथ लेकर गए। कोई काउन्ट बर्खार्ड्ट (Burchardt) उनको रोकने में सफल हो गया, तथा उसने उनको यह कहकर समझाया कि सम्राट् ने निश्चय किया है कि उसका पुत्र बिशप बने। प्रतिनिधि इस बात से परिचित बताए गए हैं कि उसे चुनना अथवा न चुनना उनके अधिकार में है, अंत में उन्होंने वैसा ही किया तथा अपने चुनाव-निर्णय पर सम्राट् की पुष्टि कराने के लिए राजसभा को रवाना हो गये।[22]

संत पीटर के मठ के उत्तराधिकार की परिस्थितियों के वर्णन से जो चार्ट्रेस के फुलबर्ट के द्वारा दिया गया है इसकी तुलना की जा सकती है। जब यह मठाधीश मरणासन्न था मेगेनार्ड नामक व्यक्ति चार्ट्रेस के सामन्त थियोबाल्ड के पास मठाधीश पद पर नियुक्ति के लिए गया। काउन्ट ने उसे पुनः साधुओं के पास भेज दिया और यह इच्छा व्यक्त की कि वे उसका मठाधीश के रूप में स्वागत करें। किन्तु उनके द्वारा प्रत्युत्तर दिया गया कि तब तक कोई मठाधीश नहीं हो सकता जबतक पहला मठाधीश जीवित है या वह मठ के सदस्यों द्वारा निर्वाचित नहीं है। कुछ समय बाद जब मठाधीश की मृत्यु हो गई तो साधुओं ने निर्णय किया कि वे मेगेनार्ड को मठाधीश बनाना नहीं चाहते और सामन्त के पास अपने प्रतिनिधियों को मठाधीश की मृत्यु का समाचार देने तथा नया चुनाव कराने के लिए उसकी अनुमति लेने को भेजा। साधुओं में से दो व्यक्तिगत रूप से उस सामन्त के पास चले गए तथा उसे बताया कि उनके साथियों ने मेगेनार्ड को चुन लिया है तथा उसने उनकी अनुवक्ति से सन्तुष्ट होकर अधिकार-दण्ड उनको तुरन्त सौंप दिया। दूसरे साधु इस पर बहुत क्रुद्ध हुए तथा उन्होंने सामन्त को लिखा कि उनके द्वारा मेगेनार्ड निर्वाचित नहीं हुआ है, किन्तु उसने उनको विवश किया कि वे उसको उस पद पर स्वीकार करें।[23]

केम्बराई (Cambrai) के बिशप संत लीटबर्ट के जीवन चरित्र में हम एक अन्य चुनाव का रोचक एवं विस्तृत विवरण पाते हैं। पद के रिक्त होने पर उसे पादरियों एवं जनता द्वारा बिशप पद के लिए चुना गया तथा वह एवं केम्बराई चर्च के प्रतिनिधि हेनरी तृतीय की राज्यसभा में पिछले बिशप की मृत्यु की और लीटबर्ट के निर्वाचन की सूचना देने के लिये भेजे गये। हेनरी ने घोषणा की कि वह लीटबर्ट को केम्बराई का बिशप चुनने में उनसे सहमत है। प्रान्त के बिशपों की सहमति से फिर यह प्रस्ताव राइम्स के आर्च बिशप के पास भेजा गया, जो वैध अधिकारतः अधिधर्माध्यक्ष था, तथा उसने अपनी स्वीकृति दे दी।

इन वर्णनों से अधिक महत्त्वपूर्ण लीज के बिशप वाजो की नियुक्ति से सम्बद्ध घटनाओं का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है। 1041 ई० में बिशप निथार्ड (Nithard) की मृत्यु के बाद

Scanned by CamScanner

अपनी अनिच्छा के बावजूद उसे निर्विरोध रूप से चुना गया था। उसने कहा कि उसका चुनाव राजा को अप्रिय होगा तथा अनुरोध किया कि वे उसकी इच्छा जानने तक प्रतीक्षा करें, किन्तु उसके विरोध को अस्वीकार करते हुए उसे चुन लिया गया तथा रेटिस्बन (Ratisbon) को भेज दिया गया जहाँ उस समय हेनरी तृतीय था। वाज़ो के वहाँ पहुँचने पर लीज़ के गिरजाघर के पत्र के साथ-साथ पादरी का दण्ड भी राजा को सौंप दिया गया। दूसरे दिन राजा ने उस विषय पर राजभवन के राजकुमारों एवं बिशपों से विचार-विमर्श किया। उनमें से कुछ ने यह विचार प्रकट किया कि यह चुनाव राजा की सहमति बिना हुआ है अतः अस्वीकार कर दिया जाय तथा यह भी अनुरोध किया कि बिशप को शाही-गिरजे के पादरियों में से ही चुना जाय जहाँ वाज़ो ने कभी सेवा नहीं की थी। इन व्यक्तियों का मत स्वीकृत हो जाता यदि कोलोन का आर्चबिशप हर्मान तथा वुर्जबर्ग का बिशप ब्रूनो हस्तक्षेप नहीं करते, जिनके द्वारा अन्ततः हेनरी को वाज़ो के चुनाव को स्वीकार करने के लिये मना लिया गया।[24]

इन विवरणों में सम्भवतः हम इस युग के नियुक्ति के सामान्य सिद्धान्तों एवं तरीकों को पा सकते हैं। धर्म-क्षेत्र अथवा मठ के पादरी एवं जनता चुनाव के अधिकार का दावा करते थे, किन्तु राजा को भी अपनी स्वीकृति देनी होती थी। हम देख सकते हैं कि जिसे इन अधिकारी व्यक्तियों ने चुना उसे अधिकार-दण्ड के साथ राजा के पास भेजा गया तथा यदि उसने उसे स्वीकार कर लिया तो उस पद पर उसे नियुक्त कर दिया गया। यदि, राजा उनके चुनाव से सन्तुष्ट नहीं होता तो वह न केवल अपनी सहमति देना ही अस्वीकार करता अपितु स्वयं दूसरी नियुक्ति कर सकता था। इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति को फिर उस प्रदेश के अधिधर्माध्यक्ष के पास भेजा जाता था क्योंकि यह अधिकार प्रतिष्ठापित था कि उससे तथा बिशपों से नवीन अधिकारी के अभिषेक के पूर्व परामर्श किया जायगा।

अन्त में यह देखना भी उचित होगा कि दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दियों में अनेक अवसरों पर बिशपों के चुनाव में पोप ने भी महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। पोप जॉन त्रयोदश द्वारा बवेरियन जनता एवं पादरियों से निर्वाचित होने पर साल्ज़बर्ग (Salzburg) के आर्चबिशप की नियुक्ति का वर्णन उपलब्ध होता है।[25] पोप ग्रेगोरी पंचम को आर्नल्फ नामक व्यक्ति को आक्सोने के बिशप पद पर नियुक्ति के हेतु सम्राट् की आज्ञा, बिशपों के निर्णय तथा उस धर्म-क्षेत्र के पादरियों एवं सम्मानीय व्यक्तियों की स्वीकृति एवं मान्यता की पुष्टि एवं उससे सहमति रखते हुए वर्णन किया गया है। क्लेमेंट द्वितीय पादरियों, जनता और राजकुमारों द्वारा सालर्नो के आर्चबिशप के निर्वाचन को संपुष्ट करता है।[26] एलेक्जेण्डर द्वितीय विजेता विलियम द्वारा रूएन के आर्चबिशप की नियुक्ति को औपचारिक सहमति देता है[27] तथा जैसा हमें बाद में विचार करने का अवसर प्राप्त होगा हिल्डेब्रांड की मन्त्रणा से पोप ने यह भी माँग की कि मिलन के आर्चबिशप पद के लिये कोई भी चुनाव तबतक वैध नहीं है जबतक पोप उसकी स्वीकृति न दे।[28] धार्मिक चुनावों में पोप की स्थिति का तर्काधार वास्तव में क्या था इस पर हम यहाँ विचार नहीं कर सकते, किन्तु उसके इन उदाहरणों की समीक्षा महत्त्वपूर्ण है।

Scanned by CamScanner

सन्दर्भ

1. देखें खण्ड प्रथम, पृ० 267-70।
2. Atto of Vercelli, 'De Pressuris Ecclesiasticis', ii, : Migne, P, L., vol. 137 (p. 87).
3. Odoramnus, (Opusculum) viii : Migne, P. L., vol. 142.
4. Fulbert of Chartres, 'Ep'., xxvi. : Migne, P. L., vol. 141.
5. Abbo, Abbot of Fluery, 'Collectio Canonum', iv. : Migne. P. L, vol. 139.
6. Id., 'Ep'., xxxv.
7. Leo IX., 'Ep'., 22; Migne,, P. L. vol. 143.
8. देखो पृ० 4।
9. Vita S. Udalrici, xxi. : Migne, P. L., vol. 135.
10. Ratherius of Verona, Praeloquiorm,' iv. 2.
11. Rodolfus Glaber, 'Historia', ii. 6 : Migne, P. L., vol. 172.
12. Gerbert, 'Epistolae', 117.
13. Id. ,, Ep. ,, 57.
14. Id. ,, Ep. ,, 79.
15. Id. ,, Ep. ,, 214.
16. Id. ,, Ep. ,, 95.
17. Id. ,, Ep. ,, 155.
18. Gerbert, 'Ep'., 179.
19. St. Peter Damian, 'Opusculum' xxii. 4 : Migne, P. L., vol. 145.
20. Id., 'Epistles', Bk. v. 10 : Migne, P. L., vol. 144.
21. St. Peter Damian, 'Ep'., Bk. i. 20.
22. Vita S. 'Udalrici', xxviii, : Migne, P. L., vol. 135.
23. Fulbert of Chartres, 'Ep'., II. ; Migne, P. L., vol. 141.
24. Anselmi, 'Gesta Episcoporum Leodiensium', 50 : M. G. H. ; S. S., vol. 7.
25. Pope John XIII., 'Ep'. and Dec. III. ; Magne, P. L., vol. 135.
26. Clement II., 'Ep'., vii. ; Migne, P. L., vol, 142,
27. Alexander II., 'Ep'., 56 : Migne, P. L., vol. 146.
28. Arnulfus, Gesta Archiepiscoporum Mediolanensium' : M. G. H. : S. S., iii. 21.

Scanned by CamScanner

चतुर्थ अध्याय

लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं की सापेक्ष गरिमा

यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त कहा जा चुका है कि, सम्भवतः दसवीं एवं ग्यारहवीं शताब्दियों में दो महान् सत्ताओं की सापेक्ष स्थिति को निर्धारित करने वाले कतिपय सामान्य सिद्धान्तों को प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करता था, तथापि प्रत्येक सत्ता के यथार्थ क्षेत्र का वास्तविक परिसीमन कुछ अनिश्चित तथा अस्थिर था। लौकिक सत्ता के अपने धार्मिक दायित्व थे, तथा धार्मिक सत्ता के राजनैतिक दायित्व थे, जबकि अनेक धार्मिक विषयों के निर्देश एवं नियंत्रण में ईसाई जनता अर्थात् जनसामान्य का अनिर्धारित किन्तु वास्तविक स्थान था। इस युग की कुछ अवधारणाओं पर, जो उन विवादों के अविकसित स्वरूप के उदाहरण हैं, जिन पर बाद में संघर्ष केन्द्रित हुआ तथा उन पर हुए चर्च के कुछ महान् सदस्यों के निर्णयों पर अधिक ध्यान देना उपयोगी होगा।

हम इस प्रकार के वाक्यांश पा सकते हैं जो बहुत स्पष्ट रूप में लौकिक सत्ता की तुलना में आध्यात्मिक सत्ता के उच्चतर गौरव पर बल देते हैं। हम पिछले पुस्तक खण्ड में कई बार दसवीं शताब्दी के रोचक किन्तु विचित्र बिशप वेरोना के राथेरियस का उल्लेख कर चुके हैं। उसके लेखों में हम राजा के पद की तुलना में अपने पद एवं स्थिति के उच्चतर होने के विश्वास की निश्चित अभिव्यक्ति पाते हैं। वह इटली के राजा ह्यू के प्रभाव से वेरोना का बिशप बना था, परन्तु उससे झगड़ने के कारण कुछ समय के लिये पाविया में बन्दी बना लिया गया था। प्रेलोक्विओरियम (Praeloquiorium) नाम से प्रसिद्ध उसके ग्रन्थ में उसने निस्संकोच रूप से राजा का वर्णन करते हुए उसे बिशपों का सम्मान करने की चेतावनी दी है और उसे यह स्मरण दिलाया है कि वे उसके ऊपर नियुक्त किये गये हैं, न कि वह उनके ऊपर। वह कान्सटेन्टाइन के बारे में रूफनस की कथा तथा नाइस की परिषद् में बिशपों की उपस्थिति में उसकी विनम्रता का उद्धरण देता है।[1] वह दावा करता है कि ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा बिशप के बारे में विचार नहीं किया

Scanned by CamScanner

जा सकता[2] तथा बिशप राजा से उच्चतर स्तर पर है क्योंकि राजाओं को बिशपों ने बनाया है, जबकि बिशप राजा द्वारा नियुक्त नहीं होता।[3]

पुनः पोप सिल्वेस्टर द्वितीय (गेर्बर्ट) के नाम से प्रसिद्ध एक सन्दर्भ ग्रन्थ में, बिशपों को यह स्मरण रखने का अनुरोध किया गया है कि उनकी गरिमा की तुलना किसी से भी नहीं हो सकती तथा बिशप के किरीटों की तुलना में राजाओं के मुकुट वैसे ही हैं जैसे सोने की तुलना में सीसा और राजा तथा राजकुमार पुरोहितों को सिर झुकाते हैं तथा उनकी आज्ञाओं का आदर करते हैं।[4]

इस सिद्धान्त का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रबल प्रतिपादन सम्भवतः लीज के बिशप वाज़ो पर, जिसका हम अनेक बार उल्लेख कर चुके हैं, आरोपित शब्दों में पाएँगे। उसका जीवनी लेखक वर्णन करता है कि किस प्रकार एक अवसर पर सम्राट् हेनरी तृतीय की राजसभा में उपस्थित होने पर उसने अपने लिए एक आसन की माँग की क्योंकि यह उचित प्रतीत नहीं होता कि पवित्र विलेयन से अभिषिक्त व्यक्ति का समुचित सम्मान न हो। सम्राट् ने कहा कि उसे भी पवित्र तेल से सिंचित होने के कारण सत्ता प्राप्त हुई है, किन्तु वाज़ो ने उत्तर दिया कि जो यह अभिषेक उसने प्राप्त किया है वह पुरोहित के अभिषेक से बहुत भिन्न तथा हीनतर है, क्योंकि वह मृत्यु की शक्ति का चिह्न है जबकि पुरोहित का अभिषेक जीवन की शक्ति का।[5]

उन दिनों में भी, जबकि लौकिक सत्ता की तुलना में आध्यात्मिक सत्ता की उत्कृष्टता के दावे, जैसा हम देख चुके हैं कितने प्रबल थे, हमें सावधानी से यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि लौकिक विषयों में भी धार्मिक व्यक्ति लौकिक सत्ता के अधीन नहीं थे। बड़े पादरी, जैसे, बिशप एवं बड़े-बड़े मठों के मठाधीश दसवीं शताब्दी के अन्त तक प्रायः सभी के सभी सम्राट् या राजा के या किसी बड़े सामन्त के जागीरदार थे, तथा इस रूप में ये उनके प्रति निष्ठा रखते थे तथा उनके सामन्ती पद के प्रति सम्मान के साथ-साथ सामन्ती न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र में आते थे।

हम ऊपर वे शब्द उद्धृत कर चुके हैं जिनमें पोप सिल्वेस्टर द्वितीय के रूप में गेर्बर्ट ने राजा की तुलना में बिशपों की उच्चतर गरिमा का वर्णन किया है, किन्तु साथ ही यह भी ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि उसी गेर्बर्ट ने जब वह बोबियो का मठाधीश था, कहा है कि वह किसी समय वास्तव में स्वतन्त्र था, परन्तु अब वह सम्राट् का सेवक है।[6] पुनः सम्राट् कोनार्ड प्रथम के जीवन चरित्र में विधो ने लोम्बार्डी के बड़े सामन्तों के विरुद्ध वेलवेसॉरेस्स (Valvassores) के विद्रोह का वर्णन करते हुए उल्लेख किया है कि उसने लोम्बार्डी के तीन बिशपों को पकड़ लिया तथा निर्वासित कर दिया। वह कहता है कि इससे अनेक व्यक्ति क्रुद्ध हो गये कि उसने बिना विचार किये ईसा के पुरोहितों को दण्डित किया, तथा वह विशेषतया कोनार्ड के पुत्र हेनरी का (जो बाद में हेनरी तृतीय हुआ), उल्लेख करता है जो अपने पिता के कार्य से बहुत नाराज था। यदि न्यायिक निर्णय द्वारा अपराधी ठहराया जाने के बाद उनको सजा दी जाती तो उनके प्रति आदर का कोई औचित्य नहीं था, किन्तु ऐसे निर्णय सुनाये जाने से पूर्व वे पुरोहितों के योग्य सम्मान के पात्र थे।[7] उचित न्यायिक तरीके को अपनाये बिना बिशपों के खिलाफ कोनार्ड की कार्यवाही की

Scanned by CamScanner

कठोर अस्वीकृति केवल इस तथ्य को ही अत्यन्त स्पष्टतया सिद्ध करती है कि बिशप सम्राट के विरुद्ध अपराधों के लिये उचित न्यायालयों द्वारा ही दण्ड के पात्र होते थे।

इसको और अधिक बल पूर्वक लीज के वाज़ो के जीवन चरित्र में स्पष्ट किया गया है जिसका हम पहले अभी-अभी उल्लेख कर चुके हैं। रेवेन्ना के आर्चबिशप वीगर पर अनेक धार्मिक अनियमितताओं के आरोप लगाये गये थे तथा उसे सम्राट् के न्यायालय में बुलाया गया था और यह मामला बिशपों को सौंप दिया गया। उनमें बहुत हिचकिचाहट थी, किन्तु वाज़ो ने घोषणा की कि एक इटेलियन बिशप का निर्णय एक उत्तरी बिशप नहीं कर सकता। अंत में, अपनी आज्ञा के नाम पर जब सम्राट् ने सारे मामलों में उससे अपनी राय देने को कहा, तो उसने उत्तर दिया कि बिशपों के लिए पोप का आदेश एवं सम्राट् के प्रति निष्ठा मान्य हैं, उनको लौकिक विषयों में सम्राट् को जवाब देना होता है, किन्तु धार्मिक विषयों में वे पोप के प्रति उत्तरदायी हैं, इसलिये यदि रेवेन्ना के आर्चबिशप ने धार्मिक व्यवस्था के विरुद्ध कोई अपराध किया है तो, इसका निर्णय केवल पोप ही कर सकता है, किन्तु उसने यदि सम्राट् द्वारा सौंपे गये लौकिक विषयों में कोई असावधानी या निष्ठाहीनता-पूर्ण व्यवहार किया है, तो निस्सन्देह सम्राट् उसका निर्णय कर सकता है।[8]

अपने क्षेत्रों में धार्मिक सत्ता की स्वायत्तता बनाये रखने के लिए वाज़ो की दृढ़ता स्पष्ट है, किन्तु लौकिक विषयों में बिशपों के लौकिक सत्ता के अधीन होने के विषय में भी उसका निर्णय उतना ही स्पष्ट है।

यदि हम संक्षेप में पुनः पीटर डेमियन के दृष्टिकोण पर विचार करें, जिसके बारे में हम अनेक बार उल्लेख कर आये हैं, तो सम्भवतः यह लौकिक और धार्मिक सत्ताओं के सम्बन्धों और स्वरूप के बारे में, उस समय मनुष्यों की धारणा की जटिलता पर अधिक स्पष्टतापूर्वक प्रकाश डाल सकता है। जैसा कि हम कह चुके हैं, वह ग्यारहवीं शताब्दी के तृतीय चतुर्थांश में चर्च की व्यवस्था और अनुशासन में सुधार लाने का सबसे अधिक उत्साही एवं निश्चयी प्रतिपादक था, किन्तु साम्राज्य तथा पोप पद में संघर्ष के खुले रूप में छिड़ने से पहले ही उसका देहावसान हो गया।

उसके लेखों से ऐसे पदांश उद्धृत करना बहुत सरल है जो, यदि सन्दर्भहीन रूप से ग्रहण किये जाएँ तो, यह इंगित करते प्रतीत होते हैं कि उन दो महान् दलों में से, जिनमें यूरोप शीघ्र ही विभाजित होने वाला था, किसी में भी उसको रखा जा सकता है। जैसा हम देख चुके हैं, धार्मिक नियुक्तियों के तरीकों में सुधार लाने के उत्साह के बावजूद उसने स्पष्टतया उनके सम्बन्ध में लौकिक सत्ता की वैध स्थिति को मान्यता दी। फाएन्जा की जनता को लिखे गये पत्र में उसने राजा हेनरी तृतीय के आने से पूर्व अपने बिशप का चुनाव न करने के उनके निश्चय की प्रशंसा की।[9] लौकिक राज-सत्ताधारियों को अपने को नियुक्ति के असीमित अधिकारों से सम्पन्न मानने की गलती के विरुद्ध चेतावनी देते हुए भी वह स्पष्टतापूर्वक उनके अधिकार स्वीकार करता प्रतीत होता है।[10] यहाँ तक कि पोपीय धर्म-पीठ की नियुक्तियों के विषय में भी वह पोप निकोलस द्वितीय के आदेश की व्याख्या स्पष्ट रूप से इस प्रकार करता प्रतीत होता है कि चुनाव को तबतक पूर्ण नहीं माना जा सकता जबतक की वह राजकीय सत्ता को प्रस्तुत नहीं किया जाय।[11] उसके द्वारा किये गये हेनरी

Scanned by CamScanner

तृतीय के उल्लेखों में, जैसा हम देख चुके हैं, वह सबसे अधिक सुनिश्चित शब्दों में धर्म-पद को बेचने से मुक्त करने के लिये हेनरी द्वारा की गई चर्च की सेवाओं को मान्यता देता है, तथा उसकी राजा जोसिया (King Josiah) से तुलना करता है, जिसने जब अपनी कानून की पुस्तक (Book of the Law) प्रवर्त्तित की तो पुराने राजाओं के अंधविश्वासों, जुगुप्सित मूर्तियों एवं वेदियों को उठाकर फेंक दिया था और कहता है कि क्योंकि उसने अपने पूर्वाधिकारियों के भ्रष्ट उदाहरण का अनुकरण नहीं किया इसलिए, दैवी व्यवस्था के अनुसार रोमन चर्च सम्प्रति उसकी इच्छाओं के अधीन रखा गया है तथा रोम की धर्म-पीठ के लिए किसी का भी निर्वाचन उसके अनुज्ञप्ति के बिना नहीं होना चाहिए।[12]

यदि हम इस प्रकार के वाक्यांशों से यह अनुमान लगाना ठीक ही समझें कि पीटर डेमियन धार्मिक मामलों में लौकिक सत्ता के हस्तक्षेप को उचित मानता था, तो उसके लेखों में हम इस प्रकार के वाक्यांशों को भी पा सकते हैं जो लौकिक की तुलना में आध्यात्मिक सत्ता की श्रेष्ठता की भावना को स्पष्टतया अभिव्यक्त करते हैं। एक स्थान पर वह पोप को राजाओं का राजा तथा सम्राटों का राजा बताता है, जो गौरव और सम्मान में सभी मनुष्यों से बढ़कर है।[13] यह पीटर डेमियन ही है जिसने कुछ ऐसे शब्दों का सम्भवतः सर्वप्रथम प्रयोग किया जो उत्तरकालीन संघर्ष में प्रायः उद्धृत किये गये। उसने ईसा को संत पीटर को यह कहते हुए बताया है "Beato vitae aeternae clavigero, terreni simul et coelestis imperii iura"; और दूसरे स्थान पर उसने संत पीटर को स्वर्ग और पृथ्वी के विधान सुपुर्द किये हैं।[14]

इन वाक्यांशों का एक महत्त्वपूर्ण इतिहास है तथा ये प्रायः इस अर्थ में माने गये हैं कि संत पीटर के उत्तराधिकारी को भी किसी रूप में धार्मिक एवं लौकिक दोनों क्षेत्रों एवं संगठनों में अधिकार प्राप्त हैं।[15] पीटर डेमियन का स्वयं इन शब्दों से ठीक क्या अभिप्राय था यह कहना अत्यन्त कठिन है।[16] जिस सन्दर्भ में ये कहे गए हैं वह उनकी व्याख्या पर कोई प्रकाश नहीं डालता। उसके सभी ग्रन्थों की परीक्षा से यह पूर्णतया असम्भव प्रतीत होता है कि वह लौकिक विषयों में भी लौकिक की तुलना में धार्मिक सत्ता की सर्वोचता की स्थापना का प्रतिपादक था, किन्तु निश्चित ही वह धार्मिक सत्ता की गरिमा की महान् उत्कृष्टता को स्थापित करना चाहता था और यह सिद्धान्त मानता था कि महानतम व्यक्ति, राजा और सम्राट् भी पोप के धार्मिक अधिकार के अन्तर्गत हैं।

कम से कम एक स्थान पर उसके शब्दों में भावी संघर्षों के बारे में सूचना देने वाली भविष्यवाणी उपलब्ध होती है। हेनरी चतुर्थ को लिखे गये एक पत्र में वह उसे लोम्बार्ड और जर्मन बिशपों की परिषद् द्वारा 1061 ई० में चुने गये नकली पोप पारमा के केडेलुअस के विरुद्ध चर्च और असली पोप अलेक्जेण्डर द्वितीय का समर्थन करने का अनुरोध करता है, और आग्रहपूर्वक कहता है कि यदि हेनरी ने वैसा नहीं किया तो वह दोष का भागी होगा तथा सम्राट् आज्ञापालन करवाने योग्य तभी होता है जबकि वह अपने सृष्टा की आज्ञा माने, वह यदि दैवी आदेशों की अवहेलना करता है तो उसकी प्रजा द्वारा उसकी पदच्युति न्याय संगत हो सकती है।[17]

जबकि हम पीटर डेमियन के विचारों के विभिन्न पक्षों का विवेचन करते हैं, तो यह

Scanned by CamScanner

पूरी तरह स्पष्ट रहता है कि लौकिक और धार्मिक सत्ता के सम्बन्धों के बारे में उसका सामान्य निर्णय व्यावहारिक रूप में, जिसे हमने गेलेशियन परम्परा कहा, पर आधारित है अर्थात् पाँचवीं शताब्दी में पोप गेलेशियस प्रथम (Pope Gelasius I) द्वारा प्रारम्भ किये गये विचार जिनके अनुसार प्रत्येक महान् सत्ता अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र है। हम समझते हैं कि रोचक तथा महत्त्वपूर्ण शब्दावली में यह उनके ग्रन्थों के अनेक वाक्यांशों में अभिव्यक्त हुई है।

हमारे द्वारा अभी-अभी उल्लिखित, हेनरी चतुर्थ को लिखे गये उसी पत्र में पीटर डेमियन उस घनिष्ठ सम्बन्ध का वर्णन करता है जो राजकीय और धार्मिक सत्ताओं में होना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक को दूसरे की आवश्यकता है। पुरोहितों का संरक्षण साम्राज्य द्वारा तथा साम्राज्य का पुरोहितों के पद की पवित्रता द्वारा होता है। राजा ने चर्च के शत्रुओं का सामना करने के लिए तलवार बांधी है, तथा पुरोहित अपने को प्रार्थना में लीन करता है ताकि वह राजा और जनता के पक्ष में ईश्वर को प्रसन्न कर सके।[18] वह एक अन्य स्थान पर इन दो शक्तियों के बीच कार्यों का सावधानी से भेद करता है : पुरोहित का कार्य करुणा से पूर्ण और बच्चों के प्रति मातृवत् वात्सल्य से भरा है, न्यायाधीश का कार्य क्रूर व्यक्तियों को दण्ड देना तथा उनके हाथों से निरपराधों की रक्षा करना है, उसे देवदूतों (Apostles) के इन शब्दों को सदैव स्मरण रखना चाहिए "क्या तुम्हें सत्ता का कोई भय नहीं ? वही करो जो उचित हो, तुम्हें उसी की प्रशंसा मिलेगी। क्योंकि वह अच्छाई के लिए ही ईश्वर का प्रतिनिधि है। किन्तु यदि तुम वह करते हो जो बुराई है तो भयभीत रहो, क्योंकि वह व्यर्थ ही तलवार धारण नहीं करता। राजा की तलवार और पुरोहित के दण्ड (Infula) में बहुत अन्तर है।"[19]

एक अन्य स्थान पर वह कुछ भिन्न वाक्यों द्वारा इस मत को व्यक्त करता है। न्यायाधीशों का न्यायालय निश्चित रूप से पुरोहित के धर्म-पीठ से भिन्न है। न्यायाधीश इसलिये तलवार धारण करता है कि वह उनको दण्ड दे सके जो अधर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, पुरोहित निरपराधिता के दण्ड से सन्तुष्ट रहता है जिससे वह एक मौन तथा शांतिपरक अनुशासन बनाये रख सके। एक अन्य स्थल पर वह उसी सिद्धान्त का उल्लेख दो तलवारों की शब्दावली से करता है तथा वह उस दशा के सुख का वर्णन करता है जहाँ साम्राज्य की तलवार पुरोहित की तलवार का साथ देती है, जब पुरोहित की तलवार राजा की तलवार पर पानी चढ़ाती है और राजा की तलवार पुरोहित की तलवार को तेज करती है, क्योंकि ये दोनों तलवार वही हैं जिनका ईश्वरीय उद्वेग (Lord's Passion) के समय वर्णन किया गया है। वास्तव में तभी, साम्राज्य एवं पौरोहित्य का उत्थान एवं समादर होगा जब इन दोनों तलवारों का सुन्दर सामन्जस्य हो।[20]

ये दोनों तलवारें ईश्वरीय हैं। दोनों दिव्य अधिकारों की प्रतिनिधि हैं, दोनों का एक दूसरे से निकटतम समन्वय होना चाहिए। किन्तु यह उल्लेखनीय है कि पीटर डेमियन उनको एक दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र एवं विभिन्न बताता है तथा वह किसी प्रकार भी यह संकेत नहीं देता जैसा बाद में प्रतीत होने लगा कि दोनों तलवारें धार्मिक सत्ता के अधिकार में हैं।[21]

Scanned by CamScanner

सन्दर्भ

1. Ratherius, 'Praeloquiroum', iii, 4 : Maigne P. L., vol. 136.
2. Id. id., iii. 9.
3. Id. id,, iv. 2.
4. Sylvester II,, 'De Information Episcoporum'.
5. Anselm, 'Gesta Episcop. Leod'., 66 : M. G. H. : S. S., vol. 7.
6. Gerbert, 'Epistolae', 1.
7. Wippo, 'Vita Chuonradi', (p. 1245).
8. Anselmi, 'Gesta Episc. Leod'., 58 : M. G. H. : S. S., vol. 7.
9. देखो पृ० 25।
10. देखो पृ० 25।
11. देखो पृ० 25।
12. देखो पृ० 14।
13. Peter Damian, 'Opusc'., xxiii. 1.
14. Id., 'Opusc'., v-9 : The phrase is also in Peter Damian's 'Disceptatio Synodalis', M. G. H., Lib. De Lite, vol. i. p. 78.
15. Id., 'Opusc'., v. 9 : The phrase is also in Peter Damian's 'Disceptatio Synodalis', M. G. H., Lib. De Lite, vol. i. p. 78.
16. Cf. vol. ii. pp. 206–209.
17. Id., 'Ep'., vii. 3, vol. 144, col. 441.
18. Cf. vol. i., pp. 190–193.
19. Id., 'Ep'., vii. 3. p. 440.
20. Id., Sermo ixix.
21. Cf. vol. II, p. 208.

Scanned by CamScanner

द्वितीय भाग

अधिष्ठापन विवाद

प्रथम अध्याय

धर्म-विक्रय

हम दसवीं शताब्दी तथा ग्यारहवीं के प्रथम सत्तर वर्षों में लौकिक तथा धार्मिक अधिकारियों के सम्बन्धों के विवेचन का प्रयास कर चुके हैं, तथा हमारे विचार में यदि कोई विषय के इतिहास की तटस्थ परीक्षा करे तो उसे यह स्पष्ट हो जायेगा कि यद्यपि इन सम्बन्धों में अनेकों कठिनाइयाँ थी तथा ये अनेक प्रकार से असन्तोषजनक थे, तो भी समग्र रूप से यह कहना सत्य ही है कि ये सम्बन्ध मित्रता एवं सहानुभूति से युक्त थे। इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता कि सम्राटों अथवा राजाओं में चर्च की स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करने की अथवा पोप या विशपों की नवीं एवं दसवीं शताब्दियों में परम्पराओं से स्वीकृत से अधिक राजनैतिक सत्ता का दावा करने की कोई निश्चित अभिलाषा थी। हम यह भलीभाँति कह सकते हैं कि अब तक दोनों सत्ताएँ यूरोपीय सभ्यता की उन्नति के लिए साथ-साथ प्रयत्नशील थीं, यद्यपि यदाकदा उनमें मतभेद भी होता था, लेकिन समग्र रूप से उनमें सामन्जस्य था, तथा जहाँ तक प्रत्येक सत्ता के सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधियों का प्रश्न है उनमें एक बड़ी सीमा तक पारस्परिक सौमनस्य भी था।

हमें उस युग के इतिहास का अध्ययन करना है जिसमें ये सब परिवर्तित हो गये, प्राचीन काल की शान्ति एवं सहयोग उग्र संघर्ष एवं पारस्परिक वैमनस्य में बदल गयी। हमें उस त्रुटि के प्रति जागरूक रहना चाहिए जो एक असावधान अध्येता से हो सकती है। दोनों सत्ताओं का संघर्ष हिल्डेब्रांड से लेकर इन्नोसेण्ट तृतीय तक निरन्तर नहीं रहा, इस समय के बीच कई वर्षों तक पोप एवं राजा के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण रहे। यद्यपि यह प्रतिपादन किया जा सकता है कि यह एक असाधारणता थी, साधारण रूप में इस समय में भी उनके सम्बन्ध विरोध भरे थे, तथा परस्पर विरोधी दावों का कोई हल नहीं मिला था, तथा ये शांति के मध्यान्तर एक महान् युद्ध के बीच होने वाले सशस्त्र युद्ध विराम के समय की भाँति ही थे। इस मत पर जब तक कि हम अपनी सामग्री की विस्तृत

Scanned by CamScanner

परीक्षा न कर लें निश्चित निर्णय दे देना अकालिक होगा। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि यही विषय है जिसकी हमें परीक्षा करनी है, तथा यदि हम इसमें सफलता की आशा करें तो हमें अपने पूर्वाग्रहों को, यदि वे कोई हों तो, त्याग देना होगा।

प्रथम दृष्टिकोण, जिसके अन्तर्गत हमें इस महान् संघर्ष पर विचार करना है, वह है जिसे प्रायः "अधिष्ठापन" ("Investiture") विवाद कहा जाता है; अथवा, उसे अधिक व्यापक एवं उपर्युक्त शब्दावली में धार्मिक पदों पर नियुक्ति के विषय में लौकिक सत्ता के स्थान का प्रश्न कह सकते हैं। पूर्ण निश्चितता के साथ उन सब परिस्थितियों का वर्णन अब भी कठिन है जिसके कारण ग्यारहवीं शताब्दी के तृतीय चतुर्थांश में यह प्रश्न ऊपरी तौर से एकाएक इतना महत्त्वपूर्ण बन गया। किन्तु अब कम से कम कुछ तथ्यों तथा उसकी पृष्ठभूमि में विद्यमान मतों एवं भावनाओं की धाराओं का अन्वेषण एवं पहचान सम्भव है।

यह हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि चर्च के अन्य आंदोलनों की भाँति यह संघर्ष भी एक महान् आध्यात्मिक पुनर्जागरण से उदय हुआ। चर्च सम्बन्धी इस विवाद की ध्वनि के पीछे धार्मिक पुनर्जागरण का, दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिसका केन्द्र क्लूनी का मठ (Cluny) था, सम्पूर्ण एवं दूरगामी प्रभाव विद्यमान था। वास्तव में यह नहीं था कि लौकिक सत्ताधारी किसी भी रूप में इस सुधार के विरोधी हों। इसके विपरीत, यह स्पष्ट है कि सेक्सन एवं फ्रेंकोनियन दोनों कुलों के सम्राटों में से कुछ, इसके सर्वाधिक उत्साहपूर्ण समर्थकों में से थे, साथ ही यह भी सत्य है कि इस आंदोलन से अन्ततोगत्वा ऐसे प्रश्नों का उदय हुआ जो विध्वंसक एवं कठिनाई से सुलझाने योग्य थे।

वे दो प्रश्न, जिनके कारण क्लूनी के सुधारक आंदोलन ने अन्त में धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं का पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न कर दिया, प्रथम तो धर्म-विक्रय (Simony) का प्रश्न था तथा दूसरा राजनैतिक मामलों में बड़े पादरियों का स्थान था। वास्तव में यह सत्य है कि कुछ महानतम सम्राटों, जैसे हेनरी तृतीय ने सुधारवादी पोप एवं बिशपों की धार्मिक पदों की नियुक्ति के अन्तर्गत धर्म-पद के विक्रय के दमन में सहायता की, किन्तु ऐसे व्यक्ति थोड़े ही थे जिनके विश्वास इतने दृढ़ थे कि उनको आर्थिक प्रलोभन से बचाने में समर्थ होते। साम्राज्य तथा दूसरे देशों के राजनैतिक गठन में बड़े पादरियों का स्थान का प्रश्न सम्भवतः और अधिक जटिल था। बिशप एवं ऐबट स्थानीय एवं विशिष्ट हितों से भिन्न राष्ट्रीय एवं सामान्य हितों के प्रधान आश्रय थे। सामन्तवाद में वंशानुगत सिद्धांत के विकास ने एक बड़ी सीमा तक राजनैतिक समाज की प्रशासन व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया था। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दियों में जाकर कहीं इंगलैण्ड व फ्रांस के राष्ट्रीय एकतन्त्र ने शनैः शनैः एक नयी प्रशासन व्यवस्था का निर्माण किया, जो इतनी शक्तिशाली थी कि सामन्तवाद की विघटनकारी शक्तियों से टक्कर ले सके। दसवीं शताब्दी एवं ग्यारहवीं शताब्दी के बिशप एवं ऐबट तथा राजकीय एवं साम्राज्यीय गिरजों के पादरी, उन प्रमुख तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते थे, जिन पर राजा और सम्राट् शासन की व्यवस्था का निर्माण कर सकते थे, तथा यह एक अत्यन्त अनिवार्य विषय था कि वे इस प्रकार के प्रशासनिक-शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति हों जिनकी वैयक्तिक निष्ठा पर वे

Scanned by CamScanner

(राजा और सम्राट्) निर्भर रह सकें। अतः इसका सबसे अधिक महत्त्व था कि लौकिक सत्ता को धार्मिक पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हों तथा यह स्वाभाविक था कि वे सामान्यतया इसके लिए सर्वाधिक योग्य व्यक्ति उनमें से ही पाएँ जो राजकीय गिरजाघरों में इसके लिए प्रशिक्षण पा चुके हों। यह भी लगभग अनिवार्य था कि अन्ततोगत्वा सुधारवादी दल का राजनैतिक सत्ता से इसी प्रश्न पर संघर्ष छिड़ता, क्योंकि धार्मिक सुधार के लिए यह सबसे अधिक अनिवार्य था कि बिशप एवं ऐबट धार्मिक सिद्धांतों से नियन्त्रित होने वाले तथा चर्च के हितों के प्रति निष्ठावान व्यक्ति हों। हेनरी तृतीय अथवा विजेता विलियम जैसे धर्मनिष्ठ एवं बुद्धिमान शासक इस तथ्य को समझ सकते थे, किन्तु क्षुद्र व्यक्ति, जो अधिक अनैतिक तथा अदूरदर्शी थे वैसा नहीं करते थे।

यहाँ हम मध्ययुगीन चर्च की धर्म-विक्रय सम्बन्धी प्रथाओं के विकास के सम्पूर्ण इतिहास का अध्ययन नहीं कर सकते, अस्तु हमें ग्यारहवीं शताब्दी के साहित्य में उपलब्ध परिस्थितियों के संक्षिप्त विवरण से ही सन्तुष्ट रहना होगा। रोडोल्फस ग्लेबर सामान्य रूप से कुछ काल से विद्यमान इन परिस्थितियों का एक नैराश्यपूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि जिन राजाओं को यह ध्यानपूर्वक देखना चाहिए कि चर्च के प्रशासन के लिए योग्य व्यक्ति नियुक्त किए जाएँ वे प्रायः उन्हीं को सर्वाधिक योग्य मानते हैं जिनसे वे सबसे अधिक भेंट पाते हैं।[1] दूसरे स्थान पर वह जर्मनी तथा गॉल के बिशपों को सम्राट् हेनरी तृतीय द्वारा इसी विषय पर दिए गए एक भाषण का विवरण प्रस्तुत करते हुए सम्राट् को यह कहता हुआ बताता है कि वह धर्म-विक्रय की सीमा से सुपरिचित था तथा उसने यह स्वीकार किया कि उसके पिता (सम्राट् कोनार्ड सैलिक) इस विषय में बड़ी सीमा तक दोषी थे। वह बताता है कि सम्राट् हेनेरी ने यह प्रस्ताव किया कि सारे साम्राज्य में घोषणा की जाय कि कोई भी पादरी पद या धार्मिक अधिकार मूल्य देकर प्राप्त न हो, और यदि कोई मूल्य देने या लेने का दुस्साहस करे तो उसे पद से मुक्त कर दिया जाय तथा वह अभिशप्त हो, जहाँ तक उसका स्वयं का प्रश्न था उसने प्रतिज्ञा की, कि ईश्वर ने उसे मुक्त रूप से साम्राज्यिक किरीट प्रदान किया है तथा वह भी मुक्त रूप से धर्म सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु को प्रदान करने के लिए प्रस्तुत है।[2]

सिल्वा केन्डिडा का कार्डीनल हुम्बर्ट, सुधारवादी सम्प्रदाय के उन उत्तरी पादरियों में से एक था, जिन्हें ट्रूल का ब्रूनो, जब वह 1048 ई० में लियो नवम के रूप में पोप बना, अपने साथ इटली लाया था। एक स्थान पर वह कहता है कि ओथोस (Othos) से लेकर हेनरी तृतीय के काल तक धर्म-विक्रय का दोष जर्मनी, गॉल एवं इटली में फैल गया है। हेनरी तृतीय ने उसे दूर करने के लिए वास्तव में कुछ प्रयत्न किया और उसे पूर्णतया समाप्त करने की अभिलाषा की, किन्तु उसकी अकालमृत्यु ने इस प्रयास को विच्छिन्न कर दिया। हुम्बर्ट विशेष कटुतापूर्वक फ्रांस के समकालीन राजा हेनरी प्रथम की निन्दा करता है जिसने अब तक इस दुर्गुण को आश्रय दिया था।[3] एक अन्य स्थान पर वह कहता है कि उच्चतम से लेकर निम्नतम तक प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक वस्तुओं के व्यवसाय में लगा है, सम्राट्, राजा, सामन्त तथा अन्य लौकिक सत्ताधारी जिन्हें चर्च की रक्षा करनी चाहिए, अपने यथार्थ कार्य को त्याग चुके हैं ताकि वे चर्च की सम्पत्ति हथिया

Scanned by CamScanner

सकें ।[4] धर्म-विक्रय वास्तव में आदि प्रचारकों के काल में ही प्रारम्भ हो चुका था किन्तु उत्पीडन के युग में यह कुप्रथा लुप्त हो गई थी। परन्तु चर्च में शान्ति की पुनर्स्थापना के पश्चात् तथा धार्मिक सत्ता के समक्ष सम्राट् के समर्पण के युग में यह प्रथा पुनर्जीवित हुई, क्योंकि चर्च के वैभव ने मनुष्यों के लोभ को दीप्त किया।[5] उसके वर्णन के अनुसार मामला यहाँ तक बढ़ चुका था तथा इतना खुला एवं निर्लज्ज था कि कोई भी जो चर्च या राज्य में अधिकार पद पाना चाहता उसे शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करनी होती थी कि वह धर्म-पद-विक्रयी मनुष्यों के कृत्रिम रूप से धारण किए गए अधिकारों को बनाए रखेगा। सम्राट् को स्वयं शपथ लेनी पड़ती थी कि, अपने पवित्र पूर्ववर्तियों द्वारा धर्म-विक्रय के विरुद्ध बनाए गए नियमों का पालन तो दूर रहा वह उनको अवैध घोषित कर देगा।[6] वह कहता है कि उसे इस घटना का ज्ञान था जबकि प्रतिज्ञा किए मूल्य को चुकाने के लिए पापी धर्म-पद-क्रेता चर्च के बहुमूल्य संगमरमर को और यहाँ तक कि अपनी छत की खपरेलों तक को उखाड़ने के लिए विवश हो गया था।[7] दूसरे स्थान पर वह दयनीय शब्दों में, इस कुप्रथा के कारण विशेषतया इटली के चर्चों एवं मठों के विध्वंस एवं उनके उजड़ने का वर्णन करता है।[8]

हर्सफेल्ड के लेम्बर्ट (Lambert of Hersfeld) के विवरण के अनुसार ग्रेमेन के आर्च बिशप तथा काउन्ट वर्नर ने जबकि वे हेनरी चतुर्थ के आवश्यकता के काल में शासन का नियन्त्रण करते थे, सभी धार्मिक एवं लौकिक पदों को विशेषतः मठाधीशों के पदों को बेचा था।[9]

हमें वास्तव में ऐसे विवरणों को अक्षरशः अंगीकार नहीं करना चाहिए। हमें चर्च की दशाओं के दिए गए इन विवरणों में किसी सीमा तक अतिशयोक्ति की मात्रा को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए, किन्तु इसमें सन्देह का कोई अवसर नहीं है कि ये तात्त्विक रूप से सत्य हैं, तथा चर्च की व्यवस्था में और कोई ऐसा प्रश्न नहीं था जिस पर सुधारवादियों ने ध्यान देना अधिक आवश्यक समझा हो। हम सुत्री में पोप की पदच्युति के इतिहास का वर्णन कर चुके हैं, तथा यह देख चुके हैं कि प्रमुख सुधारकों में से अधिकांश ने इस विषय में तथा धर्म-विक्रय के सम्पूर्ण विषयों में हेनरी तृतीय के कार्यों के प्रति आभार व्यक्त किया है।[10]

हमारे पास पोप लियो नवम द्वारा फ्रांस में धर्म-विक्रय को दबाने के लिए की गई कार्यवाही का विवरण उपलब्ध है। उसने 1049 ई० में राइम्स नामक स्थान पर बिशपों एवं मठाधीशों की एक सभा बुलाई, तथा उसमें फ्रांसीसी सम्राट् को भी उपस्थित रहने का निमन्त्रण दिया। उसके दरबारियों ने उसे सम्मति दी कि यह साम्राज्य के सम्मान की दृष्टि से बहुत संकटपूर्ण होगा यदि वह फ्रांस में परिषद् के बुलाए जाने में पोप का समर्थन करे, और इसकी स्वीकृति उसके पूर्वजों द्वारा भी नहीं दी गई थी, साथ ही उसे यह भी राय दी कि उसे साम्राज्य के अशान्त भागों पर आक्रमण के समय अपना साथ देने के लिए बिशपों एवं एबटों को बुला लेना चाहिए, ताकि वे परिषद् में भाग न ले सकें।[11] तदनुसार राजा ने पोप को उत्तर दिया कि वह तथा उसके बिशप इस परिषद् में उपस्थित नहीं हो सकेंगे तथा उससे प्रार्थना की कि वह अपनी फ्रांस की यात्रा को स्थगित कर दे। लियो

Scanned by CamScanner

नवम ने उत्तर दिया कि वह ऐसा नहीं कर सकता, तथा जो भी उपस्थित हो सकते हैं, उनको लेकर परिषद् अवश्य बुलायेगा। जब परिषद् की बैठक हुई तो अनेक बिशपों एवं एबटों को विभिन्न अपराधों विशेषत: धर्म-विक्रय के कारण पदच्युत किया गया, तथा राइम्स के आर्च बिशप को बाद में रोम में होने वाली परिषद् में उपस्थित होने की आज्ञा दी गई, जहाँ वह अपने ऊपर लगाए गए धर्म-विक्रय के आरोप से अपने को मुक्त कर सके।[12] परिषद् ने एक आदेश जारी किया तथा यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि कोई भी बिशप के पद पर पादरियों तथा जनता द्वारा निर्वाचन के बिना नियुक्त नहीं किया जाय, कोई भी पुरोहिताभिषेक अथवा धार्मिक पदों को न तो बेचे न खरीदे, तथा यदि किसी ने उनको खरीद कर प्राप्त किया है तो वे उसे बिशपों को सौंप दें। आदेश में यह भी व्यवस्था थी कि कोई भी जनसाधारण पादरी की वृत्ति अंगीकार नहीं कर सकता, किसी भी पादरी को शस्त्र धारण नहीं करने चाहिए, न कोई लौकिक पद धारण करना चाहिए।[13] वाइबर्ट, जो ट्रूल का आर्चडिकन था, द्वारा लिखे गए पोप लियो नवम के जीवन में हमें पोप द्वारा इटली में तथा अन्यत्र, धर्म-विक्रय के प्रतिरोध के लिए उठाये गए प्रबल उपायों का और विवरण उपलब्ध होता है, तथा वह वर्णन करता है कि किस प्रकार उसने आर्चबिशपों एवं बिशपों को जो इसके अपराधी थे पदच्युत कर दिया।[14]

पोप लियो नवम के ये कठोर उपाय चर्च के सुधारवादी दल द्वारा संशोधित पोप पद के नेतृत्व में, धार्मिक पदों के क्रय-विक्रय के दमन के लिए किए गए संकल्पित प्रयत्न की दिशा में पहले कदम थे। वास्तव में कुछ सुधारवादियों का दृष्टिकोण इतना कठोर था कि अन्ततोगत्वा उसने उनमें परस्पर ही एक उग्र विवाद को जन्म दिया। कार्डिनल हुम्बर्ट जैसे कुछ लोगों का विचार था कि धर्म-पद-क्रय द्वारा प्राप्त अभिषेक अथवा पदारोहण अवैध है,[15] जबकि पीटर डेमियन जैसे अन्य व्यक्ति उनको वैध मानते थे,[16] तथा यह कहते थे कि जो वास्तव में अपराधी हैं उनको पदच्युत करना चाहिए, तथा जो अज्ञानवश ऐसे लोगों से धार्मिक आदेश प्राप्त कर चुके हैं उनको अपना पद धारण करने देना चाहिए।[17] हमारा कार्य इस मतभेद में उठाये गए प्रश्नों के महत्त्व का विवेचन करना नहीं है, हम केवल यही देखना चाहते हैं कि यह बुराई कितनी फैली हुई थी तथा उसके उन्मूलन के लिए ग्यारहवीं शताब्दी के सुधारकों ने कितने प्रबल-संकल्पपूर्वक प्रयत्न किए।

हमारे प्रयोजन से धर्म-पद-विक्रय का प्रश्न मुख्यत: उन परिस्थितियों से सम्बन्ध रखने के कारण महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं के बीच महान् संघर्ष को जन्म दिया। जैसा हम देख चुके हैं हेनरी तृतीय की 1056 ई० में मृत्यु होने तक चर्च के सुधारवादियों को अपने धर्म-विक्रय विरोध के प्रयत्नों में लौकिक सत्ता का स्पष्टतया वास्तविक उत्साहपूर्ण समर्थन मिला। इस समस्या की पृष्ठभूमि में कुछ अन्य समस्याएँ भी थीं, जिनका समाधान जैसा कि हम कह चुके हैं, अधिक कठिन था। यह उल्लेखनीय है कि पीटर डेमियन इस विषय में बहुत स्पष्ट है कि चर्च को वास्तविक धर्म-पद-विक्रय से जितनी हानि हुई उतनी ही राज्य के प्रशासकीय पदों पर की गई सेवाओं के लिए उनकी बिशप-पदों एवं मठों में पदोन्नति से हुई है। पोप अलेक्जेण्डर द्वितीय को लिखे गए एक पत्र में पीटर डेमियन उससे अनुरोध करता है कि किसी भी व्यक्ति को बिशप न बनने दिया जाय

Scanned by CamScanner

या पद पर न रहने दिया जाय जिसने इसे मूल्य देकर या, इससे भी अधिक निन्दनीय, राजकीय सेवा के द्वारा प्राप्त किया हो।[18] एक ग्रन्थ में, जो वास्तव में दरबारी पादरियों के विरुद्ध लिखा गया है वह कहता है कि उसे कोई भी चीज इतनी असह्य नहीं प्रतीत होती, जितनी यह कि कुछ व्यक्ति धर्म-पद के लालच में ऐसा व्यवहार करते हैं मानो वे उच्चपदस्थ व्यक्तियों के दास हों; तथा यह आग्रह करता है कि बिशप पद को राजा की दरबारी सेवा से प्राप्त करना भी उतना ही धर्म-पद-क्रय है जितना उसे धन देकर खरीदना; तथा वह राजकुमारों और दूसरों को चेतावनी देता है कि जिनको चर्च के पदों पर नियुक्ति का अधिकार है वे इन पदों को केवल अपनी इच्छा से, या प्रसाद के कारण प्रदान न करें।[19]

कार्डीनल हुम्बर्ट इसी विषय को उत्तेजक तथा भावपूर्ण शैली में वर्णन करता है। वह स्पष्टतः पादरी के प्रशासकीय कार्यों की निन्दा नहीं करना चाहता, क्योंकि वह इससे परिचित है कि कई अवसरों पर इस प्रकार का कार्य न केवल राज्य के लिए अपितु चर्च के लिए भी उपयोगी होता है; किन्तु वह प्रभावपूर्ण शब्दों में उन लालची पादरियों की भीड़ की निन्दा करता है जो राजाओं के दरबारों में मंडराते रहते थे, तथा लम्बी परिश्रमपूर्ण सेवा करते थे ताकि अन्ततोगत्वा वे कोई धार्मिक पद प्राप्त कर सकें। वे इन मनुष्यों को सबसे अधिक धर्म-पद-क्रयी मानता था क्योंकि वे न केवल धर्म को वरन् अपने आप को मूल्य स्वरूप देते थे। वह शिकायत करता है कि इटली विशेषतः ऐसे आदमियों से भरा हुआ था जिन्होंने चर्च का पद अपने धार्मिक कार्य के कारण नहीं किन्तु अपनी लौकिक सेवाओं के मूल्यस्वरूप प्राप्त किया है जो कभी-कभी लोक विनिन्दित तथा अपमानजनक प्रकृति की भी होती थी।[20]

निस्सन्देह इस प्रकार की शिकायतें और दावे एक बड़ी सीमा तक आधारपूर्ण एवं न्यायसंगत थे, तथा यह स्पष्ट है कि उठाया गया प्रश्न बहुत कठिनाई से भरा था। राज्य को प्रशासकीय कार्य के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की तथा ऐसे व्यक्तियों की प्रबल आवश्यकता थी जिनकी व्यक्तिगत निष्ठा पर राजा और सम्राट् निर्भर रह सकें, तथा यह देख पाना कठिन है कि धार्मिक सम्प्रदाय से बाहर अन्य क्षेत्रों में ऐसे व्यक्ति उस समय कहाँ पाए जा सकते थे।

सन्दर्भ

1. Rodolfus Glaber, 'Historia', ii. 6.
2. Id. id., v. 5.
3. Cardinal Humbert, 'Adversus Simoniacos', 'Lib. De Lite', iii. 7, p.
4. Id. id., iii. 5, p. 204.
5. Id. id., ii. 35 p. 183.
6. Id. id., 'Lib. De Lite', ii. 36, p. 185.
7. Id. id., ii. 43, p. 192.
8. Id. id., 'Lib. De Lite', ii. 35, p. 184.
9. Lambert of Hersfeld, 1063.
10. देखो, भाग 1, अध्याय 2।
11. Anselmus, Monachus Remensis, 'Historia Dedicationis', 9; Migne, P. L., vol. 142.
12. Id. id., 14, 15, 16.
13. Id. id., 16.
14. Leo IX., 'Vita', 88. 4 and 6.

Scanned by CamScanner

15. Cardinal Humbert, 'Adversus Simoniaces', iii. 32; M. G. H., Lib. De Lite, L., p. 239.
16. Peter Damian, 'Liber Gratissimus', vi. ; M. G. H. Lib. De Lite, I., p.23.
17. Id. id., xxiv., p. 52.
18. Peter Damian, 'Ep'., Bk. i. 13 : Migne, P. L., vol. 44.
19. Id., 'Opusc'., xxii., Preface.
20. Cardinal Humbert, 'Adversus Simoniaces', iii. 20; M. G. H. Lib. De Lite, I., p. 234.

Scanned by CamScanner

द्वितीय अध्याय

अयाजकीय "प्रतिष्ठापन" का निषेध

हमने उन परिस्थितियों अथवा दशाओं में से कतिपय के अध्ययन का प्रयत्न किया जिनसे साम्राज्य एवं चर्च के बीच संघर्ष का उदय हुआ। यह स्पष्ट है कि चर्च में एक महान् दोष था, चर्च के पदों का क्रय एवं विक्रय इस सीमा तक बढ़ गया था कि उनके लिए कठोरतम उपाय न केवल उचित वरन् अत्यन्त अनिवार्य थे। यद्यपि, यह स्पष्ट है कि हेनरी तृतीय के राज्यकाल में राजकीय सत्ता सुधारवादियों के पक्ष में थी, एवं सुधार की वृद्धि के लिए किए गए कुछ कार्यों के औचित्य पर कुछ संदेह होने पर भी समग्र रूप से सुधारवादी उसकी सच्ची अभिलाषा को स्वीकार करते थे तथा उसकी कर्मशक्ति के लिए आभारी थे। अब हमें धार्मिक एवं लौकिक सत्ता के सम्बन्धों के तीव्र परिवर्तनों पर विचार करना है, जो लगभग 20 वर्षों (1056 ई० से 1076 ई०) की अवधि में ही सौहार्दपूर्ण सहयोग एवं सहकारिता से उग्र विरोध में परिवर्तित हो गए।

सुत्री (Sutri) के बाद, पोपों ने सुधार-कार्य का बीड़ा उठाया तथा उनको अपने प्रयासों में हेनरी तृतीय का समर्थन मिला। दुर्भाग्यवश, वह कार्य के सम्पूर्ण होने से पूर्व ही मर गया, तथा उसकी मृत्यु के बाद यूरोप की धार्मिक परिस्थितियाँ एक बार फिर अस्तव्यस्त हो गईं। हम पहले ही हेनरी चतुर्थ की अवयस्कता के समय ब्रेमेन के आर्च-बिशप एवं काउन्ट वर्नर के प्रशासन में जर्मनी की धार्मिक दशा का शोचनीय विवरण प्रस्तुत कर चुके हैं, किस प्रकार वे सभी पदों को, चाहे वे धार्मिक हों अथवा लौकिक, इस सीमा तक क्रय-विक्रय का विषय मानते रहे कि कोई भी व्यक्ति चर्च में अथवा राज्य में तबतक पदोन्नति की आशा नहीं करता था जबतक कि वह उनसे उसे खरीद न ले।[1] जब हेनरी चतुर्थ ने शासन का भार स्वयं संभाला, तो ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत थोड़ा-सा सुधार हुआ था। बेम्बर्ग के बिशप को 1070 ई० में रोम बुलाया गया, तथा उस पर बिशप पद को खरीद कर प्राप्त करने का आरोप लगाया गया। हर्सफील्ड का लेम्बर्ट वास्तव में पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय पर यह अभियोग लगाता है कि उसने उससे बडी भेंटें स्वीकार करके उसे आरोप से मुक्त कर दिया; किन्तु वह यह भी कहता है कि उसकी एवं

Scanned by CamScanner

मेन्ज तथा कोलोन के आर्चबिशप की पोप द्वारा, धार्मिक व्यवस्था को बेचने तथा धर्म-विक्रयी लोगों से सम्पर्क करने के लिए तीव्र भर्त्सना की गई, तथा उनको इसकी शपथ दिलाई गई कि वे पुनः वैसा नहीं करेंगे।[2]

लेम्बर्ट वर्णन करता है कि अगले वर्ष में हेनरी चतुर्थ ने राइखनाउ (Reichenau) के मठाधीश को मूल्य लेकर नियुक्त किया, तथा कॉन्सटेन्स की धर्म-सभा (Chapter) के अन्तर्गत एक ऐसे व्यक्ति को बिशप नियुक्त करने का प्रयास किया जिस पर कि चोरी एवं धर्म-विक्रय के आरोप थे।[3] पोप ने इस प्रश्न को मेन्ज के आर्चबिशप को सौंपा, तथा हमें एक पत्र उपलब्ध होता है जिसमें वह पोप के आज्ञापालन के कारण उस पर आने वाले महान् संकट का वर्णन करता है, क्योंकि सम्राट ने उसे स्पष्टतः प्रबल धमकी दी थी कि वह कॉन्सटेन्स के लिए निर्वाचित बिशप का अभिषेक करना स्वीकार न करे।[4]

ग्रेगोरी सप्तम को लिखे गए हेनरी चतुर्थ के 1073 ई० के एक पत्र में वह अपने दोषों को स्वीकार करता है, जिनमें औरों के साथ-साथ यह भी है कि वह धर्म-विक्रय का अपराधी है, तथा मामले को ठीक करने के लिए उसकी राय एवं सत्ता-समर्थन की याचना करता है। वह मिलन (Milan) के चर्च के सम्बन्ध में अपने को गम्भीर दोषों का अपराधी बताता है।[5]

पुनः 1074 ई० के संदर्भ में लेम्बर्ट वर्णन करता है कि जर्मनी में पोप के प्रतिनिधि हेनरी चतुर्थ से सहयोग न करने के प्रति सजग थे, क्योंकि उस पर धर्म-विक्रयात्मक कार्यों के आरोप थे। ग्रेगोरी सप्तम ने इन प्रतिनिधियों को धर्म-विक्रय के अभियुक्त व्यक्तियों का निर्णय करने के लिए भेजा था तथा वे एक धर्म सभा को बुलाना चाहते थे। बिशपों ने इसका दृढ़तापूर्वक विरोध किया, तथा यह तर्क प्रस्तुत किया कि पोप के अतिरिक्त वे किसी अन्य के द्वारा इसका सम्पादन सहन नहीं करेंगे। पोप ने पहले ही बेम्बर्ग के बिशप तथा अन्य बिशपों को निलम्बित कर दिया था तथा अपने पवित्र कर्त्तव्यों को करने से रोक दिया था जबतक कि वे उसकी (पोप की) उपस्थिति में अपने को शुद्ध न कर लें। लेम्बर्ट के अनुसार हेनरी चतुर्थ ने इस आशा से कि इसमें वॉर्म्स के बिशप तथा अन्यों को जिन्होंने सेक्सन युद्ध में उसका विरोध किया था पदच्युत किया जा सकेगा, पोप के प्रतिनिधियों का समर्थन किया, किन्तु अन्ततः यह पाया गया कि यह मामला इन दूतों के लिए कठिन है, तथा उसे स्वयं पोप की सुनवाई के लिए सौंप दिया गया।[6]

केवल जर्मनी में ही धर्म-विक्रय की समस्या उत्कट नहीं थी। हम फ्रांस में लियो नवम द्वारा 1049 ई० की राइम्स परिषद् में उठाए गए कठोर उपायों पर विचार कर चुके हैं, किन्तु यह स्पष्ट है कि उसके प्रयत्नों के बावजूद भी यह दोष दूर नहीं किया जा सका। ग्रेगोरी सप्तम के फ्रेन्च बिशपों से पत्र-व्यवहार में उसने सबसे पहले लौकिक सत्ताधारियों के विरुद्ध कठोर उपायों की धमकी दी। 1073 ई० के शालों के बिशप (Chalons) को लिखे गए एक पत्र में वह फ्रांस के राजा फिलिप को किसी भी समकालीन राजा से अधिक चर्च का उत्पीडक बताता है, तथा वह धमकी देता है कि यदि फिलिप धर्म-विक्रय का अपधर्म नहीं त्याग देगा तो वह एक ऐसा सामान्य धर्म-बहिष्कार का आदेश देगा जिससे फ्रांसीसी जनता उसकी आज्ञा पालन करना अस्वीकार कर देगी।[7] उसी वर्ष उसने लियोन्स

Scanned by CamScanner

के आर्चबिशप को आदेश दिया कि वह ओटन के निर्वाचित बिशप का फ्रांस के राजा की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए बिना अभिषेक कर दें।[8] अगले वर्ष में ग्रेगोरी ने फ्रांस के आर्च-बिशपों एवं बिशपों को लिखा, तथा फिलिप की भर्त्सना की कि वह राजा कहलाने योग्य नहीं था अपितु केवल निरकुंश शासक कहा जा सकता था। उसने (ग्रेगोरी ने) उन पर कड़ा आरोप लगाया कि राजा को अपराधों से रोकने के लिए उनके द्वारा अपने धार्मिक अधिकारों का प्रयोग नहीं किया गया, तथा उनको आज्ञा दी कि वे एकत्रित होकर संयुक्त रूप से उससे भेंट करें तथा उसके मुंह पर उसके अपराधों के लिए उसकी निंदा करें। अगर राजा उनकी बात पर ध्यान देने से मना करता है तो, उसने आज्ञा दी कि वे उसके सम्पर्क एवं आज्ञा पालन से विरत हो जाएं, तथा सारे फ्रांस में धर्म-क्रिया के सार्वजनिक अनुष्ठानों का निषेध कर दें। यदि फिलिप उस समय भी न माने, तो उसने उनको यह आश्वासन दिया कि वह अपनी शक्ति भर फ्रांस का राज्य उससे छीनने का प्रयास करेगा।[9]

ग्रेगोरी के पत्र यह संकेत करते हैं कि वे अपराध जिनके आरोप उसने फिलिप पर लगाए हैं केवल चर्च के सामान्य हितों के विरुद्ध ही नहीं थे, क्योंकि वह दूसरे पत्रों में फ्रांस में इटेलियन व्यापारियों के लूटने का विशेषतः संकेत करता है।[10] फ्रांस के चर्च की अवनति एवं अव्यवस्था उसके अनुसार विशेषतः धर्म-विक्रय के प्रचलन के कारण थी, तथा उसके लिए सबसे अधिक कठोर सुधारों की अपेक्षा थी, और यह भी स्पष्ट है कि उसने लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के बीच वैसी ही संघर्ष की आशंका उत्पन्न की जैसा हेनरी तृतीय की मृत्यु के बाद साम्राज्य में उठ खड़ा हुआ था।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लौकिक और धार्मिक सत्ताओं के सम्बन्ध बिगड़ रहे थे, तथा हमारे मत में यह कहना उचित ही है कि किसी भी मतभेद को प्रकट करने वाली विशेष घटना के पीछे एक अधिक सामान्य कारण था, और यही करण है कि हेनरी तृतीय के देहावसान के बाद लौकिक सत्ता सुधार के प्रयत्नों में धार्मिक सत्ता का सहयोग देने से विमुख हो गई थी, तथा धर्म-विक्रय एवं पादरियों की लौकिकता जैसे दोषों के बने रहने के लिए उत्तरदायी प्रतीत होती थी। इन परिस्थितियों में पोप ने लौकिक सत्ता के धार्मिक नियुक्तियों में हस्तक्षेप के नियंत्रण अथवा निषेध को नीति अंगीकार की। यह उचित या अनिवार्य भी माना जा सकता है, किन्तु यह मानना होगा कि यह कदम लगभग क्रांति-कारी था।

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में हम देख चुके हैं कि सामान्यतः यह विवादास्पद नहीं था कि बिशप अथवा मठाधीश की नियुक्ति में राजा या सम्राट् का भी न्यायोचित स्थान है, जबकि इन बिशपों के चुनाव में धर्म-प्रदेश विशेष के पादरी तथा जनता के अधिकार और उनकी अभिपुष्टि में अधिधर्माध्यक्ष तथा प्रान्त के अन्य बिशपों के अधिकार सामान्यतः मान्य थे। वास्तविक व्यवहार में निस्संदेह राजा ही इन नियुक्तियों को प्रायः मतदाताओं की इच्छा का थोड़ा ध्यान रखकर कर लेता था, किन्तु यह मानना अतिशयोक्ति पूर्ण होगा कि कोई भी उत्तरदायी व्यक्ति उनको उपेक्षणीय मानता था। यद्यपि यह सत्य है कि इन अधिकारों के पारस्परिक समायोजन के प्रश्न को लेकर ही सर्वप्रथम भावी संकट के चिह्न

Scanned by CamScanner

प्रकट हुए। हम उस बढ़ते हुए आग्रह के कुछ स्पष्ट प्रमाण पहले ही देख चुके हैं, जिससे कि सुधारवादी चर्च के सदस्य तथा चर्च की परिषदें धर्म-प्रदेश के पादरियों तथा जनता द्वारा बिशप के निर्वाचन में राय दिए जाने के अधिकार के बारे में बल देने लगे थे। हम यह भी देख आए हैं कि कितने बलपूर्वक 1049 ई० में राइम्स की परिषद् ने इस सिद्धान्त पर बल दिया कि कोई भी व्यक्ति चर्च के अधिकार-पद पर पादरियों एवं जनसाधारण द्वारा निर्वाचन बिना नियुक्त नहीं किया जाए।[11] और हम यह भी देख चुके हैं कि मेन्ज की परिषद् ने किस प्रकार बेसान्सों के आर्चबिशप पद के एक दावेदार को इस स्पष्ट तर्क पर कि, उसका निर्वाचन जनसाधारण एवं पादरियों द्वारा नहीं हुआ है, अस्वीकार कर दिया।[12] हर्सफील्ड का लेम्बर्ट ट्रीयर के पादरियों तथा जनता के विक्षोभ का वर्णन करता है, जबकि 1066 ई० में आर्चबिशप एबरहार्ड की मृत्यु होने पर क्यूनो को कोलोन के आर्चबिशप के हस्तक्षेप के कारण उनकी राय के बिना नियुक्त कर दिया गया था।[13]

हमें सुधारवादी दल के दो प्रमुख लेखकों अर्थात् कार्डीनल हुम्बर्ट एवं पीटर डेमियन के कुछ सिद्धान्तों पर विचार करने का पहले ही अवसर मिल चुका है, अब हमें इस प्रश्न के उदय के दृष्टान्तों के लिए पुनः उनके ग्रन्थों पर दृष्टिपात करना चाहिए, किन्तु इस बात को स्पष्ट कर देना चाहिए कि कम से कम प्रारम्भ में सर्वाधिक प्रमुख सुधारक भी लौकिक सत्ता के धार्मिक पदों की नियुक्ति में लौकिक सत्ता के इस अधिकार को अस्वीकार नहीं करते थे कि इसका भी उसमें कुछ भाग है। एक स्थान पर कार्डीनल हुम्बर्ट अत्यन्त प्रबल शब्दों में न्यायसंगत एवं विधिविहित नियुक्ति की शर्तों को प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि जिस व्यक्ति का निर्वाचन धार्मिक पद के लिए होना है उसका चुनाव पहले पादरियों द्वारा होना चाहिए, फिर उसकी माँग जनता द्वारा होनी चाहिए, तब ही उसका अधिधर्माध्यक्ष की स्वीकृति से प्रान्त के बिशपों द्वारा अभिषेक किया जाना चाहिए। इनमें से किसी भी एक शर्त का पालन किए बिना जिसका अभिषेक हुआ है उसे वास्तविक नहीं अपितु मिथ्या बिशप माना जाए।[14] हुम्बर्ट के शब्द वास्तव में दो अन्य प्रश्नों को जन्म देते हैं, एक तो बिना किसी निश्चित धर्म-क्षेत्र के बिशप की नियुक्ति के अनौचित्य के सम्बन्ध में, दूसरा अधिधर्माध्यक्ष तथा रोम के धर्मासन के मध्य सत्ता के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में, किन्तु हम यहाँ इनका वर्णन नहीं कर सकते।

दूसरे स्थान पर वह समकालीन राजकुमारों की धृष्टता एवं धन लिप्सा की निन्दा करता है, जिनके द्वारा सभी दैवी तथा मानवीय कानूनों की अवहेलना करके धार्मिक नियुक्तियों के सभी अधिकारों को हथिया लिया गया था, तथा इनके विपरीत पूर्वी साम्राज्य (Imperium Transmarinum) की परिस्थिति से तुलना करता है, जहाँ ऐसी नियुक्तियों को पूर्णतया प्रधान गिरजाघर एवं बिशपों पर छोड़ दिया गया था।[15]

यदि हम इन वाक्यांशों को पृथक् कर लें तो हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि हुम्बर्ट धार्मिक नियुक्तियों में लौकिक सत्ता को किसी भी प्रकार के योगदान से वञ्चित रखना चाहता था, किन्तु जब हम उसी ग्रन्थ के एक अन्य लेखांश पर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि उसका यह अभिप्राय नहीं था। यहाँ वास्तव में वह क्षोभपूर्वक ऐसी नियुक्तियों में समस्त उचित क्रम के तिरस्कार की शिकायत करता है। फलस्वरूप जो पहला

Scanned by CamScanner

होना चाहिए वह अन्तिम तथा अन्तिम पहला हो जाता है। चयन में लौकिक सत्ता प्रथम स्थान का दावा करती है, तथा जनता, पादरी एवं यहाँ तक कि प्रमुख धर्माध्यक्ष को भी उनकी बात माननी होती है चाहे वह उससे सहमत हों अथवा नहीं। तथापि यह ध्यान में रखना चाहिए कि नियुक्ति का सच्चा तरीका बताते हुए वह कहता है कि प्रमुख धर्माध्यक्ष को पादरियों के द्वारा निर्वाचित की पुष्टि करनी चाहिए तथा राजा को जनता की माँग की।[16] अर्थात् हुम्बर्ट बहुत स्पष्टतया यह स्वीकार करता है कि राजा से परामर्श लेना चाहिए तथा उसकी अनुमति प्राप्त करनी चाहिए।

यदि हम पीटर डेमियन को लें तो उसके ग्रन्थों के लेखांशों से,[17] जिनको हम पहले उद्धृत कर आये हैं यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसकी स्थिति भी हुम्बर्ट से भिन्न नहीं है। वह लौकिक सत्ता द्वारा अभियाचित अधिकारों के दुरुपयोग का प्रबल विरोध करता है, तथा बिशप के निर्वाचन में पादरियों एवं जनता के अधिकारों पर बल देता है, किन्तु साथ ही वह बहुत निस्संकोच होकर यह स्वीकार करता है कि लौकिक सत्ता का भी इस प्रकार की नियुक्ति में न्यायसंगत एवं उचित स्थान है।

हम समझते हैं कि सुधारवादियों की स्थिति स्पष्ट थी, वे धार्मिक निर्वाचनों की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रखने के लिए तथा लौकिक सत्ता के दावों को अपने मतानुसार उचित सीमा तक संकुचित करने के लिए कृतनिश्चय थे, किन्तु वे इनको पूर्णतया अस्वीकार भी नहीं करते थे। हम इस मामले को और आगे बढ़ा सकते हैं, क्योंकि स्वयं ग्रेगोरी सप्तम का कम से कम अपने अधिकार-काल के प्रथम वर्ष का पत्राचार यह सिद्ध कर सकता है कि वह धार्मिक नियुक्तियों में लौकिक सत्ता के अधिकारों को अस्वीकार नहीं करता था।

1073 ई० में लियोन्स के आर्च बिशप हुम्बर्ट को लिखे गए एक पत्र में जिसको पहले उद्धृत किया जा चुका है, वह उसे किसी लैन्ड्रिक नामक व्यक्ति का अभिषेक फ्रांस के राजा की स्वीकृति की प्रतीक्षा किए बिना ही करने का निर्देश देता है, जिसे ओटन के धर्म-क्षेत्र द्वारा बिशप पद के लिए चुना गया था।[18] निस्सन्देह ग्रेगोरी यहाँ राजा के अधिकारों की अवहेलना करता है, किन्तु वह उसकी उपेक्षा एवं विलम्ब के कारण ही वैसा करता है। ल्यूका के निर्वाचित बिशप एनसलम को लिखे गए उसी वर्ष के पत्र में वह उसे राजा के हाथों बिशप पद की प्रतिष्ठा प्राप्त करने का निषेध करता है जब तक कि वह धर्म-बहिष्कृत लोगों से सम्पर्क त्याग कर रोमन धर्मपीठ से सन्धि नहीं कर लेता है।[19] किन्तु यह उल्लेखनीय है कि यह निषेध केवल तात्कालिक परिस्थितियों के ही कारण है। 1074 ई० में दिये के काउंट (Die) तथा उस चर्च के निष्ठावान् लोगों को लिखे गए एक पत्र में वह काउन्ट द्वारा अन्य सभी की सहमति से बिशप के निर्वाचन का उल्लेख करता है—अनुमानतः उसका अभिप्राय उस क्षेत्र के पादरियों एवं जनता से है।[20] पुनः उसी वर्ष फर्मो के काउन्ट ह्यबर्ट तथा वहाँ की जनता को लिखे गए एक पत्र में वह कहता है कि उसने चर्च को तब तक प्रधान उपयाजक को सौंप दिया है जब तक कि उसके स्वयं की देख-रेख में राजा की राय एवं अनुमति से बिशप पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति न मिल जाय।[21] एरेगॉन के राजा सैंको (Sancho) को लिखे गए 1075 ई० के एक पत्र में वह बिशप के गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण एक धर्म-क्षेत्र में की जाने वाली व्यवस्था के बारे में विचार-विनिमय करता है। राजा

Scanned by CamScanner

तथा बिशप ने दो पादरियों के नाम सुझाए हैं जिनमें से एक को बिशप बनाना है। ग्रेगोरी दोनों को इस आधार पर अस्वीकार कर देता है कि वे रखैलों के पुत्र हैं, साथ ही यह वादा करता है कि यदि उपयुक्त चरित्र के व्यक्तियों के नाम, जनता की सहमति से राजा एवं बिशप द्वारा प्रस्तावित हों तो वह उस पर विचार करेगा।[22] हेनरी चतुर्थ को 1076 ई० की जनवरी में लिखे गए एक पत्र द्वारा जिसमें वह उसको फर्मो तथा स्पोलेतो (Spoleto) के बिशप पद उन दो व्यक्तियों को दे देने के लिए भर्त्सना करता है जिनसे वह अपरिचित है, वह केवल यह सन्देह प्रकट करता है कि क्या चर्च किसी भी व्यक्ति द्वारा देय है, परन्तु वह स्पष्टतः यह नहीं कहता कि राजा को इस विषय में वैसा करने का कोई अधिकार नहीं है।[23]

ग्रेगोरी सप्तम द्वारा अयाजकीय "प्रतिष्ठापन" के विरुद्ध आदेश प्रकाशित करने के बाद भी उसके पत्र-व्यवहार में ऐसे वाक्यांश पाए जाते हैं जो बिशप पद की नियुक्ति में लौकिक सत्ता के कतिपय अधिकार को स्वीकार करते प्रतीत होते हैं। दिये के बिशप ह्यू को 1077 ई० में लिखे गए पत्र में वह लिखता है कि फ्रांस के राजा फिलिप ने उसे केलेब्रिया में संत यूफेमिया के मठाधीश को शार्त्र का बिशप बनाने को कहा है, किन्तु वह कहता है कि वह वैसा नहीं करेगा जब तक कि उसे उस धर्म-क्षेत्र की जनता की इच्छा का पर्याप्त ज्ञान न हो जाय।[24] स्वाबिया (Suabia) के रूडोल्फ को जो, फॉरखाइम की विधान सभा द्वारा 1077 ई० में जर्मनी का राजा चुना गया था, लिखे गए एक पत्र में वह मेग्डेबर्ग के आर्च बिशप के निर्वाचन के बारे में इस प्रकार विचार-विनिमय करता है जैसे वह विषय रूडोल्फ से सम्बन्ध रखने वाला हो, तथा केवल यह संकेत करता है कि यदि वे उसकी राय लेने को तैयार हों तो वे उन दो पादरियों में से एक को चुनेंगे जिनकी वह सिफारिश करे, किन्तु यह आर्चबिशपों, बिशपों, पादरियों एवं जनसाधारण की सहमति तथा निर्वाचन द्वारा किया जाना चाहिए।[25]

तब यह मानना एक त्रुटि प्रतीत होगी कि चर्च का सुधारवादी दल बिशपों की नियुक्ति में लौकिक सत्ताधारियों के परम्परागत स्थान को पूर्णतया समाप्त करने पर तुला हुआ था। यह प्रतीत होता है कि यद्यपि वह यह अनुभव करता था कि वास्तव में तात्कालिक ढंग और तरीके जिनके माध्यम से ये अधिकार प्रयोग में लाए जाते थे, अस्वीकार्य थे, तथा धार्मिक चुनावों की स्वतन्त्रता पर बल दिया जाना चाहिए एवं उसे सुरक्षित रखना चाहिए, तो भी वास्तव में स्वयं लौकिक सत्ता पर नहीं अपितु उसके अधिकारों की मात्रा एवं सीमा तथा उसके प्रयोग के स्वरूप पर उसका आक्रमण था।

जैसा हम अगले अध्यायों में देखेंगे यह प्रश्न कि प्रतिष्ठापन किन स्वरूपों के अन्तर्गत प्रदान किया जाता था इस संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगा, इसलिए इस स्थान पर इस प्रश्न पर किए गए एक प्रारम्भिक सुविचारित एवं तर्कसंगत विचार-विमर्श पर ध्यान देना सुविधाजनक होगा। कार्डीनल हुम्बर्ट का धर्म-विक्रयी व्यक्तियों के विरुद्ध ग्रन्थ, जिसका पहले हम कई बार उल्लेख कर चुके हैं, 1058–59 ई० में लिखा गया था, तथा उसके वाक्य जिनके कुछ शब्दों को हमने उद्धृत किया है, इस प्रश्न का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। जैसा हम देख चुके हैं, हुम्बर्ट स्वीकार करता है कि राजा

Scanned by CamScanner

की स्वीकृति जनसाधारण की इच्छा से मेल खाने वाली होनी चाहिए, किन्तु वह शिकायत करता है कि विधानों के उल्लंघन में सभी अनुपातों एवं व्यवस्थाओं को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया है, तथा लौकिक सत्ता बिशपों की नियुक्ति में प्रथम एवं सर्वोच्च स्थान का दावा करती है तथा पादरियों, जनता एवं अधिधर्माध्यक्ष को स्वीकृति देनी ही होती है चाहे वे सहमत हों अथवा नहीं; तथा, उसकी मान्यता है कि इन परिस्थितियों में की गई नियुक्तियाँ वास्तव में अवैध हैं। वह स्वीकार करता है कि पादरी को धर्म-दण्ड एवं मुद्रा प्रदान करना जनसाधारण का अधिकार नहीं हो सकता, क्योंकि ये धार्मिक सत्ता एवं पद के संस्कारगत प्रतीक हैं, तथा इनके एक बार प्रदान किए जाने के बाद निर्वाचन के विषय में जनता अथवा पादरी को तथा अभिषेक के विषय में अधिधर्माध्यक्ष को कोई भी कार्य-स्वातन्त्र्य नहीं रहता।[26]

स्पष्टतः हुम्बर्ट यह अनुभव करता था कि जब लौकिक सत्ता धर्मदण्ड या मुद्रा से प्रतिष्ठापित करती है, तो इससे धार्मिक नियुक्ति के विषय में उसकी स्थिति की पूर्णतया मिथ्या धारणा बनती है : ये धार्मिक पद के प्रतीक थे जिन्हें लौकिक सत्ता प्रदान नहीं कर सकती, तथा एक बार प्रदान किए जाने पर ये निर्वाचकों एवं अधिधर्माध्यक्ष के अधिकारों का अतिक्रमण करते हैं एवं उनसे ऊपर हैं। अतः यह प्रतीत होता है कि, कम से कम 1058–59 ई० तक बिशप का मुद्रा एवं धर्म-दण्ड से प्रतिष्ठापन का विरोध एक निश्चित स्वरूप अंगीकार कर चुका था, तथा इन्हीं विषयों के सम्बन्ध में धीरे-धीरे धार्मिक नियुक्तियों में लौकिक सत्ता के अधिकार के दावे के सम्बन्ध में सुधारवादी दल की स्थिति को एक निश्चित स्वरूप प्राप्त हुआ। किन्तु हमें निश्चित ही यह ध्यान रखना चाहिए कि इस विषय के सम्पूर्ण साहित्य में "प्रतिष्ठापन" शब्द के साथ एक अस्पष्टता जुड़ी हुई है, हम कभी भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि इस शब्द का प्रयोग बिशप के धर्म-दण्ड एवं मुद्रा प्रदान के विधिक अर्थ में किया गया है, अथवा नियुक्ति के सामान्य अर्थ में।

हम उन परिस्थितियों के सामान्य स्वरूप पर विचार कर चुके हैं जिनसे ग्रेगोरी सप्तम एवं हेनरी चतुर्थ के बीच प्रतिष्ठापन के प्रश्न को लेकर संघर्ष उत्पन्न हुआ, किन्तु इसका वर्णन करने से पूर्व हम एक विशेष विवाद पर ध्यान देंगे जो कि कुछ समय से चला आ रहा था, तथा अन्तिम विस्फोट होने में जिसका पर्याप्त मात्रा में महत्त्व हो सकता है। यह मिलन (Milan) का प्रश्न था।

पादरियों के विवाह को प्रतिबन्धित करने के लिए विशेषतः 1059 ई० में पोप निकोलस के आदेश के बाद पोप पद के कृतसंकल्प प्रयत्नों के द्वारा विशेषतः मिलन में तथा अन्य स्थानों पर उत्पन्न हुए गम्भीर संकटों के बारे में हम यहाँ विचार नहीं कर सकते।[27] 1059 ई० में ल्यूका के आर्चबिशप तथा पीटर डेमियन को इन संकटों से निपटने के लिए मिलन भेजा गया था, तथा यह साफ है कि मिलन शहर में पोप के उस नगर पर सत्ता के यथार्थ स्वरूप के बारे में गहरा मतभेद था।[28] हमारा सम्बन्ध यहाँ उस प्रश्न से है जो पोप तथा सम्राट के मध्य मिलन के आर्चबिशप के चुनाव को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर देने के अधिकार के सम्बन्ध में उठ खड़ा हुआ था। इस संघर्ष का विस्तृत विवरण आरनल्फ के मिलन के आर्चबिशपों के इतिहास में उपलब्ध होता है। यद्यपि यह

Scanned by CamScanner

स्पष्ट है कि वह सम्राट के दल के पक्षपाती के रूप में लिख रहा है, तथापि उसका वर्णन संघर्षरत दलों के दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण है। उसकी मान्यता है कि इटेलियन साम्राज्य की यह प्राचीन प्रथा रही है कि बिशप की मृत्यु के बाद राजा, पादरियों एवं जनता के अनुरोध पर, उसके उत्तराधिकारी को नियुक्त कर देता है। वह कहता है कि रोमवासी इसे न्यायसंगत नहीं मानते थे, तथा हिल्डेब्रेण्ड ने जबकि वह रोम का मुख्य उपयाजक था, प्राचीन प्रथा को मिटाकर एक नया नियम लागू करने का प्रयत्न किया कि चुनाव के लिए रोम के धर्मपीठ की स्वीकृति आवश्यक समझी जाए।[29] 1071 ई० में आर्चबिशप विडो की मृत्यु पर यह संघर्ष छिड़ गया। हरलेम्बाल्ड ने जो विवाहित पादरियों के विरुद्ध आन्दोलन का एक प्रमुख नेता था, एट्टो नाम के एक व्यक्ति का चुनाव रोम की अनुमति से कुछ पादरियों एवं जनता द्वारा करवा लिया। आरनल्फ कहता है कि अधिकांश पादरी एवं बुद्धिमान जनता राजा के अधिकारों एवं प्राचीन प्रथा को स्वीकार करने के पक्ष में थे, तथा प्रान्त के बिशपों ने राजा की अनुज्ञा प्राप्त करके नोवारा में सम्मेलन किया तथा गोटोफ्रिड नामक व्यक्ति का आर्चबिशप पद पर अभिषेक कर दिया। हिल्डेब्रेण्ड ने 1073 ई० में पोप पद प्राप्त करने के बाद, गोटोफ्रिड तथा उसके अभिषेक-कर्त्ताओं को एक धर्मसभा में बुलाया तथा एट्टो के निर्वाचन की पुष्टि कर दी।[30] कुछ समय के लिए हेनरी चतुर्थ चुप हो गया, तथा उसने पूर्वोद्धृत पत्र में अपने अपराधों को अंगीकार करके मिलन के बारे में पोप के निर्णय को स्वीकार करने की सहमति व्यक्त कर दी।[31]

1075 ई० में ग्रेगोरी सप्तम ने एक आदेश के द्वारा सभी अयाजकीय "प्रतिष्ठापन" को निषिद्ध कर दिया। खेद है कि हमें उस आदेश के शब्दों का कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता। ग्रेगोरी की पंजिका में यह विद्यमान नहीं है, तथा इसके विषय में केवल संक्षिप्त विवरण आरनल्फ के उपर्युक्त ग्रन्थ में उपलब्ध होता है। उसकी सूचना इतनी छोटी एवं संक्षिप्त है कि हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते हैं कि वह आदेश के ठीक शब्दों को प्रस्तुत कर रहा है। वह कहता है कि ग्रेगोरी ने रोम की एक धर्मसभा में राजा (हेनरी चतुर्थ) को बिशप पद प्रदान करने में किसी भी अधिकार (Ius) को प्रदान करने का निषेध कर दिया, तथा उसने चर्चों के प्रतिष्ठापन से सभी जनसाधारण को हटा दिया।[32] यह सम्भव है कि आज्ञप्ति को तत्काल प्रकाशित करना अभिप्रेत न हो तथा ग्रेगोरी अपने शब्दों को बदलने की सम्भावना पर विचार करने को प्रस्तुत हो, जैसा कि हेनरी चतुर्थ को जनवरी 1076 ई० में लिखे गए पत्र में विवक्षित होता है।[33] आरनल्फ का कथन सार रूप में सत्य है यह केवल अभी उल्लिखित वर्णन से ही नहीं, अपितु उसके पत्र-व्यवहार में पाए जाने वाले इस विषय पर अन्य स्पष्ट उल्लेखों से भी स्पष्ट प्रतीत होता है।

मार्च 1077 ई० में टूर्स के आर्चबिशप को लिखे गए एक पत्र में ग्रेगोरी कहता है कि उसकी जानकारी में ब्रिटेनी के राजा भविष्य में बिशप के "प्रतिष्ठापन" के अधिकार के दावे तथा अपनी सहमति बेचने की प्राचीन किन्तु विकृत प्रथा को त्यागने के लिए सहमत हैं।[34] मई 1077 में दिये के बिशप ह्यू को लिखे गए पत्र में वह गेरार्ड की कैम्बराई के बिशप पद पर नियुक्ति की परिस्थितियों का वर्णन करता है। उसका निर्वाचन पादरियों

Scanned by CamScanner

एवं जनता द्वारा हुआ तथा तदुपरान्त उसने बिशप पद को हेनरी चतुर्थ से प्राप्त किया। गेरार्ड अपनी सफाई में यह तर्क देता है कि उसे ग्रेगोरी की उस आज्ञप्ति का ज्ञान नहीं था—जिसमें यह निषिद्ध घोषित किया गया था तथा यह कि हेनरी को धर्म-बहिष्कृत कर दिया गया था। अस्तु, ग्रेगोरी उसके निर्वाचन को स्वीकार करने के लिए तैयार है, किन्तु इस शर्त पर कि गेरार्ड इसकी (अपने अज्ञान की) राइम्स प्रान्त के आर्चबिशप एवं बिशपों की एक सभा में घोषणा करे। ग्रेगोरी दिये के बिशप को भी इस परिषद् में निर्देश देता है कि उपस्थित सभी लोगों को यह बताए कि कोई भी लौकिक सत्ता या व्यक्ति इस प्रकार के पद प्रदान करने में हस्तक्षेप नहीं करेगा, तथा कोई भी अधिधर्माध्यक्ष या बिशप जो ऐसे व्यक्ति का अभिषेक करता है जिसे बिशप पद की प्राप्ति अयाजक से हुई हो अपने पद एवं गौरव से वंचित कर दिया जाएगा।[35] 1078 ई० के मार्च मास में ग्रेगोरी ने स्पायर्स के बिशप हूजमान के इसी स्पष्टीकरण को, कि उसे पोप की घोषणा का ज्ञान नहीं था मान लिया तथा इसके परिणामस्वरूप उसके बिशप पद की पुष्टि कर दी।[36]

अतः यह स्पष्टतः प्रतीत होता है कि आरनल्फ का कथन सही है और ग्रेगोरी ने 1075 ई० में हेनरी चतुर्थ के स्थान, तथा बिशप पद पर अयाजक-नियुक्तियों के सम्बन्ध में एक आज्ञप्ति जारी की थी। रोम में नवम्बर 1078 ई० में सम्पन्न एक परिषद् की आज्ञप्ति में अयाजकीय "प्रतिष्ठापन" की निन्दा की स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति की गई है। इस घोषणा में यह कहा गया है कि, कई मामलों में धर्म पिताओं के आदेशों के विपरीत चर्चों के "प्रतिष्ठापन" अयाजकों द्वारा किए गए हैं अतः यह व्यवस्था दी जाती है कि कोई भी पादरी बिशप पद, मठ अथवा चर्च का "प्रतिष्ठापन" सम्राट या राजा के हाथों से प्राप्त नहीं करेगा, अथवा किसी अयाजक पुरुष या स्त्री के हाथों से प्राप्त नहीं करेगा, और यदि कोई वैसा करता है तो वह "प्रतिष्ठापन" अवैध होगा तथा उसे प्राप्त करने वाला व्यक्ति धर्म बहिष्कृत कर दिया जाएगा।[37] यह भी व्यवस्था दी गई है कि सभी नियुक्तियाँ, जो मूल्य देकर या पादरियों एवं जनता की स्वीकृति बिना अथवा उनकी अनुमति बिना जिनको कि अभिषेक का अधिकार है, प्राप्त की गई हैं अवैधानिक मानी जाएँगी।[38] मार्च 1080 ई० की रोमन परिषद् ने इस निषेध को दोहराया, तथा इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाएँ जोड़ दीं। यदि कोई व्यक्ति भविष्य में बिशप अथवा मठाधीश के पद को किसी अयाजक के हाथों से प्राप्त करता है तो उसे बिशप अथवा मठाधीश नहीं गिना जाएगा तथा "प्रतिष्ठापन" देने अथवा प्राप्त करने वाला व्यक्ति धर्म-बहिष्कृत होगा।[39] जब किसी चर्च में कोई स्थान रिक्त हो तो पोप अथवा अधिधर्माध्यक्ष द्वारा एक बिशप भेजा जाएगा, जिसके निर्देशानुसार पादरी और जनता बिना लौकिक हस्तक्षेप के भय, अथवा पक्षपात के एक पल्ली-पुरोहित (Pastor) को पोप अथवा अधिधर्माध्यक्ष की सहमति से चुनेंगे। यदि वे अन्यथा करें तो, निर्वाचन अवैध होगा, तथा वे अपना निर्वाचन का अधिकार खो देंगे, जो कि रोम के पोप अथवा अधिधर्माध्यक्ष में निहित हो जाएगा।[40]

रोम की 1080 ई० की परिषद् की इन आज्ञप्तियों से बिशपों एवं मठाधीशों की नियुक्ति के विषय में लौकिक सत्ता के सम्बन्धों के विषय में ग्रेगोरी सप्तम का दृष्टिकोण पूर्णतः विकसित हो गया था। किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसके दृष्टिकोण की

Scanned by CamScanner

व्याख्या में हम पूर्णतया निश्चित हैं। वह दृढ़तापूर्वक और स्पष्टता से सभी अयाजकीय "प्रतिष्ठापन" का निषेध करता है, किन्तु क्या उसका अभिप्राय धार्मिक नियुक्तियों में लौकिक सत्ता के हाथ का पूर्णतया निषेध है यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं। जैसा हम पहले देख चुके हैं कि "प्रतिष्ठापन" शब्द का एक पारिभाषिक अर्थ भी है। किन्तु सदैव उसका प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में नहीं होता था, तथा हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि इन वक्तव्यों एवं ग्रेगोरी की आज्ञप्तियों में जिनका हम उल्लेख कर आए हैं, इस शब्द का यही अर्थ है। इसके बाद उठने वाले संघर्ष के दौरान ही ये अस्पष्टताएँ धीरे-धीरे दूर हुईं।

सन्दर्भ

1. देखें, भाग 2, अध्याय 1।
2. Lambert of Hersfeld, 1070.
3. Id. id., 1071 (p. 1108).
4. Siegfried, Archbishop of Maintz, 'Epistelae', ii ; Migne, vol. 46, p. 142.
5. Gregory VII., Registrum, i. 29 (a).
6. Lambert, 'Annales', 1074 (id., 215).
7. Gregory VII., Reg. i. 35.
8. Gregory VII., 'Reg'., i. 36.
9. Id. id., ii. 5.
10. Cf. Gregory VII., 'Reg'., ii. 18 & 32.
11. देखें, भाग 2, अध्याय 1।
12. देखें, भाग 1, अध्याय 3।
13. Lambert of Hersfeld, 'Annales', 1066 (M. G. H. ; S. S., p. 173).
14. Humbert, 'Adversus Simoniacos', i. 5.
15. Id. id,, iii. 10.
16. Id., 'Adversus Simoniacos', iii. 6.
17. देखें, भाग 1, अध्याय 3।
18. देखें, भाग 2, अध्याय 2।
19. Greogory VII. 'Registrum', i. 21.
20. Id. id., i. 69.
21. Id. id., ii. 38.
22. Gregory VII., 'Reg', ii. 50.
23. Id. id., iii. 10.
24. Id. id., v. 11.
25. Gregory VII., 'Ep., Coll'., 26.
26. Humbert. 'Adv. Simon'., iii. 6.
27. Nicholas II., 'Epp'., 7, 8.
28. Peter Damian, 'Opuseculum', v.
29. Arnulfus, 'Gesta Archiepiscoporum Mediolanensium', iii. 21.
30. Arnulfus, 'Gesta Archiepiscoporum Mediolanensium', iii. 25.
31. देखें, भाग 2, अध्याय 2।
32. Arnulfus, 'Gesta Archiepiscoporum Mediolanensium', iv. 7.
33. Gregory VII., 'Reg'., iii. 10.
34. Id. id., iv. 13.
35. Gregory VII., 'Reg', iv. 22.
36. Id. id., v. 18.
37. Greg. VII,, 'Reg', 5 (b).
38. Id. id., 5 (b).
39. Id. id., vii 14-s p. 398.
40. Id. id., vii. 14 (a), p. 400.

Scanned by CamScanner

तृतीय अध्याय

"प्रतिष्ठापन" प्रश्न पर वादविवाद–(1)

हमने कुछ उन परिस्थितियों को खोजने का प्रयास किया है जिनके परिणामस्वरूप 1075 ई० में अयाजकीय "प्रतिष्ठापन" निषिद्ध कर दिया गया। अब हमें उस संघर्ष के इतिहास पर विचार करना है जिसे इसने जन्म दिया, तथा विवाद की विषयवस्तु के वास्तविक स्वरूप पर जिस रूप में वह विवाद-कर्त्ताओं के मस्तिष्क में उदित हुई, विचार करना है। जैसा हम देखेंगे, विवाद प्रायः "प्रतिष्ठानों" में पादरी के धर्म-दण्ड एवं धार्मिक मुद्रा के प्रयोग के प्रश्न की ओर अभिमुख होता है, किन्तु यह स्पष्ट है कि वास्तविक विवाद का यह विषय नहीं था। पोप की ओर से, यह सिद्धान्त कि धार्मिक नियुक्तियाँ लौकिक सत्ता से पूर्णतया नियन्त्रित नहीं होनी चाहिए, तथा साम्राज्य के दृष्टिकोण से, यह सिद्धान्त कि लौकिक सत्ता का भी इस प्रकार की नियुक्ति में कुछ स्थान है, वास्तव में ये ही महत्त्व-पूर्ण विषय थे।

साम्राज्यिक स्थिति का संयत विवरण 1081–82 ई० में ट्रीयर के बैनरिश द्वारा लिखे गए वरदून के बिशप थियोडोरिक के नाम से रचित पत्र या ग्रन्थ में उपलब्ध होता है।[1] वह स्वीकार करता है कि इस मान्यता में कुछ तर्क आभासित होता है कि बिशपों की नियुक्ति राजा द्वारा नहीं की जानी चाहिए। तथापि, वह शिकायत करता है कि इसका निषेध अवांछित उग्रता एवं शीघ्रता के साथ किया गया है, उसका वास्तविक प्रयोजन धर्म के प्रति उत्साह नहीं, किन्तु राजा (अर्थात् हेनरी चतुर्थ) के प्रति घृणा है। स्वाबिया के रूडोल्फ तथा अन्य राजाओं के द्वारा की गई नियुक्तियाँ स्वीकार कर ली गई हैं अथवा कम से कम उनका ख्याल रखा गया है, जबकि हेनरी चतुर्थ के प्रति निष्ठावान बिशपों की चाहे उनका सामान्य स्वीकृति से निर्वाचन अथवा स्वागत ही क्यों न हुआ हो, निन्दा की गई तथा उनको धर्म-बहिष्कृत किया गया है। वह आगे यह तर्क प्रस्तुत करता है कि राजा द्वारा नियुक्ति की यह प्रथा, कम से कम कई युगों से विद्यमान एवं स्वीकृत है, तथा वह इज़राइल के राजा द्वारा पुरोहितों की नियुक्ति का उल्लेख करता है, मेकेबियन युग (Maccabean Period) के पूर्व दृष्टान्त उद्धृत करता है तथा ग्रेगोरी महान् तथा सेविल

Scanned by CamScanner

के इसीडोर (Isidore of Seville) के लेखों से अनेक अंश प्रस्तुत करता है।[2]

साम्राज्यिक स्थिति को और विस्तृत रूप में सम्भवतः 1086 ई० की एक रचना में, जो पेरेश के बिशप विडो द्वारा लिखी गई है, निरूपित किया गया है।[3] वह बिशपों के साम्राज्यिक "प्रतिष्ठापन" के विरुद्ध तर्कों का एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है, तथा संत अम्बरोस की रचनाओं से विशेषतः कुछ वाक्य उद्धृत करता है जिनको कि इन तर्कों के समर्थन में प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु वह उनको यह कहकर अलग कर देता है कि ये विवाद विषय से संगत नहीं हैं। वह इस पर बल देता है कि बिशप के पद के दो पहलुओं में स्पष्ट विभेद करना आवश्यक है। एक ओर उसका पद आध्यात्मिक है, तथा उसकी समस्त आध्यात्मिक शक्तियाँ उसे पवित्र आत्मा (Holy Spirit) द्वारा दूसरे बिशपों के माध्यम से प्राप्त होती हैं। दूसरी ओर, उसके लौकिक अधिकार एवं सम्पत्तियाँ हैं, जो उसे राजा द्वारा प्रदान की जाती हैं। पवित्र आत्मा द्वारा उसे प्रदान की गई आध्यात्मिक शक्तियाँ साम्राज्यिक सत्ता के अधीन नहीं हैं, किन्तु लौकिक वस्तुएँ क्योंकि लौकिक सत्ता द्वारा प्रदान की जाती हैं, अतः उनके स्वामित्व का उस सत्ता के आनुक्रमिक धारणकर्त्ताओं द्वारा पुनर्नवीकरण किया जाना चाहिए। इसी के आधार पर वह इस तथ्य की व्याख्या एवं औचित्य सिद्ध करता है, जैसा वह कहता है, कि पोप हेड्रियन प्रथम तथा पोप लियो तृतीय द्वारा सम्राटों को "प्रतिष्ठापन" का अधिकार प्रदान किया गया था। वह इसमें यह भी जोड़ देता है कि धार्मिक चुनावों में प्रायः घटने वाली सामान्य अशांति को रोकने के लिए भी वैसा किया गया था।[4]

विडो धार्मिक निर्वाचनों में राजा की न्यायसंगत स्थिति के बारे में अपने मत की परिपुष्टि पोप निकोलस द्वितीय की घोषणा की धाराओं से भी करता है, जैसा कि वह समझता है, कि इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना साम्राज्यिक स्वीकृति के रोम का बिशप नहीं हो सकता। उसके अनुसार बड़ी सीमा तक इसका कारण यह तथ्य है कि धर्माध्यक्षीय निर्वाचनों में लौकिक सत्ता के नियन्त्रण न होने पर जो आनुषंगिक उपद्रव होते थे, विशेष रूप से हेनरी तृतीय के हस्तक्षेप से पूर्व पोप के धर्मासन के तीन अधिभोक्ताओं के मध्य संघर्ष, इसके साथ ही साथ यह तथ्य भी कि बिशपों के सभी लौकिक अधिकार राजाओं और सम्राटों से प्राप्त होते हैं तथा उनके प्रदान किए बिना धारण नहीं किए जा सकते; और वह इस पर बल देता है कि इसी अधिकार के कारण पादरी किसी भी प्रकार के कराधान से मुक्ति का दावा कर सकता है। इसके बाद वह सेविल के इसीडोर से ब्राउलियो (Braulio) के पत्र-व्यवहार का उद्धरण देते हुए कुछ वाक्यांशों से यह दिखलाता है कि इसीडोर बिशप पद की नियुक्ति में राजा का अधिकार मानता था। अंततः वह कहता है कि जो यह मानते हैं कि बिशप की नियुक्ति केवल पादरी का ही कार्य है उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि वह मूसा (Moses) ही था, जो कि यद्यपि पुरोहित नहीं था, जिसके द्वारा ईश्वर ने कानून प्रदान किए तथा पुरोहित वर्ग को आदेशित किया और यदि धार्मिक पद को धारण न करने वाले को इसके लिए अनुमति दी गई थी तो इसे अनुचित नहीं मानना चाहिए कि सम्राट् और राजा बिशप पद पर नियुक्ति करें, क्योंकि उनका जो अभिषेक होता है वह किसी सीमा तक पुरोहित से महानतर एवं अधिक गौरवशाली है तथा

Scanned by CamScanner

उनको एक साधारण अयाजक नहीं समझना चाहिए।[5]

यदि हम इन तर्कों पर विचार करने का प्रयत्न करें और उनके महत्त्व को परिसीमित करें तो यह प्रतीत होगा कि विडो की दृष्टि में वास्तव में महत्त्वपूर्ण विचार यह था कि बिशप की लौकिक सम्पदा लौकिक सत्ता के अधीन ही उसकी मानी जा सकती है और राजा ही उसे प्रदान करता है। वह इससे भी परिचित है कि बिशपों की नियुक्ति के विषय में लौकिक सत्ता के अधिकार के दावों के बारे में हेड्रियन प्रथम तथा लियो तृतीय के नकली दस्तावेजों के प्रमाणों के अतिरिक्त अनेक पूर्व-दृष्टान्त थे, जिनको कि जैसा प्रतीत होता है उसने सर्वप्रथम प्रयोग किया है, तथा वह इस पर बल देता है कि साम्राज्यिक सत्ता चर्च में व्यवस्था स्थापित करने में बहुत उपयोगी हो रही है। उसके अन्तिम तर्क के कि राजा और सम्राट् अपने अभिषेक के कारण साधारण अयाजक नहीं माने जा सकते, महत्त्व पर हमें पुनः विचार करने का अवसर मिलेगा। सबसे महत्त्वपूर्ण मान्यता पहली थी, क्योंकि यह 1122 ई० में वॉर्म्स में हुए समझौते के स्वरूप का पूर्वाभास प्रदान करती प्रतीत होती है।

अब हमें अयाजक "प्रतिष्ठापन" के निषेध के बारे में ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों के पूर्वतर समर्थकों के दृष्टिकोण एवं तर्कों की तुलना बेनेरिच तथा विडो के दृष्टिकोण से करनी चाहिए। इनमें सर्वप्रथम लौटेनबाख का मेनेगोल्ड है जिसका ग्रन्थ एड गेबेहरडम ('Ad Gebehardum') सम्भवतः 1085 ई० में लिखा गया था।

वह 1078 ई० की रोमन परिषद् की अनुज्ञप्ति के रूप में इस निषेध को उद्धृत करता है तथा उल्लेखनीय कटुतापूर्वक दावा करता है कि यह केथोलिक परम्परा, परिषद् के निर्णयों एवं धर्म-पिताओं के निर्णयों का प्रतिनिधित्व करता है। वह विशेषतः तथाकथित प्रेरितिक-विधान (Apostolical Canons) के एक नियम पर बल देता है, जो पोप लियो प्रथम की प्रायः उल्लिखित उक्ति है, कि कोई भी व्यक्ति बिशप नहीं माना जा सकता जिसको पादरियों द्वारा चुना न गया हो, जनता द्वारा जिसकी माँग न की गई हो, तथा धर्माध्यक्ष के अनुमोदन से प्रान्त के बिशपों ने जिसका अभिषेक न किया हो, तथा पोप सीलेस्टाइन प्रथम (Pope Celestine I) की समान रूप से सुपरिचित उक्ति भी (जिसे वह इन्नोसेन्ट प्रथम की उक्ति बताता है) कि कोई भी बिशप अनिच्छुक व्यक्तियों पर लादा नहीं जा सकता; तथा वह तर्क प्रस्तुत करता है कि यदि यह सत्य है तो स्पष्ट है कि बिशपों को राजाओं और राजकुमारों द्वारा स्वेच्छा से नियुक्त नहीं किया जा सकता।[6]

कुछ आगे चलकर वह कार्डीनल हुम्बर्ट के ही समान शब्दों में, जिनका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, उस हेय कौशल की निन्दा करता है जिसके द्वारा अनेक व्यक्ति लौकिक अधिकारियों के कृपापात्र बनते थे तथा धार्मिक पदों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते थे।[7]

तत्पश्चात् स्पष्टतः बेनेरिच के तर्कों के सन्दर्भ में मेनेगोल्ड मेकेबियन युग के तथाकथित पूर्व-दृष्टान्तों पर विचार करता है, तथा निश्चयपूर्वक मानता है कि उनको गलत समझा गया था, परन्तु यदि वास्तव में वे वैसे नहीं भी होते तो भी वे किसी अधिकार से युक्त नहीं हैं क्योंकि मेकेबियन पुस्तकें (Books of Maccabees) प्रामाणिक धर्म-ग्रन्थ संग्रह का अंग नहीं हैं।[8] उसी प्रकार वह यह भी तर्क करता है कि सोलोमन द्वारा सेडोक को

Scanned by CamScanner

उच्च पुरोहित नियुक्त करना एक गलती थी, किन्तु यदि वह ठीक भी होता तो भी इससे कोई बात सिद्ध नहीं होती, क्योंकि उस युग की परिस्थितियों को देख कर यदि राजा को वैसा अधिकार दे भी दिया गया हो तो भी नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत उसका कोई औचित्य नहीं था।[9]

वह विस्तारपूर्वक बेनेरिच की मान्यता की कि संत इसीडोर तथा संत ग्रेगोरी महान् बिशपों की नियुक्ति में राजाओं और सम्राटों के न्यायोचित अधिकारों को स्वीकार करते थे, परीक्षा करता है तथा तर्क देता है कि उनके ग्रन्थों से जिन वाक्यांशों को बेनेरिच ने उद्धृत किया है वे गलत समझे गए हैं, तथा यह प्रदर्शित करने के लिए अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है कि रोमन धर्मपीठ का निर्वाचन कभी भी किसी लौकिक सत्ताधारी के अधिकार में नहीं रहा, जबकि दूसरी ओर पोप को बिशपों की नियुक्ति तथा नये धर्म-क्षेत्र के संगठन का अधिकार था।[10]

इस प्रकार लौकिक सत्ता द्वारा बिशपों की नियुक्ति के अधिकार के समर्थन में उठाये गए तर्कों पर विचार करके वह राजाओं द्वारा मुद्रा एवं धर्म-दण्ड से बिशप के प्रतिष्ठापन की व्यर्थता एवं अनौचित्य को सिद्ध करता है, क्योंकि ये आध्यात्मिक रहस्यों के प्रतीक थे, तथा जैसा मेनेगोल्ड कहता है, कि यह प्रथा थी कि वे राजा से प्राप्त करने के बाद अभिषेक करने वाले बिशपों द्वारा पुनः प्रदान किए जाते थे, यह एक प्रकट मूर्खता थी।[11]

मेनेगोल्ड दृढ़तापूर्वक, लौकिक सत्ताधारियों द्वारा बिशपों की नियुक्ति के दावों तथा अयाजकों द्वारा मुद्रा एवं दण्ड से "प्रतिष्ठापन" के विरुद्ध अपने तर्क प्रस्तुत करता है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता कि उसका अभिप्राय यह सिद्ध करना था कि नियुक्ति में लौकिक सत्ता का कोई भी हाथ नहीं है। वह राजा के स्वेच्छाचारी कार्य को अस्वीकार करता है। ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उसके मन में अनिवार्यतः किसी भी प्रकार के समझौते की अभिलाषा नहीं थी।

1087 ई० में, फेरेरा के बिडो द्वारा उस ग्रन्थ के प्रणयन के, जिस पर हम पहले विचार कर चुके हैं, एक वर्ष बाद कार्डीनल ड्यूसडेडिट ने "कलेक्टियो केनोनम" (Collectio Canonum) नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें उसने अनेक अधिकृत लेखांश प्रस्तुत किए जिनके द्वारा धार्मिक पदों के निर्वाचन की स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया गया था तथा लौकिक सत्ता द्वारा बिशपों की नियुक्ति की निन्दा की गई थी।[12] 1097 ई० में ड्यूसडेडिट ने एक नया ग्रन्थ प्रारम्भ किया, जिसका शीर्षक लिखा "लिबैलस कान्त्रा इनवासोरेस एट साइमोनिएकॉस (Libellus contra invasores et symoniacos) था, जिसमें इस प्रश्न पर वह विस्तारपूर्वक विचार करता है। वह ग्रन्थ के प्रारम्भ में उसका उद्देश्य बताता है, जिसे वह उन धर्म-विक्रयी तथा धार्मिक विभेदकारियों को उत्तर देना बताता है जो कहते हैं कि ईसा का चर्च राज्यीय सत्ता के अधीन है तथा राजा को स्वविवेकानुसार धार्मिक पदों पर नियुक्ति का तथा चर्च सम्पत्ति को अपने आपको अथवा दूसरों को हस्तांतरित करने का अधिकार है। यद्यपि वह प्रतिज्ञापित करता है कि इस प्रकार कहकर वह राजकीय गौरव का अपकर्ष नहीं कर रहा है, क्योंकि राजा का पद भिन्न है तथा पुरोहित का पद उससे भिन्न है। प्रत्येक को दूसरे की आवश्यकता है, तथा

Scanned by CamScanner

किसी को भी दूसरे के काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।[13]

अतः वह तथाकथित प्रेरितिक विधान से वाक्यों को उद्धृत करना प्रारम्भ करता है। "Si quis episcopus saecularibus potestatibus usus ecclesiam per ipsis obtineat, deponatur; et segregentur omnes qui illi Communicant".

उसका विचार है कि यह नियम प्रेरितों द्वारा इस अनुमान पर लागू किया गया था कि एक युग ऐसा आएगा जबकि लौकिक सत्ता ईसाई धर्म को अंगीकार कर लेगी, तथा अपनी सत्ता को चर्च पर लागू करने एवं अपनी इच्छा तथा सत्ता से पादरियों को नियुक्त करने को आकर्षित होगी। वह इससे परिचित है कि इन नियमों की प्रामाणिकता पर संदेह किया गया है, किन्तु वह यह प्रतिपादित करता है कि वे विभिन्न परिषदों एवं धर्माचार्यों द्वारा स्वीकार किए जाते रहे हैं, तथा वह इस पर बल देता है कि बहुत समय तक चर्च ने इन परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाए रखा है, तथा प्रत्येक चर्च के पादरी एवं जनता ही अपने बिशप को चुनते रहे।[14] यह प्रथा तबतक चलती रही जबतक कि चर्चों की संख्या बहुत नहीं हो गई और वे धनवान नहीं हो गए, तथा इसे पोप एवं सम्राटों द्वारा मान्यता प्राप्त रही। प्रथम सम्राट्, जिन्होंने इन परम्पराओं का उल्लंघन किया, उनमें से थे जिनको वह यूटीशियन (Eutychian) कहता है, उदाहरणार्थ, जीनो तथा एनेस्टेशियस, और उनका अनुकरण कुछ उत्तरकालीन पूर्वी रोमन सम्राटों ने किया। ड्यूसडेडिट इस तथ्य से परिचित है कि एक समय रोमन चर्च भी अभिषेक से पूर्व अपने बिशपों के निर्वाचन को राजाओं को सूचित करते थे। फिर वह अनेक पोप सम्बन्धी एवं परिषदीय विज्ञप्तियों को गिनाता है जिन्होंने लौकिक सत्ताधारियों के हस्तक्षेप का निषेध किया था तथा जिनके अनुसार निर्वाचन स्वतन्त्र होना चाहिए।[15] वह पोप निकोलस द्वितीय द्वारा पोप के चुनाव के सम्बन्ध में जारी की गई विज्ञप्ति की इस व्यवस्था के बारे में कुछ कठिनाई अनुभव करता है जिसमें यह कहा गया है कि सम्राटों को सूचना पोप के निर्वाचन के बाद परन्तु उसके अभिषेक से पूर्व देनी चाहिए। इस विज्ञप्ति की इस व्यवस्था के बारे में, पहले वह यह तर्क प्रस्तुत करता है कि चाहे यह घोषणा में व्यक्त भी किया गया हो तो भी राजा तथा उसके सलाहकारों द्वारा बाद में निकोलस द्वितीय को पदच्युत करने के प्रयत्न सम्बन्धी आचरण के कारण, और तत्पश्चात् पहले पारमा केडेलुग्रस तदनुरूप रेवन्ना के ग्यूबर्ट को पोप के विरोध में खड़ा करने के कारण अवैध हो गई है। दूसरे, वह यह मानता है कि इस घोषणा की प्रतियों में इतनी जोड़-तोड़ हुई है कि वे एक-दूसरे से संगत नहीं हैं। तीसरे, यदि निकोलस ने यह आज्ञा भी दी हो तो भी यह अवैध थी, क्योंकि वह केवल एक अधिधर्माध्यक्ष था तथा बिशपों की परिषद् की सहायता से भी वह पाँच अधिधर्माध्यक्षों तथा हजारों आचार्यों द्वारा अभिघोषित एवं ईसाई सम्राटों द्वारा परिपुष्ट व्यवस्था को नहीं बदल सकता, क्योंकि उनकी घोषणाओं में राजकीय अधिकारियों को बिशपों की नियुक्ति अथवा निर्वाचन में हस्तक्षेप का कोई भी अधिकार प्रदान नहीं किया गया है।[16] तत्पश्चात् वह पोप के लेखों एवं रोमन कानून से अनेक अंश उद्धृत करता हुआ यह सिद्ध करता है कि कोई भी कार्य जो अवैध रूप से और गलती से किया गया है अवैध घोषित करना चाहिए, अतः निष्कर्ष निकालता है कि पोप निकोलस की आज्ञा अवैध थी।

Scanned by CamScanner

वह प्रतिपादित करता है कि यह कहते हुए वह पोप की पावन स्मृति के विपरीत कोई असम्मानजनक बात नहीं कह रहा है, क्योंकि वह भी मनुष्य था तथा यह सम्भव है कि वह कोई इस प्रकार का कार्य करने को राजी कर लिया गया हो जो कि वैधानिक एवं न्यायसंगत न हो, तथा वह पोप बोनीफेस द्वितीय का एक दृष्टान्त देते हुए बताता है कि किस प्रकार उसने एक गलत जारी की गई विज्ञप्ति को रद्द कर दिया था, तथा यह बताता है कि पोप निकोलस द्वितीय भी वैसा ही करता यदि उसने धर्माचार्यों की संगृहीत सम्मति को देखा होता एवं उनको अपनी आज्ञप्ति के विपरीत पाया होता।[17]

ड्यूसडेडिट इसके बाद उस तर्क पर विचार करता है कि बिशप की नियुक्ति स्वेच्छा-पूर्वक लौकिक सत्ता द्वारा दीर्घकालीन प्रथा से स्वीकृत है, और इसके उत्तर में कहता है कि विभिन्न प्रथाओं के प्रचलित होने पर उसी प्रथा को मान्यता दी जानी चाहिए जो कि प्रेरितिक युग जितनी पुरानी हो, तथा लौकिक राजाओं द्वारा इस प्रथा में लायी गई विकृतियाँ इन अधिकारों को समाप्त नहीं कर सकतीं।[18] अन्त में वह यह बलपूर्वक कहता है कि राजाओं द्वारा धार्मिक पदों पर नियुक्ति ही धर्म-विक्रय की कुप्रथा के प्रचलन एवं पादरियों द्वारा कर्तव्य की अवहेलना का कारण है, क्योंकि वे राजसभाओं में अपनी अनुचित सेवाओं के मूल्य स्वरूप प्राथमिकता प्राप्ति के लिए भीड़ करते रहते हैं। वह इस तर्क को राजकीय गिरजों और उनके पादरियों पर आक्रमण के लिए प्रयुक्त करता है।[19]

ड्यूसडेडिट की मान्यता है कि उस समय इन्हीं कारणों से ग्रेगोरी सप्तम ने सभी बिशप पदों एवं मठों की लौकिक-नियुक्तियों को अवैध घोषित कर दिया था, तथा घोषणा की थी कि उन सभी व्यक्तियों को जो "प्रतिष्ठापन" प्रदान करने का प्रयास करेंगे धर्म-बहिष्कृत कर दिया जाएगा तथा वह 1080 ई० की रोम की परिषद् की घोषणा को उद्धृत करता है।[20]

यह उल्लेखनीय है कि ड्यूसडेडिट उसी सिद्धान्त को कस्बों के गिरजाघरों पर व्यक्तिगत प्रश्रय के प्रश्न पर भी लागू करता है, तथा यह मानता है कि कस्बे के पुरोहित को भी कस्बे के पादरियों एवं जनता द्वारा चुना जाना चाहिए तथा किसी को भी उनकी इच्छा के विपरीत नियुक्त नहीं करना चाहिए।[21]

यदि हम विवादास्पद साहित्य के उन प्रमुख तर्कों को संहृत करने का प्रयास करें जिन पर हम विचार कर आए हैं, तो हम कह सकते हैं कि यद्यपि साम्राज्यिक दल के प्रतिनिधियों द्वारा बहुत कुछ कहा गया है, जो कि बिशपों की नियुक्ति के सम्बन्ध में लौकिक सत्ता को व्यापक अधिकार देने का समर्थन करता है, जिनका वे एक लम्बे समय तक उपयोग भी करते रहे हैं, तथापि साम्राज्यिक दल के समर्थकों ने पहले से इसे स्वीकार कर लिया था कि बिशप की स्थिति के लौकिक एवं धार्मिक पक्षों में एक अनिवार्य अन्तर है, तथा यह माना था कि धार्मिक नियुक्ति को निर्धारित करने के अधिकार के बारे में लौकिक सत्ता का दावा शुद्ध रूप से लौकिक पक्ष से ही सम्बद्ध है। दूसरी ओर ग्रेगोरी सप्तम के समर्थक कभी-कभी यह स्वीकार करने के पूर्णतया विरुद्ध प्रतीत होते हैं कि लौकिक सत्ता का भी धार्मिक पदों पर नियुक्तियों में कोई भी स्थान हो सकता है, किन्तु उनका मुख्य बल किसी सत्ता द्वारा स्वेच्छानुसार नियुक्ति करने के निर्द्वन्द्व अधिकार के

Scanned by CamScanner

खण्डन पर, तथा धर्मप्रदेश के पादरियों और जनता द्वारा स्वतन्त्र चुनाव करने के अधिकार पर है, यद्यपि उनके द्वारा भी लौकिक सत्ता के दुरुपयोग के कारण होने वाले व्यावहारिक दोषों पर बहुत ध्यान दिया गया है। इस समय तक उन्होंने साम्राज्यिक दल के इस तर्क पर, जो कि उच्च धर्माधिकारियों की लौकिक-पदस्थिति पर बल देता था, न तो विमर्श किया था और न इसका खण्डन ही किया था।

ग्यारहवीं शताब्दी की समाप्ति तक यह संघर्ष एक भिन्न स्वरूप प्राप्त करने लगा तथा अब हम इस पर विचार करेंगे।

सन्दर्भ

1. के० फ्रांक ने M. G. H 'Libelli De Lite' Vol. I, पृ० 280–284 पर इसका विस्तृत विवेचन किया है।
2. Wenrich of Trier, 'Epistola'., 8.
3. Cf. M. G. H., 'Lib. De Lite', vol. 1, pp. 529–532.
4. Wido, 'De Scismate Hildebrandi', 'Libelli De Lite', vol. i. p. 564.
5. Id. id. id., p. 566.
6. Manegold., 'Ad. Gebehardum', 50.
7. Id. id., 53.
8. Id. id., 55.
9. Id. id., 56.
10. Id. id., 57-63.
11. Id. id., 64.
12. Cardinal Deusdedit, 'Collectio Canonum', e. g., i. 93, 96, 97, 196 : iv. 11, 16, 17, 20, 146.
13. Deusdedit, 'Libellus contra invasores', etc. prologus.
14. Id. id., i. 3–9.
15. Id. id., i. 11.
16. Id. id., i. 12.
17. Id. id., 14.
18. Id. id., 15.
19. Id. id., i. 16. cf. p. 79.
20. Id. id., iv. 2.

Scanned by CamScanner

चतुर्थ अध्याय

"प्रतिष्ठापन" प्रश्न पर वादविवाद–(2)

हमें ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से लेकर पैस्कल द्वितीय (Paschal II) तथा हेनरी पंचम (Henery V) द्वारा समझौते के प्रयत्नों तथा संघर्ष के विकास पर विचार करना होगा। इस युग की विशेषता एक मध्यस्थतावादी मत का विकास है, जो दोनों दलों के तर्कों में युक्ति-संगत तत्त्वों को विभिन्न रूपों में स्वीकार करता है। मध्यस्थ दल की अपेक्षा मध्यस्थ-मत शब्द का ही प्रयोग करना अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि यह हम उन मनुष्यों में पाएँगे, जिसको अपने काल के अधिक सामान्य संघर्ष के सम्बन्ध में, जिस पर हम बाद में विचार करेंगे, कभी किसी एक महान् दल का कभी दूसरे का समर्थन करते हुए अथवा कभी-कभी पूर्णतः किसी भी दल से सम्बन्ध न रखते हुए पा सकते हैं।

वास्तव में यह प्रतीत हो सकता है कि ग्रेगोरी सप्तम की 1086 ई० में मृत्यु एवं हेनरी चतुर्थ की 1106 ई० में मृत्यु ने सारी परिस्थिति को ही बदल दिया हो, किन्तु जहाँ तक "प्रतिष्ठापन" का प्रश्न है, यह सही नहीं था। ग्रेगोरी सप्तम के उत्तराधिकारियों विशेषतः पोप अरबन द्वितीय (Pope Urban II) ने ग्रेगोरी सप्तम द्वारा अयाजक "प्रतिष्ठापन" के निषेध को दृढ़तापूर्वक बनाए रखा, जबकि हेनरी पंचम ने भी, पिता की मृत्यु के बाद उसके प्रति अपने अधिकार को बनाए रखा। तथापि यह सम्भव है कि चाहे विरोधी दलों की औपचारिक रूप से तथा बाह्यतः स्थिति वैसी ही दिखाई देती हो किन्तु मूल विरोधियों के हट जाने से परिस्थितियों में एक बड़ी सीमा तक परिवर्तन आ गया, तथा मध्यस्थतावादी प्रवृत्तियों को विकसित होने तथा बल प्राप्त करने का अवसर सुगम हो गया।

जिस लेखक में हमें यह मध्यस्थतावादी प्रवृत्ति स्पष्टतः दिखाई देती है वह सम्भवतः शार्त्रे (Chartres) का बिशप ईवो (Ivo) है। ईवो अपने युग का सबसे विद्वान व्यक्ति था, जैसा कि उसके महान् वैधानिक ग्रन्थों डेक्रेटम (Decretum) तथा पेनोरमिया (Panormia) से पर्याप्त रूप में विदित होता है। उसके पत्रों से स्पष्ट है कि वह "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर संघर्ष से उत्पन्न अवस्था से संतुष्ट नहीं था, तथा वह बिशपों की नियुक्ति में लौकिक सत्ता के योगदान के पूर्ण बहिष्कार को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। लियोन्स

Scanned by CamScanner

के आर्चबिशप ह्यू (Hugh) को, जिसे वह फ्रांस का धर्माधियात तथा पोप का दूत मानता है, 1096–97 ई० में लिखे गए एक पत्र में वह डेम्बर्ट (Daimbert) की सेन्स (Sens) के आर्चबिशप पद पर नियुक्ति से उठने वाले प्रश्न पर विचार करता है। सर्वप्रथम वह लियोन्स के आर्चबिशप द्वारा सेन्स के आर्चबिशप पर प्रभुत्व की मांग का शास्त्र-सम्मत न होने के कारण विरोध करता है[1]; तदन्तर ह्यू द्वारा उसके अभिषेक पर इस आधार पर उठाई गई आपत्ति का, कि उसने फ्रांस के राजा से "प्रतिष्ठापन" प्राप्त किया है, विचार करता है। वह यह कहकर प्रारम्भ करता है कि उसे कोई विश्वसनीय सूचना नहीं है कि डेम्बर्ट ने वैसा किया है, साथ ही यह भी मानता है कि यदि उसने वैसा किया भी हो, तो यह धर्म का उल्लंघन नहीं है। पोपों ने स्वयं उन व्यक्तियों के जिनका विधिवत् निर्वाचन हुआ है, बिशप-पद प्रदान करने में राजाओं का अधिकार स्वीकार किया है, तथा वह यह समझता है कि पोप अरबन द्वितीय ने केवल अयाजक प्रतिष्ठापन का निषेध किया है, न कि जनता के अध्यक्ष के रूप में, राजा द्वारा निर्वाचन में योगदान अथवा पद-प्रदान का भी निषेध किया है। वह इस पर बल देता है कि यह पूर्णतया महत्त्वहीन है कि किस रूप में पद-प्रदान किया गया—हाथ से, या शब्दों से, या धर्म-दण्ड से, क्योंकि राजाओं का प्रयोजन कोई आध्यात्मिक वस्तु प्रदान करना नहीं था, किन्तु उनका अभिप्राय या तो निर्वाचनकर्त्ताओं की अभिलाषा से अपनी सहमति व्यक्त करना है, अथवा चर्च की सम्पत्ति और अन्य भौतिक वस्तुओं को उन व्यक्तियों को सौंपना है जिनका निर्वाचन हो चुका है, तथा वह संत ऑगस्तीन के सुपरिचित शब्दों को उद्धृत करता है जिनमें यह कहा गया है कि सभी सम्पत्ति मानवीय कानूनों से नियन्त्रित होती है। पुनः जबकि वह इसको प्रतिज्ञापित करता है कि उसका अभिप्राय पोप के निर्णयों के विरुद्ध अपनी सत्ता स्थापित करना नहीं है, जहाँ तक कि वे तर्कसंगत तथा धर्माचार्यों के अधिकारों के अनुकूल हैं, वह यह भी मानता है कि ये नियम अर्थात् राजाओं द्वारा "प्रतिष्ठापन" का निषेध भी शाश्वत कानूनों की किसी व्यवस्था पर निर्भर नहीं, किन्तु केवल पोप के प्रमाण पर निर्भर है।[2] (Quia ea illicita maxime facit presidentium prohibito)।

ईवो द्वारा अपने पत्र में अंगीकार की गई स्थिति बहुत उल्लेखनीय तथा महत्त्वपूर्ण है। सर्वप्रथम, वह अयाजकों द्वारा "प्रतिष्ठापन" के इस निषेध को, जिसे हम प्रशासनिक नियम कह सकते हैं मानता है, जिसे जैसा सुविधाजनक हो चाहे क्रियान्वित किया जाए अथवा नहीं और वह इसे चर्च के कानूनों का स्थायी अंग नहीं मानता है। दूसरे, वह इस निषेध का यह अभिप्राय नहीं मानता कि राजा का धार्मिक पदों की नियुक्ति में कोई स्थान नहीं है, वह मानता है कि जनता के अध्यक्ष के रूप में निर्वाचन में उसका योगदान हो सकता है, तथा उसे संपुष्टि या पद प्रदान करने का अधिकार है। तीसरे, राजा यह किस प्रकार करे—यह स्वरूप उसके मत में महत्त्वहीन है, उसका धार्मिक अधिकारों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है, किन्तु उसका अर्थ या तो चुनाव से सहमति की अभिव्यक्ति के रूप में या उसे धर्म-प्रदेश की भौतिक संपदाओं को प्रदान करने के रूप में लिया जाना चाहिए; और ईवो इस बारे में स्पष्ट है कि ये राजा द्वारा ही प्रदान किए जाने चाहिए, क्योंकि सभी सम्पदा लौकिक सत्ता के अधिकार में है।

Scanned by CamScanner

कुछ वर्षों बाद सम्भवत: 1111 ई० अथवा 1112 ई० में ईवो सेन्स प्रान्त के आर्च-बिशप तथा अन्य बिशपों के नाम से लियोन्स के आर्चबिशप आयोसकरेनस को लिखे एक पत्र में पुनः उसी प्रश्न पर विचार करता है। आयोसकरेनस ने फ्रांसीसी प्रान्तों के आर्च-बिशपों एवं बिशपों की एक परिषद् अयाजकों द्वारा "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर विचार करने के लिए बुलाई थी। ईवो अपने प्रान्त के नाम पर, उस परिषद् में सम्मिलित होना इस आधार पर अस्वीकार कर देता है कि धर्माधिपति के अधिकार में राज्य की परिषद् का आह्वान करना नहीं है, साथ ही वह पैस्कल द्वितीय के जिसने 1111 ई० में, जैसा हम आगे देखेंगे, "प्रतिष्ठापन" का अधिकार सम्राट् हेनरी पंचम को प्रदान कर दिया था इस कार्य की सार्वजनिक चर्चा अथवा निन्दा करने का भी विरोध करता है; किन्तु ईवो तथा दूसरे बिशपों को वह यह सूचित कर चुका था कि उसने उस अधिकार को वापिस ले लिया था तथा उसने वह स्वीकृति बाध्य किये जाने पर ही दी थी। ईवो कहता है कि यह सही नहीं है कि वे पोप के कार्यों पर विचार करने के लिए परिषद् में एकत्रित हों क्योंकि जबतक वह धर्म से विचलित न हो तबतक उसका न्याय अथवा निन्दा करने का उनको कोई अधिकार नहीं है।[3] वह इस पर बल देता है कि "प्रतिष्ठापन" का प्रश्न अपधर्म या शाश्वत कानून का प्रश्न नहीं है, किन्तु, जैसा उसने अपने पूर्व पत्र में कहा था यह प्रशासनिक व्यवस्था का प्रश्न है, अतः यह तर्कसंगत है कि पोप विभिन्न व्यक्तियों को "प्रतिष्ठापन" प्राप्त करने के अपराध से दोष मुक्ति की अनुमति उनके द्वारा धर्म-दण्ड समर्पण कर पुनः पोप के हाथों प्राप्त करने पर प्रदान करदें। यदि कोई अयाजक यह सोचे कि दण्ड समर्पण एवं प्राप्ति में किसी प्रकार का संस्कार निहित है या वह धार्मिक संस्कार का सत्य प्रदान कर सकता है, तो वह अपधर्मी है। अन्त में, वह अपनी राय इस प्रकार देता है कि जहाँ तक अयाजक द्वारा "प्रतिष्ठापन" दूसरे व्यक्ति के अधिकारों का अतिक्रमण है, इसकी समाप्ति यदि यह बिना धार्मिक फूट के हो सके, कर देनी चाहिए, किन्तु यदि इसका यही परिणाम होगा तो ऐसी कार्यवाही को स्थगित कर देना चाहिए।[4]

ईवो ने इस प्रकार पुनः स्पष्ट कर दिया कि वह अयाजक "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न को चर्च की प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बन्धित मानता था, आवश्यक एवं शाश्वत कानून का अंग नहीं, क्योंकि उसका बिशप के आध्यात्मिक पद से कोई सम्बन्ध नहीं है। तथापि यह प्रतीत होता है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि धर्म-दण्ड द्वारा अयाजक "प्रतिष्ठापन" लोकनिन्दा का कारण है अतः अच्छा हो यदि किसी गम्भीर अव्यवस्था अथवा संघर्ष को उत्पन्न किए बिना किया जा सके कि इसे समाप्त कर दिया जाए। लियोन्स के आयोन्से-केरेनस ने अपने उत्तर में लिखा है कि यद्यपि "प्रतिष्ठापन" का कार्य धर्म विरुद्ध नहीं है तथापि यह मत कि यह अनुज्ञाप्त हो सकता है धर्म विरोधी है।[5]

यदि शार्त्रे का ईवो उन लोगों के बीच जो कुल मिलाकर पोप के दल के समर्थक थे एक मध्यस्थतावादी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है, तथा जैसा कि हम देख चुके हैं, कि वह स्पष्टतया यह कहता है कि वह अयाजक "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर पोप के कार्य की आलोचना की धृष्टता नहीं कर रहा है, हम फ्ल्यूरी के ह्यू को उनका अच्छा प्रतिनिधि मान सकते हैं जो पोप के कार्य के आलोचक थे, किन्तु "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर जिनकी स्थिति

Scanned by CamScanner

मध्यस्थतावादी थी। उसका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ De Regia Potestate et Sacerdotali Dignitate जिसका हम वाद में पूर्ण वर्णन करेंगे, बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में लिखा गया था, तथा इंगलैण्ड के हेनरी प्रथम को समर्पित किया गया था। उसमें वह यह कहता है कि राजा को (Praesulatus Honorem) प्रदान करने का अधिकार है जबकि आर्चबिशप आत्मा का उपचार प्रदान करता है, तथा वह मानता है कि यह प्रथा उसके समय तक प्रचलित थी। जबकि पादरी एवं जनता चर्च की प्रथा के अनुरूप बिशप को चुनें, तो राजा को धर्मद्रोह पूर्वक चुनाव में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, किन्तु वैध रूप में अपनी स्वीकृति यदि निर्वाचित प्रतिनिधि उचित रूप से योग्य है प्रदान करनी चाहिए, किन्तु यदि वह अनुयुपक्त व्यक्ति है तो राजा और जनता दोनों को ही अपनी स्वीकृति प्रदान न करने का अधिकार है। चुनाव के बाद राजा को सभी भौतिक सम्पदाएँ प्रदान करनी चाहिए, किन्तु मुद्रा और दण्ड नहीं, जो कि आर्चबिशप द्वारा ही दिए जाने चाहिए अतः वह कहता है कि इस प्रकार लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों सत्ताओं के पास वह बना रहेगा जो उनके अधिकार की वस्तु है।[6]

ह्यू की स्थिति, सम्भवतः साभिप्राय, सभी वादविषयों पर स्पष्ट नहीं है। वह निश्चयपूर्वक नहीं कहता कि निर्वाचन सदैव पादरी एवं जनता द्वारा ही किया जाए; किन्तु राजा की स्थिति के अपने विवरण में वह स्पष्ट कर देता है कि राजा को स्वेच्छा से कार्य नहीं करना चाहिए। वह ईवो की भाँति बिशप के आध्यात्मिक-पद जिसे आर्चबिशप द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए, तथा उनकी लौकिक-स्थिति में, जिसे वह राजा से प्राप्त करता है, बहुत स्पष्टतया विभेद करता है, तथा वह धर्म-क्षेत्र की भौतिक संपदाओं को प्रदान करने में राजा द्वारा दण्ड एवं मुद्रा के प्रयोग की निन्दा करता है।

बिशपों के "प्रतिष्ठापन" पर एक बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सुरक्षित रखा है, जो, जैसा विचार है, 1109 ई० का है।[7] इस ग्रन्थ का लेखक अज्ञात है, किन्तु यह स्पष्ट है कि वह साम्राज्यिक दल का था; वास्तव में यह भी मत है कि यह ग्रन्थ उस पक्ष के समझौते की सम्भावना के न्यूनाधिक सुविचारित सुझाव का प्रतिनिधित्व करता है।[8] लेखक पूर्व दृष्टान्तों की भव्य शृंखला प्रस्तुत करके लौकिक सत्ता के बिशप पद पर नियुक्ति के ऐतिहासिक अधिकार की पुष्टि करता है। वह पोप हेड्रियन प्रथम की अप्रामाणिक घोषणा को उद्धृत करता है जिसे, जैसा कि हम देख चुके हैं, फेरेरा के विडो[9] ने भी प्रस्तुत किया था, किन्तु यह सिद्ध करता है कि इससे बहुत पूर्व ही सम्राटों, राजाओं और राजभवनों के मेयरों द्वारा बिशपों की नियुक्ति तथा प्रतिष्ठा होती थी तथा यह प्रथा पोप ग्रेगोरी महान् द्वारा स्वीकार की गई थी।[10] वह इस पर बल देता है कि यह निष्प्रयोजन है कि "प्रतिष्ठापन" राजा द्वारा शब्दों से अधिकार-दण्ड से अथवा किसी अन्य तरीके से ही किया जाय, किन्तु वह सुझाव देता है कि अधिकार-दण्ड अधिक उपयुक्त प्रतीक है, क्योंकि इसके दोनों प्रकार के अर्थ होते हैं, भौतिक भी एवं आध्यात्मिक भी। लेखक स्पष्टतः लौकिक सत्ता द्वारा बिशप के प्रतिष्ठापन के अधिकार का सम्बन्ध चर्च की भौतिक सम्पदा एवं शक्ति से जोड़ता है। वह कहता है कि कान्सटेण्टाइन के युग तक चर्च निर्धन था, किन्तु जब ईसाई सम्राटों ने उसे बहुत अधिक भौतिक सम्पत्ति तथा शक्तियाँ प्रदान कर दी,

Scanned by CamScanner

तो यह उचित ही था कि राजा, जो जनता में से एक है तथा जनता का अध्यक्ष है, बिशप को जिसको उसने राज्य की इतनी शक्तियाँ प्रदान कर रखी हैं प्रतिष्ठित करे एवं गद्दी पर बैठाए। यदि बिशप उतने ही निर्धन रहते जैसा कि ग्रेगोरी महान् ने एक बिशप का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके पास एक शीतकालीन लबादा भी नहीं था, तो स्थिति कुछ भिन्न होती तथा उस दशा में उस व्यक्ति से श्रद्धा एवं निष्ठा की शपथ प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं होती।[11]

लेखक राजा के "प्रतिष्ठापन" के अधिकार का सम्बन्ध भौतिक धन-सम्पत्ति के स्वामित्व से जोड़ता है, तथा उस स्वरूप को महत्त्व नहीं देता जिसके अन्तर्गत यह सम्पादित हो, किन्तु वह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि, श्रद्धा एवं शपथ से संयुक्त 'प्रतिष्ठापन" जिस रूप में भी हो अभिषेक से पूर्व किया जाना चाहिए। यह इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि धार्मिक पदों पर नियुक्ति में राजकीय सहमति की स्वतन्त्रता को पुष्ट करने के लिए कृतसंकल्प है। उसका सुझाव कि, यदि चर्च निर्धन बना रहता तो राजकीय दावे को अस्वीकार किया जा सकता था, संघर्ष को हल करने की दिशा में पैस्कल द्वितीय के आश्चर्यजनक सुझाव से कहाँ तक सम्बद्ध हो सकता है इसे जाँचने का हमारे पास कोई साधन नहीं है तथा उस पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

अंततः लेखक यह कहता है कि राजाओं के "बिशपों के प्रतिष्ठापन" के अधिकार को छीनने के पोप के प्रयत्न का परिणाम ईसाई लोगों में बहुत बड़े भय एवं संकोच को निश्चितरूपेण उत्पन्न करेगा। वह स्वीकार करता है कि यदि इन अधिकारों का दुरुपयोग किया जाए तो पोप को इसमें सुधार लाना चाहिए, किन्तु वह शिकायत करता है कि पोप इस पर बल देता है कि यदि वे गलती करें तथा बिशपों की नियुक्ति में स्वेच्छाचार बरतें, तो भी उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, और यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि सर्वोच्च पादरी का निर्णय किसी मनुष्य द्वारा नहीं किया जा सकता, वह उन्हें एक से अधिक बार स्मरण दिलाता है कि जब-जब पोप के निर्वाचन के सम्बन्ध में झगड़े हुए हैं तब-तब वे पूर्वी रोमन या फ्रेंक सम्राटों के हस्तक्षेप से ही सुलझे हैं।[12]

पिछले ग्रन्थ में हम इस मान्यता के सबसे कट्टर समर्थक रूप में कि राजकीय सत्ता को नियन्त्रित करना अपवित्र था[13] क्रेटिनो के ग्रेगरी की स्थिति पर विचार कर चुके हैं अतः यह आश्चर्यजनक नहीं कि वह बिशपों के "प्रतिष्ठापन" के राजकीय विशेषाधिकार का दृढ़ता से समर्थन करता है। तथापि उसके मामले में भी यह उल्लेख करना लाभकर होगा कि वह "प्रतिष्ठापन" का क्या अर्थ समझता है तथा उसके समर्थन में दिए गए उसके तर्कों का क्या स्वरूप है। उसका ग्रन्थ ओरथोडॉक्सा डिफेन्सियो इम्पीरियलिस (Orthodoxa Defensio Imperialis) हेनरी पंचम के पदारोहण के बाद लिखा गया था तथा यह माना जाता है कि उसका काल 1111 ई० होना चाहिए, लगभग वही समय जबकि हेनरी पंचम ने पैस्कल द्वितीय को कुछ समय के लिए "प्रतिष्ठापन" का अपना अधिकार मानने को बाध्य कर दिया था।

ग्रेगोरी वास्तव में चरम साम्राज्यिक स्थिति का प्रतिनिधि है तथा राजा का चर्च के अध्यक्ष के रूप में वर्णन करता है। कभी वह ओल्ड टेस्टामेन्ट से इसका समर्थन करता है

Scanned by CamScanner

तथा संत क्रिसोस्टम (St. Chrysostom) के नाम से आरोपित एक वाक्य से भी जो अप्रामाणिक प्रतीत होता है।[14] हमें इस धारणा पर बाद में विचार करना होगा। वह तर्क प्रस्तुत करता है कि यदि यह ऐसा है तो यह तर्कसम्मत नहीं है कि सम्राट् को चर्च के धर्माधिकारियों के पद पर, जो कि उसके सभासद हैं नियुक्ति से वंचित रखा जाए, तथा यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि बिशप द्वारा अभिषेक से पूर्व उनको सम्राट् द्वारा अधिकार-दण्ड एवं मुद्रा से प्रतिष्ठित किया जाए।[15]

पुनः वह तर्क करता है कि यदि पोप के विशिष्ट आभूषण कान्सटेन्टाइन द्वारा प्रदान किए गए थे, इसके लिए वह "कान्सटेन्टाइन के दान-पत्र" (Donation of Constantine) के एक अंश को उद्धृत करता है, तो यह और भी अधिक उपयुक्त है कि सम्राट् बिशप को मुद्रा एवं दण्ड प्रदान कर सके।[16] किन्तु वह यह स्पष्ट करने के लिए सावधान है कि "प्रतिष्ठापन" किसी आध्यात्मिक पद या अधिकार का नहीं, किन्तु केवल लौकिक सम्पदा एवं अधिकार का प्रतिनिधित्व करता है।[17] अंततः वह तर्क करता है कि एक समय था जबकि चर्च निर्धन थे अब वे समृद्ध हैं, तथा अपने अधिकार में वे सैनिक एवं सामन्तों को रखते हैं तथा वह स्थिति राजा के लिए बहुत भयावह होगी यदि वे उसके नियन्त्रण में न रहें; इसलिए चर्च के धर्माधिकारियों को जिन्हें यह अधिकार राजकीय या साम्राज्यिक सत्ता से प्राप्त है, अपनी एवं अपने सैनिकों की राजा के प्रति निष्ठा की प्रतिज्ञा करनी चाहिए।[18]

वास्तव में पोप के दल का भी एक लेखक इसी युग में था जिसकी स्थिति इस सम्बन्ध में अनम्य मानी जा सकती है, वह था ल्यूका का बिशप रेंगेरियस (Rangerius, Bishop of Lucca)। अपने छन्दोबद्ध ग्रन्थ 'De Anulo et Baculo' में वह मानता है कि धर्म-दण्ड एवं मुद्रा पवित्र प्रतीक हैं जिनको एक साधारण व्यक्ति के हाथों से स्वीकार नहीं करना चाहिए, वह अपने विचार के अनुसार उनके आध्यात्मिक महत्त्व का वर्णन करता है। उसके अनुसार मुद्रा बिशप एवं चर्च के संगम का प्रतीक है तथा दण्ड अनुशासनात्मक पादरी के पद का।[19] दूसरे स्थान पर इन व्याख्याओं को प्रस्तुत करने के बाद, वह इसे अस्वीकार करता है कि ये औपचारिक रूप से राजाओं द्वारा दिए गए हैं। वह मानता है कि पादरी का दण्ड कदापि तलवार के अधीन नहीं हो सकता, अतः वह बिशप द्वारा राजा के प्रति शपथ ग्रहण का प्रबल विरोध करता है, तथा इस मान्यता का खण्डन करता है कि चर्च की भौतिक सम्पदा राजा को उसके ऊपर कोई अधिकार प्रदान करती है क्योंकि ये ईश्वर को दी गई थीं तथा पुनः माँगी जा सकती हैं।[20] पुनः वह कान्सेटन्टाइन के "दान-पत्र" का और पोप को उसके द्वारा प्रदान किए गए महान् सम्मान एवं उपहारों का उल्लेख करता है। किन्तु दृढ़तापूर्वक यह अस्वीकार करता है कि इनके कारण पोप को उसकी आध्यात्मिक सत्ता मिली है, जो कि, जैसा वह मानता है, पहले से ही उसके पास थी।[21]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रेंगेरियस पूर्णतया मुद्रा एवं दण्ड से "प्रतिष्ठापन" के बारे में अनम्य है तथा चर्च की भौतिक सम्पदा के बारे में उसका दृष्टिकोण संराधक नहीं है।

अब यदि हम उन लेखकों के अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को जिन पर हम अभी विचार कर आए हैं एकत्रित करने का प्रयत्न करें तो यह कहना तर्कसंगत प्रतीत होगा

Scanned by CamScanner

कि समग्र रूप से वे एक मध्यस्थ प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं, अथवा कम से कम वाद-विषयक प्रश्नों के प्रति स्पष्टतर बोध का परिचय देते हैं। ईवो यद्यपि अधिकांशतः पोप के दल का समर्थक है तथापि वह दूसरे दल से इस बात में सहमत है कि राजा का धार्मिक पदों की नियुक्ति में अवश्य कोई अधिकार है, जबकि फ्ल्यूरी का ह्यू मानता है कि दण्ड एवं मुद्रा से "प्रतिष्ठापन" की विधि छोड देनी चाहिए, तथा 'ट्रेक्टेटस' का स्पष्टतः रचयिता भी इससे सहमत है कि वैसा ही करना चाहिए। केवल केटीनो का ग्रेगोरी यह मानता है कि इसे बनाए रखना चाहिए, वह चर्च के अध्यक्ष के रूप में राजा की स्थिति के बारे में एक सिद्धान्त प्रचलित करता है जिस पर हम बाद में विचार करेंगे किन्तु वह भी इससे सहमत है कि "प्रतिष्ठापन" किसी आध्यात्मिक शक्ति का प्रतिनिधित्व नहीं करता, किन्तु उसका सम्बन्ध केवल भौतिक धन-सम्पत्ति से है। वास्तव में यह स्पष्ट है कि लौकिक दावे के समर्थक इस बात से अधिकाधिक परिचित होते जा रहे थे कि उच्चतर पादरियों के पद के राजनैतिक महत्त्व पर ही यह दावा निर्भर था और यह केटीनो के ग्रेगोरी तथा "ट्रेक्टेटस" द्वारा भली-भाँति व्यक्त किया गया है।

सन्दर्भ

1. Ivo of Chartres, 'Epistola ad Hugonem', Lib. De Lite', vol. ii.
2. Id. id.
3. Ivo of Chartres, 'Ep'., ad. Iosceranum, 'Lib. De Lite', vol. ii.
4. Id. id.
5. Iosceranni, "Responsio", 'Lib. De Lite', vol. ii.
6. Hugh of Fleury, 'Tractatus de Regia Potestate et Sacerdotali Dignitate',15.
7. Cf. 'Lib. De Lite', vol. ii. p. 495.
8. Cf. Gerson Peiser, 'Der deutsche Investiturstreit unter Konig Heinrich V'.
9. Tractatus de Investitura Episcoporum', 'Lib. De Lite', p. 498.
10. Id. id., p. 499, 501.
11. Id. id., p. 501.
12. Id. id., p. 502.
13. Cf, vol. iii, p. 122.
14. Gregory of Catino, 'Orthodoxa Defensio Imperialis', 2.
15. Id. id., 3.
16. Id. id., 4.
17. Id. id., 5.
18. Id. id., 7.
19. Rangerius, 'Liber de Anulo et Baculo', 'Lib. De Anulo et Baculo', 'Lib. De Lite', vol. ii, p. 509.
20. Id. id., 860.
21. Id. id., 1107.

Scanned by CamScanner

पंचम अध्याय

पैस्कल द्वितीय तथा हेनरी पंचम

अब हमें "प्रतिष्ठापन" विवाद के निश्चित समझौते के प्रथम प्रयत्न के इतिहास एवं स्वरूप पर विचार करना चाहिए, जो वास्तव में अपनी निर्भीकता एवं साहस के कारण आश्चर्यजनक था। क्योंकि पैस्कल द्वितीय द्वारा "पद-चिह्न" अर्थात् विशेषकर बिशपों एवं मठाध्यक्ष के पद की सम्पूर्ण अर्ध-राजनैतिक स्थिति एवं विशेषाधिकारों के समर्पण का प्रस्ताव, पोप की ओर से अपने अधिकार में विद्यमान भौतिक सत्ता को सौंप कर चर्च की आध्यात्मिक स्वतंत्रता को प्राप्त करने के निश्चित प्रयत्न का प्रतिनिधित्व करता है।

इन वर्षों के जटिल इतिहास का विवेचन करने से पूर्व, यह देखना उपयुक्त होगा कि फ्रांस एवं इंगलैंड में पोप एवं लौकिक सत्ताएँ बिशपों की नियुक्ति के प्रश्न पर एक निश्चित समझौते तक पहुँचने में समर्थ हो गयीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि फ्रांस में पोप द्वारा "प्रतिष्ठापन" का निषेध धीरे-धीरे स्वीकार कर लिया गया तथा सिद्धान्त रूप में निर्वाचन का अधिकार स्वीकृत हो गया, यद्यपि यह भी स्पष्ट है कि स्वीकृति या संतुष्टि का अधिकार राजा ने नहीं छोड़ा।[1]

इंगलैंड में एन्सलम ने विलियम रूफस की मृत्यु के पश्चात् 1100 ई० में लौट कर "प्रतिष्ठापन" एवं राजा के प्रति समादर प्रश्न पर दृढ रुख अपनाया, उसने समादर प्रदान करने से अस्वीकार कर दिया तथा उन बिशपों का अभिषेक करना अस्वीकार कर दिया जिन्होंने राजा से मुद्रा एवं धर्म-दण्ड द्वारा "प्रतिष्ठापन" प्राप्त किया था। उसे पुनः 1103 ई० में इंगलैंड छोड़ना पड़ा, किन्तु उसके हेनरी प्रथम से सम्बन्ध कभी भी विच्छिन्न नहीं हुए तथा अंततः एक समझौता हो गया यद्यपि हम उसके समस्त विवरण के बारे में निश्चित नहीं हो सकते।[2]

एक वक्तव्य, जिसके बारे में हम निस्संदेह पूर्ण विश्वास रख सकते हैं एन्सलम का है, पोप पैस्कल को लिखे गए एक पत्र में जिसमें वह सूचना देता है कि राजा ने अपने "चर्चों के प्रतिष्ठापन" के स्वत्व को परित्याग दिया है तथा राजा "In personis eligendis nullaten propria utitur voluntate, sed religiosorum se penitus ommittit consilio"[3]

Scanned by CamScanner

इडमर (Eadmer) 1107 ई० की लन्दन की परिषद् में हुए समझौते के बारे में दो विवरण देता है; "हिस्टोरिया नोवोरूम" (Historia Novorum) में वह सूचित करता है कि राजा ने औपचारिक रूप से मुद्रा एवं दण्ड द्वारा प्रतिष्ठापन को त्याग दिया है, तथा एन्सलम ने यह वादा किया है कि किसी को भी इस कारण अपने गौरव से वंचित नहीं किया जाएगा कि उसने राजा को समादर प्रदान किया है। अपने एन्सलम के जीवन-चरित्र में वह लिखता है—Rex enim, ante-cessorum suorum usu relicto, nec personas quae in regiment ecclesiarum sumebantur per se elegit, nec eas per dationem virgae pastoralis ecclesils quibus praeficibantur investivit,[4]

चुनाव के बारे में यह वक्तव्य स्पेलमेन (Spelman)[5] द्वारा उद्धृत क्रायलेण्ड की हस्तलिखित प्रति (Croyland MSS) से पुष्ट होता है, किन्तु मल्मसबरी[6] के विलियम तथा ह्यूग केन्टर[7] (Huge Cantor) द्वारा इसका पूर्णतया खण्डन किया गया है।

एन्सलम तथा हेनरी के बीच हुए समझौते की शर्तों के बारे में इसके सिवाय कि हेनरी ने मुद्रा एवं दण्ड द्वारा "प्रतिस्टापन" करने का दावा छोड़ दिया था, निश्चिततापूर्वक नहीं कहा जा सकता, जबकि जैसा एन्सलम के पत्र से प्रतीत होता है, राजा ने चुनावों में स्वेच्छ या हस्तक्षेप से विरत होना स्वीकार कर लिया,तथा जैसा 1106 ई० में एन्सलम को लिखे गए पत्र से विदित होता है पैस्कल द्वितीय ने अनिच्छा से इस सुविधा के अस्थायी होने की आशा करते हुए, अनुमति दे दी कि बिशप राजा के प्रति समादर कर सकते हैं।[8]

हेनरी चतुर्थ की 1106 ई० में मृत्यु होने के बाद उसके पुत्र हेनरी पंचम ने जो अभी तक पिता के विरुद्ध पोप के दल के साथ था, बिशप पद पर नियुक्तियाँ करने तथा संभवतः उनको "प्रतिष्ठापन" प्रदान करने की प्रथा पुनः प्रारम्भ कर दी। पोप पैस्कल द्वितीय ने जो 1099 ई० में अरबन द्वितीय का उत्तराधिकारी बना, ग्रेगोरी सप्तम तथा अरबन द्वितीय की नीति बनाए रखी, तथा समय-समय पर अयाजक "प्रतिष्ठापन" के निषेध को दोहराया। इसलिए इस महान् विवाद का कोई समझौता नहीं हुआ, किन्तु हेनरी के पदारोहण के बाद एक गोष्ठी की व्यवस्था करने के प्रयत्न हुए ताकि इन विषयों पर विचार किया जाए तथा संभव हो तो किसी हल को ढूंढा जाय।[9]

हम इन वर्षों में घटित होने वाली घटनाओं अथवा समझौता-वार्ता का विस्तार से अध्ययन नहीं कर सकते, किन्तु हमें उनकी कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण अवस्थाओं को देखना चाहिए। अक्टूबर 1106 ई० की ग्वासटैल्ला (Guastalla) की परिषद् में पैस्कल द्वितीय ने अयाजक-"प्रतिष्ठापन" के निषेध को दोहराया, परन्तु साथ ही हेनरी पंचम के प्रतिनिधियों के साथ यह भी निश्चित किया कि वह शीघ्र ही जर्मनी आयेगा।[10] परन्तु जैसा जीनबर्ट ने अपने इतिवृत्त (क्रॉनिकल) में संकेत किया है यह देखकर कि राजा एवं जर्मनी का दृष्टिकोण अनिश्चित है, वह फ्रांस की ओर चला गया। हेनरी जर्मनी से सम्बद्ध "प्रतिष्ठापन" के विषय में जर्मनी क्षेत्र के बाहर हुई परिषद् में औपचारिक विचार पर सहमत नहीं हुआ।[11] किन्तु शीघ्र ही मई 1107 ई० में शालों (Chalons) में एक अनौपचारिक भेंट हुई, तथा इस भेंट में, जिसका पर्याप्त रूप से विस्तृत विवरण एबट जुगर (Abbot Suger) ने प्रस्तुत किया है, ट्रीर के आर्चबिशप द्वारा राजकीय दावे का एक वक्तव्य

Scanned by CamScanner

प्रस्तुत किया जो कि बहुत उल्लेखनीय है। उसने बताया कि ग्रेगोरी महान् के युग से ही यह साम्राज्य का कानूनी अधिकार रहा है कि चुनाव का निम्न प्रकार अपनाया जाए। औपचारिक चुनाव से पूर्व जिस व्यक्ति का नाम प्रस्तावित करना है उसके बारे में राजा की अनुमति ले ली जाए, फिर औपचारिक चुनाव जनता की माँग, पादरियों द्वारा निर्वाचन, तथा सम्माननीय जन (Honoratiores) की स्वीकृति से हो। अभिषेक के बाद बिशप सम्राट् के पास जाए जो मुद्रा तथा दण्ड द्वारा उसे "पद-चिह्न" से प्रतिष्ठित करें, तथा वह उसके प्रति समादर तथा निष्ठा प्रदान करे। किसी भी दूसरी स्थिति में उसको नगरों, दुर्गों आदि का स्वामित्व न मिले, जो कि राजकीय सत्ता की सम्पत्ति है। उसने कहा कि यदि पोप इससे सहमत हो तो साम्राज्य एवं चर्च में शान्ति स्थापित हो जाएगी।[12]

हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि जुगर के वर्णन का प्रत्येक अंश सत्य है, किन्तु इसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि सार रूप में यह सत्य है, तथा उस स्थिति में इसका बड़ा महत्त्व है, क्योंकि ये प्रस्ताव हेनरी पंचम की ओर से समझौते की दिशा में वास्तविक प्रगति के सूचक हैं। इस वक्तव्य में दो बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं : पहली, तो यह कि राजा नियुक्ति का अधिकार नहीं वरन् चुनाव से पूर्व राय लिए जाने तथा निषेधाधिकार के अधिकार माँगता है, दूसरा, जबकि हेनरी दण्ड एवं मुद्रा से प्रतिष्ठित करने का स्वत्व बनाए रखता है यह अभिषेक के बाद होगा पूर्व नहीं तथा इसका सम्बन्ध निश्चित रूप से धर्माध्यक्षीय पद की सामान्य प्रकृति से न होकर केवल "पद-चिह्न" प्रदान करने से है।

जुगर के वर्णन से प्रतीत होता है कि तत्काल तो राजकीय प्रस्तावों पर गंभीर ध्यान नहीं दिया गया। वह पीयासेन्जा (Piacenza) के बिशप को पोप के नाम पर यह कहता हुआ बताता है कि यदि चर्च राजा की राय के बिना बिशप को नहीं चुन सकता, तो यह चर्च को दास बना देने के समान होगा—राजा के द्वारा मुद्रा एवं दण्ड से प्रतिष्ठापन दैवी अधिकारों का अतिक्रमण तथा निष्ठा का समारोह बिशप की गरिमा के विपरीत था। जुगर कहता है कि जर्मनों ने यह वक्तव्य अत्यन्त अरुचिपूर्वक सुना, और धमकी दी कि झगड़े का निपटारा "यहाँ नहीं अपितु रोम में तलवारों से होगा"।[13]

मई के अन्त में पैस्कल ने ट्रोयेज (Troyes) में एक परिषद् बुलाई तथा वहाँ बिशप के स्वतन्त्र चुनाव के बारे में आज्ञप्ति प्रवर्तित की, तथा धार्मिक नियुक्तियों में जनसाधारण के हस्तक्षेप की निन्दा की।[14] किन्तु उसी समय यह तय किया गया कि हेनरी पंचम अगले वर्ष इटली आए तथा सारे प्रश्न पर एक सामान्य सभा में विचार किया जाए।[15] यह व्यवस्था भंग हो गई, किन्तु पोप एवं हेनरी के बीच बातचीत चलती रही, तथा डॉ. पाइज़र (Dr. Peiser) की राय में "Tractatus de Investitura" ग्रन्थ जिस पर हम पिछले अध्याय में विचार कर आए हैं इसी युग का है, तथा राजकीय पक्ष द्वारा समझौते की दिशा में एक निश्चित प्रगति का प्रतीक है।[16] 1109 ई० में हेनरी ने महत्त्वपूर्ण बिशपों का एक राज-प्रतिनिधिमण्डल पोप को अपने रोम आने के इरादे की घोषणा करने के लिए भेजा, पैस्कल ने दूतों का अच्छा स्वागत किया, तथा "पेडरबार्न के वर्णन" (Annals of Paderborn) के अनुसार उनको विश्वास दिलाया कि वह धर्मविधि सम्मत एवं धार्मिक अधिकारों के अतिरिक्त कोई माँग नहीं करेगा तथा किसी भी प्रकार से राजा के

Scanned by CamScanner

अधिकारों को कम करने का कोई भी प्रयत्न नहीं करेगा।[17]

1110 ई० के अगस्त में हेनरी पंचम ने एक विशाल सेना लेकर इटली को प्रस्थान किया तथा वर्ष के अन्त तक वह ऐरेजो (Arezzo) आ पहुँचा, तथा वहाँ से ही पैस्कल से पत्र-व्यवहार करने लगा; एक्वापेन्ते (Acqupendente) से उसने पुनः दूत भेजे, जो पोप के प्रतिनिधियों के साथ सुत्री (Sutri) में उसके पास लौट आए।

इसके बाद उनमें होने वाली समझौते की वार्ता के प्रमुख विषयों को समझाने के लिए एक्कहार्ड द्वारा उनका अपने "क्रानिकल" में दिया हुआ संक्षिप्त विवरण उपयोगी होगा। पोप के दूतों ने घोषणा की कि वह राजा का अभिषेक करने तथा उसे सभी सम्मान एवं सद्भाव प्रदान करने को प्रस्तुत हैं, यदि राजा अयाजक "प्रतिष्ठापन" को निषेध करके चर्च की स्वतंत्रता का वादा करें। उसके बदले में पोप ने वादा किया कि चर्च भी सभी रियासतें, काउन्टशिप, चुंगी आदि तथा अपने अधिकाराधीन सभी "पद-चिह्नों" को समर्पित करने के लिए तैयार है। राजा ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया किन्तु इस शर्त पर कि यह व्यवस्था "Firma et autentica ratione, consillio quoque vel concordia totius accelesiae ac regni principum assensu" स्थापित की जानी चाहिए, अर्थात् राजा चाहता था कि इस समझौते को सम्पूर्ण चर्च का अनुमोदन तथा स्वीकृति एवं साम्राज्य के सभी राजाओं की सहमति प्राप्त होनी चाहिए। एक्कहार्ड यह और कहता है कि राजा को विश्वास नहीं था कि यह प्राप्त हो सकती थी।[18]

समझौते की बातचीत एवं बाद की घटनाओं का वर्णन हमारे पास दो रूपों में है। पहला पैस्कल द्वितीय के एक समर्थक द्वारा जो कि उनका प्रत्यक्षदर्शी था, लिखा गया एक विवरण जो तथा पैस्कल द्वितीय के रजिस्टर में सम्मिलित कर लिया गया तथा फिर "एनाल्स रोमेनी" (Annales Romani) में शामिल किया गया, दूसरा हेनरी पंचम का सभी ईसाइयों को सम्बोधित एक विश्व-पत्र। इनमें केवल घटनाओं का वर्णन ही नहीं, अपितु कुछ अधिक महत्वपूर्ण दस्तावेज भी हैं जिनमें वह अधिकार पत्र भी सम्मिलित है जिसके लिए प्रयत्न किया गया था।

सबसे पहले महत्त्वपूर्ण दस्तावेज वे हैं जिनमें हेनरी पंचम तथा पैस्कल द्वितीय के पारस्परिक वादे हैं। हेनरी पंचम ने वादा किया कि "पद-चिह्न" के बारे में पोप द्वारा समझौते में स्वीकृत कार्यों को कर लेने पर वह "प्रतिष्ठापन" के बारे में सभी स्वत्वों को छोड़ देगा चर्च उन बातों और सम्पदाओं के विषय में स्वतंत्र रहेगा जो कि राज्य की नहीं थीं; तथा, वह संत पीटर की विरासत और सम्पत्ति को वैसे ही बनाए रखेगा जैसा कि चार्ल्स, लुई, हेनरी एवं अन्य सम्राटों ने किया था।[19]

पैस्कल द्वितीय ने पीटर लियोनिस (Peter Leonis) के द्वारा जो रोम का अध्यक्ष (Prefect of Rome) था यह प्रतिज्ञा की कि यदि राजा दस्तावेज में कहे गए अपने वादे को पूरा करेगा, तो पोप राजा के अभिषेक के दिन सभी उपस्थित बिशपों को आदेश देगा कि वे चार्ल्स, लुई, हेनरी तथा उनके पूर्ववर्तियों के युग में साम्राज्य के अधिकार में विद्यमान "पद-चिह्नों" को राजा और साम्राज्य को लौटा दें। उसने वादा किया कि वह लिखित रूप में "सत्ता एवं न्याय" द्वारा तथा धर्म-बहिष्करण के दण्ड के प्रावधान सहित आदेश देगा कि

Scanned by CamScanner

कोई भी उपस्थित एवं अनुपस्थित बिशप अथवा उनके उत्तराधिकारी उन पद-चिह्नों में जैसे नगर, ड्यूकों एवं काउन्टों की रियासतें आदि जिन पर साम्राज्य का स्पष्ट अधिकार था,[20] अनधिकार पूर्ण हस्तक्षेप नहीं करेगा। पीटर लियोनिस ने शपथ ली कि यदि पोप अपनी प्रतिज्ञा पूरी न करेगा तो वह राजा का साथ देगा।[21]

इन पारस्परिक प्रतिज्ञाओं से हमें एक घोषणा की तुलना करनी चाहिए जो कि हेनरी के विश्व-पत्र में सम्मिलित है। "कान्सटीट्यूशन्स" के सम्पादक ने यह सुझाव दिया है कि पैस्कल को ये घोषणाएँ अभिषेक के दिन जारी करनी थीं। इस दस्तावेज में केवल "पद-चिह्नों" को लौटाने की आज्ञप्ति की औपचारिक घोषणा ही नहीं है, अपितु उन परिस्थितियों पर एक तर्कसम्मत वक्तव्य भी है जिनके कारण पोप ने ऐसा किया। वह घोषणा करता है कि जबकि किसी भी पुरोहित को राज्य के कार्यों तथा राज्य की सभाओं में भाग नहीं लेना चाहिए तथा किसी पीड़ित व्यक्ति की सहायता करने के अतिरिक्त राज्य के न्यायालय में उपस्थित नहीं होना चाहिए, हेनरी के साम्राज्य में बिशप एवं एबट निरन्तर लौकिक कार्यों में व्यस्त रहते हैं क्योंकि उनके द्वारा राजा से नगर, रियासतें और दूसरी सम्पदाएँ स्वीकार की गई हैं जो राज्य की सेवा से सम्बन्धित हैं। इसके ही कारण वह इस प्रथा का विकास बताता है कि बिशपों का अभिषेक तबतक न हो जबतक कि वे राजा द्वारा "प्रतिष्ठापन" प्राप्त न कर लें। यह धर्म-विक्रय का तथा निर्वाचन के बिना बिशप पदों पर नियुक्ति का कारण रहा है, तथा इन्हीं दोषों के उपचार के लिए ग्रेगोरी सप्तम एवं अरबन द्वितीय ने अयाजक "प्रतिष्ठापन" की निन्दा की थी तथा वह उनके कार्य का समर्थन करता है। अतः वह आज्ञा देता है कि चार्ल्स, लुई, हेनरी तथा राजा के अन्य पूर्ववर्तियों के समय से साम्राज्य के अधिकार में विद्यमान सभी "पद-चिह्न" सौंप दिए जाएँ, और कोई भी बिशप या एबट भविष्य में राजा के किसी विशेष अनुग्रह के बिना उनका दावा न करें, तथा पोप की गद्दी पर उसका कोई भी उत्तराधिकारी इस विषय में सम्राट् या उसके राज्य को न सताए। तब वह आज्ञप्ति करता है कि अपनी बलि तथा अन्य सम्पदाओं सहित, जो स्पष्टतः साम्राज्य की सम्पत्ति नहीं है राज्यारोहण के दिन हेनरी द्वारा की गई प्रतिज्ञा के अनुसार सभी चर्च स्वतंत्र हो जाएँगे।

यह स्पष्ट है कि इन पारस्परिक प्रतिज्ञाओं में "प्रतिष्ठापन" के संघर्ष को समाप्त करने का एक ऐसे ढंग का प्रयत्न है जिसे लगभग क्रांतिकारी माना जा सकता है। हम देख सकते हैं कि यह स्वीकार किया गया है कि "प्रतिष्ठापन" का प्रश्न ऐसी परिस्थितियों के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था जो किसी सीमा तक दोनों पक्षों की माँग के औचित्य को सिद्ध करती हैं। पोप स्वीकार करता है कि यह सत्य है कि बिशपों के पास बड़ी राजनैतिक शक्तियाँ थीं, जिनके कारण यह दावा उठा कि बिशप का अभिषेक राजकीय स्वीकृति तथा "प्रतिष्ठापन" के बिना नहीं हो सकता, तथा उसकी मान्यता है कि इसके परिणामस्वरूप धर्म-विक्रय का उदय एवं बहुधा निर्वाचन की स्वतंत्रता का पूर्ण विनाश हो गया। अतः सम्पूर्ण विपत्ति के मूल को नष्ट करने के लिए पैस्कल प्रस्ताव करता है कि चर्च को "पद-चिह्नों" को त्याग देना चाहिए, जबकि इसके बदले में हेनरी ने "प्रतिष्ठापन" को त्यागने की प्रतिज्ञा की है। ये प्रस्ताव वास्तव में क्रान्तिकारी एवं दूरगामी थे। वास्तव में उनका

Scanned by CamScanner

अभिप्राय यह नहीं था कि चर्च अपनी सारी सम्पत्ति त्याग देवें वे दशमांश तथा अपनी अधिकांश भूमि रख सकते थे, या किन्तु यदि इनको व्यावहारिक रूप मिल जाता तो चर्च की राजनैतिक स्थिति पूर्णतः परिवर्तित हो जाती, निस्संदेह जर्मनी में विशेषतया, परन्तु एक बड़ी सीमा तक सभी यूरोपीय देशों में।

हेनरी पंचम का विश्व-पत्र इस समझौते की बातचीत एवं बाद में घटित होने वाली घटनाओं दोनों के ही सम्बन्ध में उसके आचरण के समर्थन में लिखा गया था। अतः उसे हमें सर्वप्रथम प्रस्तावों के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण को दुनियां को समझाने का हेनरी का प्रयत्न समझना चाहिए। वह अपने आपको चर्च की सेवा के लिए उत्सुक एवं उसकी न्यायोचित इच्छाओं के अनुरूप कार्य करने वाला बताते हुए उसे प्रारम्भ करता है। पैस्कल ने उसे ऐसे उपाय सुझाए जो उसके साम्राज्य को विस्तृत एवं गरिमा मंडित बनायें, किन्तु वास्तव में वह कपट पूर्वक साम्राज्य एवं चर्च की यथार्थ स्थिति को नष्ट करने का प्रयास कर रहा था। वह कहता है कि पैस्कल ने बिना किसी औपचारिक विचार (Absque omni audientia) के साम्राज्य से बिशपों और मठाध्यक्षों के उस प्रकार के "प्रतिष्ठापन" को छीनने का प्रस्ताव किया है जो चार्ल्स के समय से तीनसौ वर्षों से कुछ अधिक ही, उसके अधिकार में है। जब राजकीय दूतों ने पूछा कि उस दशा में राजकीय सत्ता का क्या होगा, क्योंकि उसके पूर्वज लगभग प्रत्येक वस्तु चर्च को प्रदान करते रहे हैं, पैस्कल ने उत्तर दिया कि राजा उन सब सम्पत्ति और "पद-चिह्नों" को ले ले या बनाए रखे जिनको कि चार्ल्स, लुई, हेनरी तथा उसके अन्य पूर्ववर्तियों ने चर्च को प्रदान किया था, तथा वे, यदि दशमांश एवं बलि-कर बने रहे तो उसीसे संतुष्ट रहेंगे। राजकीय दूतों ने उत्तर दिया कि राजा चर्चों के प्रति ऐसा दुर्व्यवहार करने तथा धर्म-द्रोह का आरोप अंगीकार करने को तैयार नहीं हैं। पोप ने विश्वास पूर्वक प्रतिज्ञा की तथा उसके प्रतिनिधियों ने उसके लिए शपथ ली, कि वह स्वयं (Cum iusticia et auctoritate) चर्च से इन वस्तुओं को लेकर राजा और साम्राज्य को हस्तांतरित कर देगा। तब राजकीय दूतों ने वादा किया कि यदि पोप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लेगा—यद्यपि वे जानते थे कि वैसा नहीं किया जा सकता—तो राजा चर्चों के "प्रतिष्ठापन" के अधिकार को सौंप देगा।[22]

सर्वप्रथम, यह स्पष्ट है कि हेनरी पंचम इसके लिए उत्सुक था कि उसे बिशपों एवं मठाधीशों को अपनी राजनैतिक स्थिति एवं सत्ता से वंचित करने के प्रस्ताव के लिए उत्तरदायी नहीं समझा जाए, परन्तु यह पोप ही था जिसकी ओर से यह प्रस्ताव आया था; तथा दूसरे वह यह विश्वास दिलाना चाहता था कि उसने कभी नहीं सोचा था कि पोप अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकेगा। जैसा कि हम देख चुके हैं, एक्कहार्ड कहता है कि राजा की स्वीकृति इसी शर्त पर दी गई थी कि पोप की प्रतिज्ञा की पुष्टि सलाहकारों द्वारा हो तथा उसे चर्च एवं साम्राज्य के राजाओं की सहमति प्राप्त हो तथा यह सम्भव प्रतीत होता है कि यही उन वाक्यांशों का अभिप्राय है जिनको जैसा हेनरी सूचित करता है पोप के वादे में दो बार दोहराया गया है, नामतः कि ऐसा (cum iusticia et auctoritate) किया जाए। जैसा हम देखेंगे कि रोमन एवं जर्मन दोनों बिशपों एवं मठाध्यक्षों

Scanned by CamScanner

के इसी विरोध को ही हेनरी इस प्रस्तावित समझौते की असफलता उत्पन्न करने वाला बताता है।

अब हम उन वास्तविक घटनाओं के विचार की ओर प्रवृत्त होते हैं जो हेनरी के रोम आगमन पर घटीं। हेनरी के विश्व-पत्र में जब वह नगर में प्रविष्ट हुआ तो उस पर कपट पूर्वक आक्रमण का वर्णन है, किन्तु वह कहता है कि अपने आप को विचलित किए बिना वह संत पीटर के फाटक तक गया तथा वहाँ यह बताने के लिए कि वह ईश्वरीय चर्च को कोई हानि नहीं पहुँचाना चाहता, उसने एक वक्तव्य जारी किया। तब उसने माँग की कि पोप अपना वचन पूरा करें, जैसा उसकी प्रतिज्ञा में निहित है–cum iusticia et auctoritate. जब पोप ने अपने वचन को लागू करने का प्रयत्न किया तो उसके सामने ही जर्मन एवं रोमन बिशपों, मठाध्यक्षों तथा सभी चर्च पुत्रों ने उसका विरोध किया तथा उसकी घोषणा को धर्म-विद्रोह कह कर उसकी निन्दा की।[23]

दुर्भाग्य से हेनरी का विश्व-पत्र इसी बिन्दु पर विच्छिन्न है। एक्कहार्ड का वर्णन जो मुख्यतया किसी स्कॉटलैण्डवासी डेविड (David the Scot) के द्वारा रचित विवरण पर आधारित है, जिसे हेनरी अपने साथ लाया था[24] पोप के प्रस्तावों पर राजाओं के उपद्रवपूर्ण विरोध का वैसा ही वर्णन करता है, जिसके कारण चर्चों के भ्रष्ट होने तथा उसकी धर्म-वृत्ति (beneficia) की हानि होने की सम्भावना थी।[25]

रोमन विवरण में दिया गया वृत्तान्त अधिक विस्तृत है। राजा के रोम में आने, तथा पोप द्वारा संत पीटर के गिर्जा की सीढ़ियों पर उसके स्वागत करने और उसे सम्राट् घोषित करने के वर्णन के बाद इसके अनुसार वे सभी चर्च में प्रविष्ट हुए तब पोप ने हेनरी से उसके लिए "प्रतिष्ठापन" के अधिकार का त्याग एवं अन्य वादे पूरे करने को कहा, जबकि वह अपनी ओर से उसकी पूर्ति करने के लिए तैयार था जिसके लिए उसने वादा किया था। हेनरी चतुर्थ उसे तुरंत पूरा करने के बजाय अपने बिशपों एवं राजाओं के साथ चर्च के उस भाग को चला गया जो सेक्रेटिरियम (secretarium) के पास था तथा उनके साथ वहाँ विचार करने लगा। अंत में एक दीर्घ विलम्ब के बाद जर्मन बिशप लौट आए तथा घोषणा की कि auctoritate et iustitia लिखित समझौते की पुष्टि नहीं की जा सकती। पोप ने यह कहते हुए उत्तर दिया कि "सीजर की वस्तुएँ सीजर को ही लौटानी चाहिए" तथा जो भी ईश्वरीय सेवा में संलग्न हैं वे लौकिक विषयों में अपने को संलग्न न करें; किन्तु वे जैसा रोमन विवरण कहता है अपनी कपट-पूर्णता एवं दुराग्रह पर अड़े रहे।[26]

पोप पर आरोपित तर्कों का अभिप्राय स्पष्टतया बिशप पद के उन अधिकारों का समर्पण प्रतीत होता है जो कि इनके आध्यात्मिक पद से सम्बन्ध नहीं थे। अतः यह प्रतीत होता है कि उस समझौते का अर्थ जिसका पुष्टीकरण जर्मन बिशपों ने स्वीकार नहीं किया, उनके अनुसार "पद चिह्नों" का समर्पण था और जब वे कहते थे कि उसकी पुष्टि नहीं हो सकती तब उनका अभिप्राय था कि उसके लिए चर्च की सहमति आवश्यक थी एवं वह प्रदान नहीं की जाएगी। इस प्रकार समझौते की बातचीत टूट गई और इसके बाद की घटनाओं पर हम संक्षिप्त विचार करेंगे। यह वादविवाद सारे दिन संध्याकाल तक चलता रहा, तब पोप के मित्रों ने प्रस्ताव किया कि वह तुरन्त सम्राट् का राज्याभिषेक

Scanned by CamScanner

करें तथा आगे की बातचीत अगले सप्ताह तक के लिए स्थगित कर दी जाए। हेनरी के प्रतिनिधि इससे सहमत नहीं हुए, तथा अंत में पोप और उसके साथियों को बंदी बना लिया गया। दूसरे दिन रोमवासियों ने जर्मन सेनाओं पर प्रबल आक्रमण किया, तथा तीसरे दिन हेनरी रोम से पोप और कार्डीनलों को अपने साथ लेकर लौट गया। पोप को बंदी बनाकर रखा गया, तथा हेनरी ने माँग की कि वह औपचारिक रूप से "प्रतिष्ठापन" के राजकीय अधिकार को स्वीकार करे, किन्तु साथ ही उसने यह भी घोषणा की कि वह अधिकार जिसका कि वह दावा कर रहा है चर्चों अथवा बिशपों के धार्मिक कर्त्तव्यों से संबद्ध नहीं किन्तु केवल "पदचिह्नों" से संबंध रखता है। अंततः पैस्कल ने रोमन क्षेत्र के विनाश, रोम नगर एवं चर्च के विनाश के कारण निरन्तर उसको किए जा रहे आवेदनों से अभिभत होकर तथा तुरन्त धर्म में फूट पड़ने की आशंका को देखकर यह कहते हुए समर्पण कर दिया कि चर्च की स्वतंत्रता के लिए वह यह कार्य करने को विवश हुआ है जो कि अपनी जीवन-रक्षा के लिए भी वह कदापि नहीं करता।[27]

समझौते की वास्तविक शर्तों को सम्मिलित करने वाले दस्तावेज रोमन विवरण एवं एक दूसरे राजकीय प्रतिवेदन में हैं। वे शर्तें, जिनके अन्तर्गत पोप की ओर से पहली बार छूट दी गई थी, बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पोप अपने घोषणा-पत्र (Priviligum) द्वारा निम्न व्यवस्थाओं की पुष्टि की प्रतिज्ञा करता है। बिशप या मठाध्यक्ष का राजा की सहमति से, धर्म-विक्रय के बिना स्वतंत्र चुनाव होगा। फिर राजा उसको दंड एवं मुद्रा द्वारा प्रतिष्ठित करेगा। बिशप अथवा मठाध्यक्ष जिसे इस प्रकार स्वतंत्र रूप से "प्रतिष्ठित" किया गया है, उस व्यक्ति द्वारा स्वतंत्र रूप से अभिषिक्त होगा जिसका कि यह अधिकार है। जिसने राजा से "प्रतिष्ठापन" प्राप्त नहीं किया है ऐसे किसी भी व्यक्ति का अभिषेक नहीं हो सकेगा चाहे उसे पादरियों तथा जनता ने चुन लिया हो। आर्चबिशपों एवं बिशपों को उन लोगों का अभिषेक करने की अनुमति है जिसको राजा द्वारा "प्रतिष्ठापन" प्राप्त है। इस प्रकार राजकीय दावे के सामने यह पूर्ण समर्पण था, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि हेनरी पंचम ने स्वतंत्र निर्वाचन के अधिकार को सिद्धान्त रूप में मान लिया था तथा अपने लिए केवल सहमति देने अथवा न देने का अधिकार सुरक्षित रखा। यह छूट औपचारिक मानी जा सकती है किन्तु महत्त्वहीन नहीं।

वास्तविक "घोषणा-पत्र" में प्रतिज्ञा की शर्तों को दोहराया गया है, किन्तु उसमें कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्धन भी हैं। उसमें कहा गया है कि "प्रतिष्ठापन" का अधिकार पैस्कल के पूर्ववर्तियों द्वारा पुराने सम्राटों को प्रदान किया गया था तथा इस प्रकार स्पष्टतया अप्रामाणिक प्रलेखों की प्रामाणिकता को स्वीकार किया गया है जिनके अनुसार पोप हेड्रियन प्रथम एवं पोप लियो तृतीय द्वारा इन अधिकारों को प्रदान किया गया था। हम पहले ही फरेरा के विडो द्वारा उनका उल्लेख देख चुके हैं।[28] तथापि इसके लिए दिया गया कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, जो नामतः यह है कि बिशपों एवं मठाध्यक्षों को "पदचिह्नों" का प्रदान इतने बड़े पैमाने में किया गया है कि साम्राज्य की सुरक्षा उन पर निर्भर है।[29] "पदचिह्नों" का साम्राज्य के लिए महत्त्व का उल्लेख उस वक्तव्य से मेल खाता है जिसे हम अभी देख चुके हैं, कि हेनरी पंचम द्वारा "प्रतिष्ठापन" अधिकार के दावे में केवल

Scanned by CamScanner

"पद-चिह्नों" का ही उल्लेख था, बिशप के आध्यात्मिक पद का नहीं।

एक्कहार्ड इन घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन करता है तथा प्रसन्नतापूर्ण अभिव्यक्ति से समापन करता है कि अंत में पृथ्वी पर ईश्वर की गरिमा एवं शान्ति प्राप्त हुई, तथा विभाजन का दीर्घ लोक-प्रवाद दूर हो गया,[30] किन्तु उसकी प्रसन्नता अपरिपक्व थी, क्योंकि पोप के इस कार्य का तुरन्त ही चर्च के एक विशाल भाग द्वारा खंडन किया गया, तथा कुछ समय में ही पैस्कल द्वितीय ने अपने द्वारा प्रदान की गई सुविधाओं का निराकरण करने के लिए अपने को विवश पाया।

सन्दर्भ

1. Cf. the excellent discussions of the subject in p. Imbert de la Tour, de France, du IX au XII Sicele, iii. 1–6.
2. I owe the reference throughout to F. Makower, 'Die Verfassung der Kirche von England', Notes 23, 24, pp. 19, 20.
3. Eadmer, 'Historia Novorum',(p. 191).
4. Spelman, 'Concilia', ii. p. 28.
5. William of Malmesbury, 'Gesta', vol. ii. p. 493.
6. Hugo Cantor, 'History of Four Bishops of York', p. 110.
7. Eadmer, 'Historia Novorum', p. 178.
8. Id. id., (p. 186), Vita Anselmi, 63.
9. इस पर डा० गर्सो पाइसे ने बहुत अच्छा शोध-लेख लिखा है जिससे मुझे बहुत सहायता मिली है। "Der Deutsche Investi turstreit unter Konig Heinrich V" Berlin, 1883.
10. Siegebert, 'Chron'., A. D. 1106.
11. Id. id., A. D. 1107.
12. Suger, 'Vita Lud. VI'. (M. G. H. : S. S., vol. xxvi. p. 50.
13. Id. id.
14. Ekkehard, 'Chronicon', 1107.
15. Id. id., 1107.
16. Cf. p. 103.
17. 'Annales Padebornenses', 1110.
18. Ekkehard, 'Chronicon', 1111.
19. M. G. H., Legum, Sect. IV., Constitutiones, vol. I., 83.
20. Id., 85.
21. Id., 86.
22. Id., 100.
23. M. G. H., Legum, Sect. IV., Constitutiones, vol. I., 100 con.
24. Ekkehard, 'Chronicon', (a) 1110.
25. Ekkehard, 'Chronicon', (a) 1111.
26. Id., 99.
27. Id. id.
28. देखें, भाग 2, अध्याय 3।
29. Id., 96. 'Privilegium Paschalis II De Investiturie'.
30. Ekkehard, 'Chronicon', (a) 1111.

Scanned by CamScanner

षष्ठ अध्याय

पैस्कल द्वितीय के कार्यों एवं प्रस्तावों पर विचार

कुछ समय के लिए तथा दबाव में आकर पैस्कल द्वितीय ने सम्राट हेनरी पंचम की माँगों के आगे आत्म-समर्पण कर दिया था तथा "प्रतिष्ठापन" के अधिकार को स्वीकार कर लिया था, किन्तु यह तात्कालिक ही था। एक वर्ष के भीतर ही समर्पण के विरुद्ध चर्च ने अपने रोष को इतने प्रबल शब्दों में व्यक्त किया कि पैस्कल द्वितीय उसे वापस लेने को स्वयं विवश हो गया।

उसके कार्य के विषय में समकालीन वाद-विवाद पर विचार करना महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उससे यह संकेत मिलता है कि समझौते का मार्ग वास्तव में बंद नहीं था तथा 'पद-चिह्न' के समर्पण पर उसके प्रस्ताव द्वारा उठाये गये या सुझाए गए विवाद पर विचार करना भी महत्त्वपूर्ण है।

उग्र-पोपवादी दल की मनोदशा का अच्छा परिचय सेगनी के ब्रूनो (Bruno of Segni) द्वारा उस समय में लिखे गये कुछ पत्रों से मिलता है। इनमें से एक में जो स्वयं पैस्कल को सम्बोधित है ब्रूनो उसके प्रति अपने प्रेम और निष्ठा को प्रतिज्ञापित करते हुए भी, उससे प्रार्थना करता है कि उसे ईसा से ज्यादा प्रेम करना चाहिए तथा वह कपट एवं हिंसा की परिस्थितियों में किए गए समझौते की निन्दा करता है। वह पैस्कल द्वारा स्वयं पहले किए गए अयाजक "प्रतिष्ठापन" के निषेध का अपने समर्थन में उल्लेख करता है तथा उसे पोप की आज्ञा से संगत बताता है तथा वह उन मनुष्यों को धर्मद्रोही कहकर उनकी निन्दा करता है जो रोम के चर्च की निष्ठा एवं सिद्धांतों का विरोध करते हैं।

वही दृष्टिकोण और भी प्रबलतर शब्दों में बेन्डोम के मठाध्यक्ष जियोफ्री (Geoffrey) के द्वारा पैस्कल को सम्बोधित एक पत्र में व्यक्त किया गया है जिसे हेनरी पंचम को रियायत देने के बाद तथा 1112 ई० की लेटरन परिषद् में उसके प्रत्याहार से पूर्व लिखा

Scanned by CamScanner

गया था। वह कहता है कि चर्च श्रद्धा, पवित्रता एवं स्वतंत्रता पर ही जीवित है, किन्तु अयाजक "प्रतिष्ठापन" के प्रति उदारता इन सबको नष्ट कर देती है तथा वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि यद्यपि चर्च के धर्मगुरु की चाहे उसका चरित्र दोषयुक्त भी हो तब भी आज्ञा माननी चाहिए किन्तु यदि वह धर्मद्रोही हो जाए तो उसे धर्मगुरु नहीं मानना चाहिए।[1] यह एक अनन्य वक्तव्य है तथा बल-पूर्वक इस सत्य का दृष्टान्त प्रस्तुत करता है कि चर्च के ऐसे प्रसिद्ध अधिकारी थे जिनके इस प्रश्न पर इतने दृढ़ विचार थे कि वे चर्च की स्वतंत्रता तथा पवित्रता के लिए विनाशकारी समझी जाने वाली इस व्यवस्था को स्वीकार करने की अपेक्षा स्वयं पोप के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये तैयार थे।

यह निस्संदेह बहु प्रचलित भावना थी, तथा इसी को सम्मानपूर्वक उपस्थित करने के लिए ही पैस्कल द्वितीय बाध्य हुआ जबकि उसने हेनरी पंचम से किये गये समझौते को निरस्त कर दिया, किन्तु यह एक गम्भीर त्रुटि होगी यदि हम यह सोचें कि मध्यस्थतावादी प्रवृत्ति जिस पर हमने पाँचवें अध्याय में विचार किया, पराजित तथा अन्तर्हित हो गई थी। इसके विपरीत वह शार्त्र के ईवो के दृष्टिकोण में जीवित रही, तथा यह अधिक उल्लेखनीय है कि वह ऐसे व्यक्तियों के वाक्यों में भी अभिव्यक्त होने लगी जो "अयाजक प्रतिष्ठापन" का दृढ़निश्चयपूर्वक विरोध करने पर बल देते थे।

हम शार्त्र के ईवो की लियोन्स के आर्च बिशप आयोसेरेनुस (Ioscerranus) को सम्भवतः 1112 ई० की कौन्सिल एवं पोप द्वारा "प्रतिष्ठापन" की छूट को औपचारिक रूप से वापस करने से पूर्व लिखे गए पत्र में स्थिति पर पहले ही विचार कर चुके हैं। वह उसे स्वीकार नहीं करता था कि अयाजक "प्रतिष्ठापन" धर्मद्रोह है तथा मानता है कि उसकी अनुमति अथवा विरोध चर्च की प्रशासनिक व्यवस्था का अंग है न कि 'शाश्वत' विधि का। सम्भवतः पैस्कल के कार्यों के प्रबल विरोध का प्रभाव हम ईवो के मन पर पड़ा हुआ देख सकते हैं, वास्तव में वह अब इस मत का समर्थक प्रतीत होता है कि अच्छा हो यदि अयाजक प्रतिष्ठापन को समाप्त कर दिया जाये, किन्तु उसमें यह शर्त जोड़ देता है कि यह तभी किया जाये जबकि बिना धर्म में फूट डाले यह सम्भव हो सके।[2]

इसमें अधिक उल्लेखनीय दृष्टिकोण इस ग्रन्थ का है जो संभवतः प्रत्याहार के तुरन्त बाद लिखी गई थी। लेखक मुद्रा एवं दण्ड द्वारा "प्रतिष्ठापन" के विरुद्ध तर्कों को सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है और कहता है कि ये आध्यात्मिक वस्तुओं के प्रतीक हैं तथा राजाओं द्वारा प्रदान नहीं किये जा सकते। दूसरी ओर, वह यह स्वीकार करता प्रतीत होता है कि राजा ही "पद चिह्नों" को प्रदान कर सकता है,[3] तथा वह सुझाव देता है कि वह राजदण्ड से वैसा कर सकता है जो देश पर उसके अधिकार का प्रतीक है जिससे कि वह ड्यूक पद, काउन्ट पद और अन्य "पद-चिह्न" प्रदान करता है।[4] यह उल्लेखनीय है कि लेखक उस वास्तविक रूप को जताता है जिसके अन्तर्गत वार्म्स के समझौते द्वारा सम्राट को "पद चिह्न" प्रदान करना था।[5]

इन रियायतों तथा पैस्कल द्वितीय के प्रस्तावों द्वारा उठाए गए प्रश्नों पर सबसे उल्लेखनीय एवं सबसे विस्तृत वाद-विवाद नॉनान्तुला के प्लेसीडस (Placidus of Nonantula) के एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में मिल सकता है जो सम्भवतः 1111[6] ई० के

Scanned by CamScanner

अन्त में लिखा गया है, क्योंकि वह केवल "प्रतिष्ठापन" ही नहीं वरन् सम्पूर्ण चर्च सम्पत्ति पर विचार करता है। प्रथम दर्शन में उसका मत सबसे अधिक सीमा तक अनम्य प्रतीत होता है क्योंकि वह इसे पूर्णतः अस्वीकार करता है कि लौकिक सत्ता के दावे के पीछे वास्तव में कोई भी आधार है। किन्तु ध्यानपूर्वक परीक्षण से हमारा यह निर्णय संशोधित हो जाता है तथा-वह यह सुझाता प्रतीत होता है कि जबकि यह अयाजक "प्रतिष्ठापन" की समाप्ति चाहता है तथापि वह इस मामले में किसी मध्यमार्ग को अपनाने को अस्वीकार नहीं करता तथा चर्च सम्पदा के बारे में उसके तर्क राजकीय दावे के विपरीत न होकर पोप द्वारा "पदचिह्नों" को सौंपने के प्रस्ताव के विरुद्ध हैं।

वह वास्तव में दृढ़तापूर्वक, पैस्कल द्वारा सम्राट को "प्रतिष्ठापन" का अधिकार सौंपने का खण्डन करता है तथा माँग करता है कि उसे यह छूट अस्वीकार कर देनी चाहिए।[7] वह इसे नहीं मानता कि अभिषेक के कारण सम्राट् को बिशपों अथवा मठाध्यक्षों को नियुक्त करने का कोई अधिकार मिलता है।[8] वह इस दावे से परिचित है कि पोप हेड्रियन प्रथम ने औपचारिक रूप से "प्रतिष्ठापन" का अधिकार चार्ल्स महान् को प्रदान किया था, तथा वह स्पष्टतः इस प्रदान की प्रामाणिकता को पूर्णतया खण्डन करने की स्थिति में नहीं था यद्यपि वह उसका उल्लेख करते हुए प्रायः संदेह व्यक्त करता है। अतः वह यह तर्क करता है कि उसका कोई अन्य तथा अहानिकर अर्थ था या उसका सम्बन्ध किन्हीं तात्कालिक परिस्थितियों से था जिनके कारण वह उस समय उपयोगी रहा होगा, किन्तु इस समय उत्पन्न अनिष्ट के कारण इसे रद्द कर देना चाहिए, अथवा इसे पोप हेड्रियन द्वारा मानवीय दुर्बलताओं एवं त्रुटि के कारण प्रदान किया गया था, क्योंकि आठवीं धर्म-सभा (Eighth Synod) में पोप हेड्रियन ने स्वयं चर्च के चुनावों में लौकिक-सत्ताधारियों द्वारा हस्तक्षेप की स्पष्टतया निन्दा की है। पोप स्वयं भी जबकि उनको अधिकार प्राप्त है, "novas conder leges" उन कानूनों को नहीं बदल सकते जिन्हें ईश्वर, उसके प्रेरितिकों अथवा उनके अनुयायी आचार्यों ने स्थापित किया है।[9] अतः वह स्पष्टतापूर्वक एवं बलपूर्वक अयाजक प्रतिष्ठापन के विरोध की माँग करता है तथा वह अनेक सुपरिचत वैधानिक नियमों को उद्धृत करता है जो यह व्यवस्था करते हैं कि बिशप को धर्म-क्षेत्र के पादरी एवं जनता के द्वारा चुना जाए[10] और दूसरे स्थान पर वह यह जोड़ देता है कि बिशप का निर्वाचन पोप और उसके प्रतिनिधियों अथवा आर्च बिशपों के निर्णय पर आधारित है।[11]

अतः अब तक यह भली-भाँति प्रतीत होता है कि प्लेसीडेस पूर्णतया अनम्य था, किन्तु जब हम थोड़ा अधिक पर्यवेक्षण करते हैं तो यह विचार संशोधित हो जाता है। वह स्वाकार करता है कि उन लोगों के दावों में कुछ बल है जो यह प्रतिपादित करते हैं कि यह अविचारपूर्ण है कि सम्राट अथवा राजा को बिशप के निर्वाचन में किसी भी प्रकार के योगदान से वंचित रखा जाये, जबकि जनता को इसकी अनुमति है और वह इसकी पुष्टि करता है कि उसका यह अभिप्राय नहीं है। धर्म-क्षेत्र के अन्य लोगों के समान ही सम्राट अथवा राजाओं का इन निर्वाचनों में अपना भाग है, अर्थात् विशेषतया उन क्षेत्रों में, जिनके वे पुत्र हैं परन्तु स्वामी या अधिपति के रूप में नहीं, तथा इस अर्थ में उनको

Scanned by CamScanner

निर्वाचन की पुष्टि करनी चाहिये, उनको अपनी भौतिक तलवार से उसकी रक्षा करनी चाहिए क्योंकि यह उनका उचित कर्त्तव्य है कि जो आध्यात्मिक तलवार से भयभीत नहीं होते उनको भौतिक तलवार के आतंक द्वारा विवश करें। यह महत्त्वहीन नहीं है, यद्यपि यह वक्तव्य स्पष्टतः सावधानी से बचकर किया गया है; किन्तु प्लेसीडस इससे और भी आगे बढ़ जाता है। हम यहाँ पर चर्च की सम्पत्ति के बारे में उसके विचारों का विवरण देंगे किन्तु इसी समय हमें यह देखना चाहिए कि वह निस्संकोच यह स्वीकार करता है कि इस सम्पत्ति के स्वामित्व के साथ लौकिक सत्ता के प्रति कुछ कर्त्तव्य भी जुड़े हैं जिन्हें चर्च को पूरा करना चाहिए। वह कहता है चर्च को नजराना देना चाहिए[12] तथा राजा की और प्रकार की सेवा करनी चाहिए, जिनकी प्लेसीडस विशद रूप से व्याख्या नहीं करता, विशेषतया उन दशाओं में जबकि चर्च को सम्पत्ति प्रदान करते समय उसके द्वारा कुछ विशेष अधिकार सुरक्षित रखे गए हों।[13] वह एक स्थल पर स्वीकार करता है कि यदि राजा अपने अधिकारान्तर्गत किसी वस्तु को एक बिशप को देना चाहता है तो उचित रीति से वह उसी रूप में प्रतिष्ठापित कर सकता है जैसे कि वह दूसरे मनुष्यों को करता, किन्तु उसे मुद्रा एवं दण्ड के द्वारा वैसा नहीं करना चाहिए।[14] एक अन्य स्थल पर वह एक निश्चित प्रस्ताव करता है तथा यह आशा व्यक्त करता है कि उससे राज्य तथा याजकीय-सत्ता (sacerdotium) के बीच दृढ़ शान्ति स्थापित हो सकती है, यदि यह व्यवस्था हो जाए कि सैद्धान्तिक रूप से बिशप के निर्वाचन, प्रतिष्ठा एवं अभिषेक के बाद उसे स्वयं या अपने किसी प्रतिनिधि के द्वारा सम्राट् के पास उपस्थित होकर चर्च की उसे सौंपी गई सम्पत्ति के बारे में राजकीय निर्देश (praeceptum) प्राप्त करने चाहिए। सम्राट को तब प्रसन्नतापूर्वक अपने पूर्वजों द्वारा चर्च को प्रदत्त वस्तु का उसको प्रदान एवं पुष्टि करनी चाहिए, तथा बिशप एवं चर्च के प्रति राजकीय संरक्षण की प्रतिज्ञा करनी चाहिए।[15]

यह स्पष्ट है कि प्लेसीडस तथा 'Disputatiovel Defensio Paschalis Papae' के लेखक की स्थिति पोप की नीति के समर्थकों की ओर से समझौते की ओर वास्तविक प्रगति का प्रतिनिधित्व करती है—वास्तव में यह स्पष्ट है कि वे किसी सीमा तक फरेरा के विडो (Wido of Ferrara) जैसे मनुष्यों की मान्यताओं के प्रमुख पक्षों के महत्त्व को समझते थे।

हमें कुछ समय के लिए प्लेसीडस द्वारा चर्च की सम्पत्ति की प्रकृति के सम्पूर्ण निरूपण के बारे में विचार करने के लिए प्रवृत्त होना चाहिए। यह हमें संभव प्रतीत होता है कि मुख्यतया यह पैस्कल द्वितीय के पदचिह्नों के समर्पण सम्बन्धी प्रस्ताव इतने दूरगामी थे कि उन पर प्रकाश डालने वाली कोई भी वस्तु जिसे हम पा सकें बहुत महत्त्वपूर्ण होगी।

उस ग्रन्थ की भूमिका में जिसका हम वर्णन कर रहे हैं, प्लेसीडस कुछ ऐसे लेखकों के वाक्यांशों को उद्धृत करता है, जो लौकिक सत्ताधारियों के पक्ष से यह कहते हैं कि क्योंकि चर्च आध्यात्मिक है अतः उसकी कोई भौतिक सम्पत्ति वास्तविक चर्च-भवनों के अतिरिक्त नहीं है तथा यदि चर्च के लोग भौतिक सम्पदा चाहते हैं तो चर्च के कानूनों से उनको प्राप्त नहीं कर सकते। यदि लौकिक शासकों के उपहारों को छोड़ दें तो पादरी के पास वेदी पर लाई हुई बलि, दशमांश एवं पहली-उपज के अतिरिक्त कुछ नहीं होना

Scanned by CamScanner

चाहिए। अन्य सभी सम्पदा का स्वामित्व राजा का है अतः जो उससे बिशप पद या मठाध्यक्ष का पद प्राप्त करना चाहते हैं उनको उससे ही वे प्राप्त करने चाहिए, अथवा जो उसकी सम्पत्ति है उस पर से अधिकार समाप्त कर देना चाहिए। यदि पादरी दशमांश, पहली-उपज एवं बलि से संतुष्ट हो तो मामला उनके ही हाथों में है, किन्तु यदि वे उस सम्पत्ति को चाहते हैं जो पहले चर्च को प्रदान की गई थी तो वे उसे राजा से ही प्राप्त कर सकते हैं।

प्लेसीडस इन सभी सिद्धान्तों को सभी सच्चे केथोलिकों के लिए तिरस्करणीय बताकर उनकी निन्दा करता है, क्योंकि यह "पवित्र आत्मा" है जिसने कि चर्च को केवल आध्यात्मिक ही नहीं भौतिक वस्तुएँ भी प्रदान की हैं, तथा आग्रह करता है कि बिशपों को ईश्वर को समर्पित छोटी एवं बड़ी सभी सम्पत्ति अपने अधिकार में रखनी चाहिए। जो चर्च को प्रदत्त है वह ईसा को प्रदत्त है तथा जो उसे लूटते हैं, वे देवद्रोह के दोषी हैं। जो चर्च की सम्पत्ति है वह बिशपों के अधिकार में रहनी चाहिए जो कि किसी भौतिक सत्ता द्वारा नहीं अपितु धर्म-क्षेत्र के पादरियों एवं जनता द्वारा निर्वाचित एवं दूसरे बिशपों द्वारा पुष्टीकृत है। चर्च "नजराने" के अलावा राजा को किसी भी वस्तु का देनदार नहीं है।[16]

ये मान्यताएँ ग्रन्थ के मुख्य भाग में और अधिक विस्तृत की गई हैं। जो एक बार चर्च को दिया गया है वह स्थायी रूप से ईसा का है।[17] चर्च की भौतिक वस्तुओं को आध्यात्मिक वस्तुओं से उसके दो टुकड़े किए बिना पृथक् नहीं किया जा सकता, क्योंकि जैसे कोई भी मनुष्य शरीर के बिना जीवित नहीं रह सकता उसी प्रकार चर्च का भी भौतिक वस्तुओं के बिना संसार में अस्तित्व नहीं है।[18] वह कहता है कि कुछ लोग यह मानते हैं कि चर्च पूर्ण शाब्दिक अर्थ में केवल दशमांश, पहली-उपज एवं बलि का ही स्वामी है तथा दुर्ग, जागीर आदि जैसी अचल सम्पत्ति उसी सीमा तक उसकी हैं जहाँ तक कि बिशप ने उसको सम्राट के हाथों से प्राप्त किया है। प्लेसीडस की मान्यता है कि, यह मिथ्या है, क्योंकि जो चीज एक बार ईश्वर को सौंप दी जाए वह सदा के लिए उसी की सम्पत्ति है।[19] वह पुनः इस तर्क का उल्लेख करता है जबकि चर्च ईश्वर के लिए स्वयं दीक्षित है तथा ईश्वर एवं उसके पुरोहितों की ही सम्पत्ति है, वे वस्तुएँ जो सम्प्रति गौरवेण चर्च के स्वत्व में हैं जैसे डची, काउन्टशिप तथा नगर, इस अर्थ में सम्राट् की सम्पत्ति है, कि जब तक प्रत्येक बिशप के पदारोहण के समय उसको उनके प्रदान का नवीकरण न किया जाए तबतक वह उन्हें नहीं पा सकता तथा इससे यह भी परिणाम निकलता है, कि उसके द्वारा ही "प्रतिष्ठापन" प्रदान किया जा सकता है।[20]

प्लेसीडस इन मान्यताओं का बलपूर्वक खण्डन करता है तथा यह प्रतिपादन करता है कि कान्सटेण्टाइन के पूर्व चर्च के अधिकारान्तर्गत स्वल्प सम्पत्ति ही नहीं किन्तु उसके समय से चर्च द्वारा प्राप्त सभी महान् सम्पति पर चर्च का स्वत्व है क्योंकि वे सभी ईश्वर को समर्पित हैं;[21] तथा वह अभिषेककर्त्ता आर्चबिशप द्वारा धर्म-दण्ड को बिशप या मठाध्यक्ष को प्रदान करने के नियम की इसी रूप में व्याख्या करता है कि उसमें न केवल जनता पर शासन के ही अधिकार की अपितु ईश्वर द्वारा स्वयं चर्च के लौकिक सम्पत्ति

Scanned by CamScanner

को भी उसकी प्राप्ति हुई है।[22] दूसरा तर्क जो वह प्रस्तुत करता है, महत्त्वपूर्ण है और नामतः यह है कि चर्च की सम्पत्ति निर्धनों की सम्पत्ति है तथा पादरी आवश्यक भोजन एवं वस्त्र प्राप्त करने के प्रयोजन के अतिरिक्त व्यक्तिगत उपयोग के लिए उसका प्रयोग नहीं कर सकता तथा इसलिए वह राजा को नहीं दी जा सकती।[23]

यह सब अनम्य स्थिति का द्योतक है, किन्तु हमें उन वाक्यों को भी ध्यान में रखना चाहिए, जिन पर हम विचार कर चुके हैं, जिनमें कि प्लेसीडस उसके पूर्वजों द्वारा चर्च को सौंपी गई सम्पत्ति के बारे में सम्राट् के कुछ अधिकारों को स्वीकार करने का प्रस्ताव करता है। हम पर उसका यह प्रभाव पड़ता है कि वास्तव में उसका प्रयोजन उन सिद्धांतों का खण्डन है जो पैस्कल द्वितीय द्वारा "पदचिह्नों" के समर्पण के प्रस्तावों के पीछे रहे हों।

यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस प्रश्न पर वास्तव में कोई और तत्कालीन विवरण हमें उपलब्ध नहीं है। 1126 ई० से 1169 ई० के बीच में लिखे गए राहखर्सबर्ग के गैरहोह (Gerhoh) के ग्रन्थों में हमें इस प्रश्न पर वास्तव में बहुत महत्त्वपूर्ण विवाद उपलब्ध होता है, किन्तु कुल मिलाकर उस पर बाद में विचार करना ही हमें श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यद्यपि यह संभव है कि बिशपों द्वारा "पद-चिह्नों" के स्वत्व के लाभों पर संदेह को प्रेरित करने वाले उसके कारण उसी प्रकार के थे जैसे पैस्कल द्वितीय के, हम इस विषय में पूर्णतया आश्वस्त नहीं हो सकते। तथा किसी भी दशा में यह विषय इतना बड़ा और महत्त्वपूर्ण है कि उसके पृथक् विवेचन की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. Bruno, Bishop of Segni, 'Epistolae'.
2. Godfrey, Abbot of Vendome, Libellus I.
3. 'Desputatio vel Defensio Paschalis Papae' (Lib. De Lite', vol. ii., p. 665).
4. देखें, भाग 2, अध्याय 7।
5. Palcidus of Nonantula, 'De Honore Ecclesiae', 'Lib., De Lite', vol. ii. p. 566. Preface by Editor.
6. Id., 118.
7. Placidus of Nonantula, 'De Honore Ecclesiae', 73.
8. Id. id., Prologue.
9. Id. id., 23, 25, 26.
10. Id. id., 73.
11. Id. id., 37.
12. Id. id., Prologue, and 118.
13. Id. id., 56.
14. Id. id., 86.
15. Id. id., 93.
16. Id. id., Prologue.
17. Id. id., 7.
18. Id. id., 41.
19. Id. id., 43.
20. Id. id., 151.
21. Id. id. id.
22. Id. id., 55.
23. Id. id., 71.

Scanned by CamScanner

सप्तम अध्याय

वॉर्म्स का समझौता

"प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर समझौते का पहला प्रयत्न असफल हो गया था तथा कुछ वर्षों के लिए ऐसा प्रतीत होने लगा है कि मानो कोई भी प्रगति नहीं हुई है। मार्च 1112 ई० में लेटरैन की परिषद् में पैस्कल ने उन परिस्थितियों का वर्णन किया जिनके कारण विवश होकर वह हेनरी पंचम को रियायत देने को विवश हुआ था, तथा इसको स्पष्ट करते हुए कि वह उसे धर्म-बहिष्कृत नहीं करेगा, उसने यह परिषद् पर छोड़ दिया कि यह किस प्रकार निरस्त की जा सकती है। परिषद् के अंतिम दिन उसने ग्रेगोरी सप्तम तथा अरबन द्वितीय की घोषणाओं की परिपुष्टि की तथा परिषद् ने औपचारिक रूप से "विशेषाधिकार" (Privilegium) की निन्दा की किन्तु अधिक कृतसंकल्प चर्च के सदस्य इससे संतुष्ट नहीं थे तथा सितम्बर 1113 ई० में वियने के[1] आर्चबिशप गाइडो (Guido) ने जो कि बाद में पोप केलीक्सटस द्वितीय बना (Calixtus II), वियने (Vienne) में एक परिषद् बुलाई जिसने यह घोषणा की कि अयाजक "प्रतिष्ठापन" अपधर्म था, तथा औपचारिक रूप से हेनरी पचम को धर्म-बहिष्कृत कर दिया, तदनन्तर पैस्कल को पत्र लिखकर उससे दृढ़तापूर्वक अनुरोध किया कि इन कार्यों की पुष्टि करे तथा सूचना दी कि वैसा न करने पर वे उसकी आज्ञा न पालन करने को बाध्य होंगे।[2] स्पष्टतः पैस्कल ने इसे स्वीकार करने के लिए अपने को विवश पाया तथा गाइडो को अपने उत्तर में उसने वियने की परिषद् की कार्यवाही की संपुष्टि कर दी।[3] 1116 ई० में लेटरैन की परिषद् में पैस्कल ने पुनः घोषणा की कि हेनरी के प्रदत्त विशेषाधिकार अमान्य हैं तथा उनको धर्म-बहिष्कृत कर दिया जो अयाजक "प्रतिष्ठापन" ग्रहण अथवा प्रदान करते थे। कार्डीनल कूनो (Cardinal Kuno) ने सूचना दी कि उसने हेनरी पंचम को हंगरी, लोरेन, सेक्सोनी तथा फ्रांस की कई परिषदों में धर्म-बहिष्कृत कर दिया है।[4] एक्कहार्ड के विवरण से स्पष्ट है कि पोपवादी दल पुनः जर्मनी के बिशपों में सर्वोच्च हो गया था तथा जर्मनी में राजनैतिक अव्यवस्था पुनः द्रुतगति से बढ़ रही थी।[5]

21 जनवरी 1118 ई० को पैस्कल द्वितीय का देहावसान हो गया तथा यह स्पष्ट हो गया था कि रोम में हेनरी की 1111 ई० की सफलता केवल दिखावटी थी, तथा

Scanned by CamScanner

उस आधार पर समझौता होना असम्भव था। उसके उत्तराधिकारी के रूप में जिलेसियस द्वितीय (Gelasius II) 24 जनवरी को निर्वाचित हुआ। एक्कहार्ड के अनुसार पहले तो हेनरी पंचम ने उसकी अनुमति दे दी, किन्तु बाद में यह देखकर कि जिलेसियस ने अपने को उसकी संगति से हटा लिया है, उसने ब्रजेस के आर्चबिशप मॉरिस (Maurice) की एक नए पोप के रूप में स्थापना कर दी। जिलेसियस तथा अनेक दूसरे कार्डीनल कापुआ (Capua) लौट आए तथा 7 अप्रैल को हेनरी पंचम एवं विरोधी पोप दोनों को धर्म-बहिष्कृत कर दिया गया।[6] पोप के प्रतिनिधियों ने मई में कोलोन में एक परिषद् बुलाई तथा उसमें धर्म-बहिष्कृति की घोषणा कर दी। एक्कहार्ड सूचना देता है कि राजाओं ने वुर्ल्सबर्ग (Wurzburg) में एक सभा बुलाने का प्रस्ताव किया जिसमें हेनरी को व्यक्तिगत रूप से स्पष्टीकरण देने का अनुरोध किया जाए, अन्यथा यदि वह उपस्थित होना स्वीकार न करे तो उसे पदच्युत किया जाए।[7]

29 जनवरी 1119 ई० को जिलेसियस द्वितीय का देहावसान हुआ तथा 22 फरवरी को वियने का आर्चबिशप गाइडो (Guido) जो जैसा हम देख चुके हैं पैस्कल द्वितीय द्वारा हेनरी को दी गई रियायत का सबसे कट्टर विरोधी था, केलीक्सटस द्वितीय के रूप में पोप निर्वाचित हुआ।[8] यह निर्वाचन क्लूली (Cluny) में जहाँ कि जिलेसियस की मृत्यु हुई थी, कार्डीनलों, दूसरे रोमन पादरियों तथा जनसाधारण द्वारा किया गया, तथा तत्काल ही रोम में विद्यमान कार्डीनलों एवं जून में जर्मनी के ट्रिबुर (Tribur) नामक स्थान पर बुलाई गई परिषद् ने इसकी पुष्टि कर दी।[10] केलीक्सटस ने वसन्त ऋतु में राइम्स में एक परिषद् बुलाई तथा हेनरी पोप के साथ किसी प्रकार के समझौते की दिशा में प्रयत्न करने को विवश किया गया।

इन परिस्थितियों में "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर समझौता करने का दूसरा प्रयास किया गया, तथा इसका विस्तृत विवरण हेस्सो द्वारा दिया गया है। इसका सूत्रपात दो प्रसिद्ध फ्रांसीसी पादरियों, शांप्यू के विलियम (Champeaux) जो अब शालों का बिशप (Chalons) था, तथा क्लूनी के मठाध्यक्ष द्वारा किया गया था। वे स्ट्रासबर्ग में हेनरी पंचम के पास गए, तथा उससे बिशपों एवं मठाध्यक्षों के "प्रतिष्ठापन" के अधिकार को त्यागने की आवश्यकता पर बल दिया, किन्तु यद्यपि शांप्यू के विलियम ने कहा कि न तो अभिषेक के पूर्व न बाद ही उसने राजा के हाथ से कोई चीज प्राप्त की है। उसने उसी समय उसे यह भी विश्वास दिलाया कि वह निष्ठापूर्वक फ्रांस के राजा को उसी रूप में सैनिक सेवा तथा शुल्क प्रदान करता है जैसा कि जर्मन बिशप अपने सम्राट् को। हेनरी ने उत्तर दिया कि उसे इससे अधिक कुछ भी नहीं चाहिए, तथा उन दोनों ने शांति स्थापित करने का प्रयास करने का वादा किया।[11] इस आधार पर समझौते की बातचीत प्रारम्भ हुई, समझौते की शर्तें निश्चित की गईं तथा अस्थायी रूप से मान ली गईं, जिनकी पुष्टि केलीक्सटस तथा हेनरी की एक बैठक में होनी थी, जो 24 अक्टूबर को माउज़ों में निश्चित की गई। इन शर्तों के अन्तर्गत हेनरी को सभी चर्चों के सभी "प्रतिष्ठापनों" का अधिकार त्यागना, एवं उन लोगों के चर्चों एवं सम्पत्तियों को लौटाकर उनसे शांति करना था जो कि चर्च के पक्षधर रहे थे। इन शर्तों के बारे में यदि कोई प्रश्न उत्पन्न हो, तो यदि वह

Scanned by CamScanner

उस आधार पर समझौता होना असम्भव था। उसके उत्तराधिकारी के रूप में जिलेसियस द्वितीय (Gelasius II) 24 जनवरी को निर्वाचित हुआ। एक्कहार्ड के अनुसार पहले तो हेनरी पंचम ने उसकी अनुमति दे दी, किन्तु बाद में यह देखकर कि जिलेसियस ने अपने को उसकी संगति से हटा लिया है, उसने ब्रेजेस के आर्चबिशप मॉरिस (Maurice) की एक नए पोप के रूप में स्थापना कर दी। जिलेसियस तथा अनेक दूसरे कार्डीनल कापुआ (Capua) लौट आए तथा 7 अप्रैल को हेनरी पंचम एवं विरोधी पोप दोनों को धर्म-बहिष्कृत कर दिया गया।[6] पोप के प्रतिनिधियों ने मई में कोलोन में एक परिषद् बुलाई तथा उसमें धर्म-बहिष्कृति की घोषणा कर दी। एक्कहार्ड सूचना देता है कि राजाओं ने वुर्त्सबर्ग (Wurzburg) में एक सभा बुलाने का प्रस्ताव किया जिसमें हेनरी को व्यक्तिगत रूप से स्पष्टीकरण देने का अनुरोध किया जाए, अन्यथा यदि वह उपस्थित होना स्वीकार न करे तो उसे पदच्युत किया जाए।[7]

29 जनवरी 1119 ई० को जिलेसियस द्वितीय का देहावसान हुआ तथा 22 फरवरी को वियने का आर्चबिशप गाइडो (Guido) जो जैसा हम देख चुके हैं पैस्कल द्वितीय द्वारा हेनरी को दी गई रियायत का सबसे कट्टर विरोधी था, केलीक्सटस द्वितीय के रूप में पोप निर्वाचित हुआ।[8] यह निर्वाचन क्लूनी (Cluny) में जहाँ कि जिलेसियस की मृत्यु हुई थी, कार्डीनलों, दूसरे रोमन पादरियों तथा जनसाधारण द्वारा किया गया, तथा तत्काल ही रोम में विद्यमान कार्डीनलों एवं जून में जर्मनी के ट्रिबुर (Tribur) नामक स्थान पर बुलाई गई परिषद् ने इसकी पुष्टि कर दी।[10] केलीक्सटस ने वसन्त ऋतु में राइम्स में एक परिषद् बुलाई तथा हेनरी पोप के साथ किसी प्रकार के समझौते की दिशा में प्रयत्न करने को विवश किया गया।

इन परिस्थितियों में "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर समझौता करने का दूसरा प्रयास किया गया, तथा इसका विस्तृत विवरण हेस्सो द्वारा दिया गया है। इसका सूत्रपात दो प्रसिद्ध फ्रांसीसी पादरियों, शांप्यू के विलियम (Champeaux) जो अब शालों का विशप (Chalons) था, तथा क्लूनी के मठाध्यक्ष द्वारा किया गया था। वे स्ट्रासबर्ग में हेनरी पंचम के पास गए, तथा उससे बिशपों एवं मठाध्यक्षों के "प्रतिष्ठापन" के अधिकार को त्यागने की आवश्यकता पर बल दिया, किन्तु यद्यपि शांप्यू के विलियम ने कहा कि न तो अभिषेक के पूर्व न बाद ही उसने राजा के हाथ से कोई चीज प्राप्त की है। उसने उसी समय उसे यह भी विश्वास दिलाया कि वह निष्ठापूर्वक फ्रांस के राजा को उसी रूप में सैनिक सेवा तथा शुल्क प्रदान करता है जैसा कि जर्मन बिशप अपने सम्राट् को। हेनरी ने उत्तर दिया कि उसे इससे अधिक कुछ भी नहीं चाहिए, तथा उन दोनों ने शांति स्थापित करने का प्रयास करने का वादा किया।[11] इस आधार पर समझौते की बातचीत प्रारम्भ हुई, समझौते की शर्तें निश्चित की गईं तथा अस्थायी रूप से मान ली गई, जिनकी पुष्टि केली-क्सटस तथा हेनरी की एक बैठक में होनी थी, जो 24 अक्टूबर को माउजों में निश्चित की गई। इन शर्तों के अन्तर्गत हेनरी को सभी चर्चों के सभी "प्रतिष्ठापनों" का अधिकार त्यागना, एवं उन लोगों के चर्चों एवं सम्पत्तियों को लौटाकर उनसे शांति करना था जो कि चर्च के पक्षधर रहे थे। इन शर्तों के बारे में यदि कोई प्रश्न उत्पन्न हो, तो यदि वह

Scanned by CamScanner

धार्मिक वस्तुओं से सम्बन्धित हो तो धार्मिक निर्णयों के द्वारा यदि लौकिक हो तो लौकिक निर्णयों द्वारा निश्चित होना था। पोप ने भी सम्राट् की ही भाँति हेनरी एवं उसके समर्थकों से शांति रखने एवं उनकी संपत्ति उन्हीं शर्तों के अन्तर्गत जैसी सम्राट ने मानी थीं लौटाने की प्रतिज्ञा की।[12] एक क्षण के लिए ऐसा प्रतीत होने लगा कि समझौता हो गया है, किन्तु यह स्पष्ट है कि या तो प्रयोग किए गए शब्दों के अभिप्राय के बारे में कोई भ्रम था, या विचार करने पर सम्राट् को विश्वास हो गया कि वह बहुत अधिक समर्पण कर रहा है।

केलीक्सटस द्वितीय 18 अक्टूबर को राइम्स पहुँचा, तथा उसने अस्थायी रूप से परिषद् का उद्घाटन किया, जिसमें फ्रांस का राजा और मठाध्यक्षों के अतिरिक्त दो सौ पन्द्रह बिशप एवं आर्चबिशप उपस्थित थे। वह 23 अक्टूबर को माउजों के लिए रवाना हो गया, तथा हेनरी पंचम ने भी निकट ही शिविर स्थापित किया। उनकी भेंट से पूर्व ही, पोप के दल में हेनरी द्वारा स्वीकार की जाने वाली शब्दावली के बारे में संदेह उठ चुके थे। इनमें कहा गया था कि हेनरी को सभी चर्चों के सभी "प्रतिष्ठापनों" को त्याग देना था, किन्तु यह सुझाया गया कि यह शब्दावली द्वयर्थक है तथा इसकी व्याख्या की आवश्यकता है, ताकि इसका आश्रय लेकर वह चर्चों की सम्पत्ति पर दावा न कर सके अथवा इस प्रकार की सम्पत्ति द्वारा प्रतिष्ठापित करने के अधिकार का दावा न कर सके। यह भी आग्रह किया गया कि पोप की प्रतिज्ञा का अभिप्राय यह समझा जा सकता है कि वह साम्राज्यिक दल के उन सभी बिशपों को मान्यता देता है जो उन बिशप पदों पर भी थोपे गए थे जिन पर पहले से ही वैधानिक बिशप आसीन थे, या जिनको धर्मविधि के अनुसार पदच्युत किया जा चुका था। शांप्यू का विलियम, क्लूनी के मठाध्यक्ष, ऑस्टिया के कार्डीनल बिशप, (Cardinal Bishop of Ostia) वीविये के बिशप (Bishop of Viviers) तथा दूसरे पोप के दूत सम्राट् के पास भेजे गए तथा उन्होंने समझौते का प्रारूप का अर्थ पोप के समर्थकों ने जिस रूप में समझा था उस प्रकार प्रस्तुत करने का कार्यारम्भ किया। सम्राट् ने पहले तो साफ मना कर दिया कि उसने इनमें से किसी भी चीज की प्रतिज्ञा की थी। शांप्यू के विलियम ने घोषणा की कि वह शपथ लेकर कह सकता है कि सम्राट् ने इन सब बातों को स्वीकार किया था, तथा उसने सम्राट् के कथन का यही अभिप्राय समझा था। अंततः जब सम्राट् यह स्वीकार करने को विवश हो गया कि यह सत्य है, तो उसने शिकायत की कि उसने उनकी राय से जो प्रतिज्ञाएँ की हैं उनका पालन साम्राज्य को गंभीर हानि पहुँचाए बिना नहीं किया जा सकता। शांप्यू के विलियम ने उत्तर देते हुए उसे विश्वास दिलाया कि पोप साम्राज्य की सत्ता को कम नहीं करना चाहता, तथा उसने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि बिशप सम्राट् की सैनिक एवं अन्य सेवाएँ उसी प्रकार करते रहेंगे जैसे कि वे करते आए हैं।[13] हेनरी ने तब एक दिन की अवधि माँगी ताकि वह राजाओं से राय ले ले किन्तु जब पोप के दूत दूसरे दिन पहुँचे तो उसने निर्णय उस समय तक के लिए फिर निलम्बित करने की प्रार्थना की जबतक कि वह साम्राज्य के राजाओं से सामान्य राय ले सके, जिनकी स्वीकृति के बिना वह "प्रतिष्ठापन" का अधिकार समर्पित नहीं कर सकता। शांप्यू के विलियम ने रोष

Scanned by CamScanner

पूर्वक समझौते की वार्ता भंग कर दी, तथा पोप राइम्स को लौट आया, तथा कुछ दिनों बाद 29 अक्टूबर को, उसने कुछ आज्ञप्तियाँ घोषित की जिनके लिए वह परिषद् की स्वीकृति चाहता था।

किन्तु परिषद् में तुरन्त इस पर गंभीर मतभेद हो गया। पोप के द्वारा प्रस्तावित द्वितीय घोषणा की शब्दावली इस प्रकार थी। "Investituram omnium ecclesiarum et ecclesiasticarum possessionum per manum laicam fieri modis monibus prohibemus."

किन्तु जनसाधारण की ओर से और यहाँ तक कि कुछ पादरियों की ओर से भी इसका इतना अधिक विरोध किया गया कि सारे दिन बहस चलती रही। यह माना गया कि इन शर्तों के अन्तर्गत पोप दशमांश एवं दूसरे गिरजे से सम्बन्धित "लाभों" को समाप्त करना चाहता है जो कि अयाजक-वर्ग के पास प्राचीनकाल से थे। इसका विरोध इतना दृढ़ था कि दूसरे दिन पोप ने इस घोषणा को दूसरे रूप में प्रस्तुत किया। "Episcopatnum et abbatiarum investituram per manum laicam fieri penitus prohibemus. Quicunque igitur laicorum deinceps investire presumpserit, anathematis ultioni subiaceat. Porro, pui investitus furit, qonore, quo investitus est, absque ulla recuperationis spe omnimodis careat."

इस रूप में आज्ञप्ति एकमत से स्वीकृत हो गई, तथा एक अन्य आज्ञप्ति के द्वारा गिरजाघरों का उन सब सम्पत्तियों पर अधिकार पुष्ट कर दिया गया जो राजाओं एवं दूसरे ईसाई लोगों ने उनको प्रदान की थी, तथा जो भी उनको छीनने का प्रयत्न करेंगे उन्हें अभिशप्त कर दिया गया।[14]

कुछ समय के लिए समझौते का प्रयास विफल हो गया, किन्तु यह देखना महत्त्वपूर्ण होगा कि हैस्सो के वर्णन से विदित होने वाले विफलता के कारण एवं परिस्थितियाँ क्या थीं। शांप्यू के विलियम तथा क्लूनी के मठाध्यक्ष ने "प्रतिष्ठापन" के अधिकार के पूर्ण समर्पण का प्रस्ताव किया तथा सम्राट् को विश्वास दिलाया था कि इससे बिशपों या मठाध्यक्षों के राजनैतिक दायित्वों में कोई अन्तर नहीं आएगा। हेनरी ने प्रस्ताव को इस रूप में स्वीकार कर लिया कि वह गिरजाघरों से "प्रतिष्ठापित" करने के अधिकार को समर्पित करता है। पोप के सलाहकारों को इस पर संदेह हुआ कि उसका अभिप्राय यह भी हो सकता है कि चर्च की लौकिक सम्पत्ति एवं उसके प्रदान के बारे में समाट् ने अपना स्वत्व सुरक्षित रखा है, तथा इस वाक्य की व्याख्या की आवश्यकता पर बल दिया। हैस्सो यह नहीं बताता कि शांप्यू के विलियम तथा उसके सहयोगियों ने निश्चित रूप से क्या अर्थ-निर्णय हेनरी को बताया, वह केवल यही कहता है कि हेनरी ने उसे अस्वीकार कर दिया; किन्तु हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि व्यवस्था के अन्तर्गत प्रतिष्ठापित करने के सभी स्वत्वों का यहाँ तक कि लौकिक सम्पदाओं के सम्बन्ध में भी, समर्थन था। हेनरी ने इसकी संपुष्टि करना अस्वीकार कर दिया तथा यह तर्क दिया कि ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर उसे सम्पूर्ण राजाओं की सभा की सम्मति लेना आवश्यक है। यदि घटनाओं का यह विवरण सत्य

Scanned by CamScanner

है, तो यह प्रतीत होगा कि यद्यपि समझौता वार्ता असफल हुई तथापि यह तथ्य भी प्रकाश में आया कि सम्राट् लौकिक "प्रतिष्ठापन" एवं धार्मिक "प्रतिष्ठापन" में विभेद करने को तैयार है, वह विभेद जिस पर इस विषय के अनेक लेखकों ने, जैसा कि हम देख चुके हैं, बल दिया था। हैस्सो का विवरण इससे भी आगे बढ़ जाता है, क्योंकि वह यह भी बताता है कि पोप के अनुयायियों में गहरा मतभेद था। यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि केलीक्सटस को उस ढाँचे को बदलना पड़ा था जिसमें कि उसने अपनी "प्रतिष्ठापन" विषयक घोषणा का राइम्स की परिषद् में प्रस्ताव किया था। इस प्रस्तावित प्रथम रूप में स्पष्टतया उसका सम्बन्ध केवल चर्चों के ही अयाजक "प्रतिष्ठापन" से नहीं अपितु चर्चों की सम्पत्ति से भी था, किन्तु उसके विरुद्ध पादरियों एवं अयाजक-वर्ग की भी भावना इतनी प्रबल थी कि उसे वापस लेना पड़ा, तथा घोषणा ऐसे रूप में स्वीकार करनी पड़ी थी कि प्रश्न अनिश्चित ही बना रहा। सम्भवतः हमारा निष्कर्ष ठीक ही है कि पोप के क्षेत्र में भी लौकिक एवं धार्मिक "प्रतिष्ठापन" में विभेद के महत्त्व को स्वीकार किया जाने लगा था।

कुछ समय के लिए यद्यपि समझौते का प्रयास विफल हो गया था, तथापि विफलता की परिस्थितियाँ इस प्रकार की थीं कि जैसा हम देख सकते हैं, जो उन शर्तों पर समझौते की संभावना की ओर संकेत करती थीं जो तीन वर्ष बाद वॉर्म्स में वास्तव में स्वीकार कर ली गई। निसंदेह औपचारिक रूप से तो वार्ता-भंग पूर्णतः थी, क्योंकि केलीक्सटस ने न केवल हेनरी एवं विरोधी पोप को धर्म-बहिष्कृत ही किया, अपितु हेनरी की प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से भी मुक्त कर दिया, जबतक कि वह प्रायश्चित्त न करे एवं चर्च को संतुष्ट न करे।[15] इस प्रकार केलीक्सटस ने पुनः उस स्वत्व पर बल दिया जो हेनरी चतुर्थ के युग से स्पष्टतया प्रस्तुत नहीं किया गया था, किन्तु यह देखना महत्त्वपूर्ण होगा कि यह ऐसे सम्राट् के विरुद्ध किया गया था जिसने एक विरोधी पोप को स्थापित करके, स्वयं पोप-पद के सम्बन्ध में वैसे ही अधिकार का दावा किया था।

सौभाग्यवश हम कुछ समकालीन रचनाओं द्वारा केलीक्सटस के प्रथम वर्षों में एवं पैस्कल द्वितीय के पोपकाल के अंतिम वर्षों में मतप्रवाह को जान सकते हैं। हम पहले ही वेनडोम के एबट ज्याँफ्री द्वारा पैस्कल द्वितीय को सम्बोधित कटु तथा आक्रामक शब्दावली को उद्धृत कर चुके हैं, जबकि उसने हेनरी पंचम के सामने आत्मसमर्पण किया था, तथा वह 1119 ई० के पूर्व तक अयाजक "प्रतिष्ठापन" की निन्दा कटुतम शब्दों में करता रहा। 1116 ई० से 1118 ई० के बीच उसने रेनॉल्ड को, जिसने एंगर्स के बिशप चुने जाने का दावा किया था, पत्र लिखा, जिसमें उसने सर्वप्रथम पादरी के निर्वाचनों के बारे में तथा बाद में अयाजक "प्रतिष्ठापन" के विषय में विचार प्रकट किए। ज्याँफ्री कहता है कि रेनॉल्ड का निर्वाचन अनियमित एवं अवैध था, उसे सूचना दी गई थी कि रेनॉल्ड का निर्वाचन, जन-साधारण द्वारा अव्यवस्थित रूप से किया गया था, जिन्होंने तत्पश्चात् पादरियों को स्वीकृति देने के लिए भयभीत तथा विवश करने का प्रयत्न किया था। इसके बाद उन सिद्धान्तों का विवेचन है जिनके आधार पर किसी निर्वाचन को उचित माना जा सकता है। ज्याँफ्री कहता है बिशप पद की सम्पूर्ण नियुक्ति निर्वाचन एवं अभिषेक पर निर्भर है, क्योंकि अभिषेक से पूर्व न्यायोचित निर्वाचन होना चाहिए। प्रेरितिकों का चयन एवं अभिषेक स्वयं

Scanned by CamScanner

ईसा द्वारा किया गया था। अब यह कार्य ईसा के पादरियों द्वारा किया जाना चाहिए। चुनाव में पादरी ईसा के प्रतिनिधि हैं तथा अभिषेक के समय बिशप। दूसरे, अर्थात् जन-साधारण, किसी विशेष व्यक्ति को बिशप बनाने की माँग कर सकते हैं, किन्तु न तो उसे चुन सकते हैं न उसका अभिषेक कर सकते हैं।[17] ज्याँफ्री की स्पष्ट इच्छा है कि किसी भी न्यायोचित नियुक्ति के निर्वाचन की आवश्यकता पर दृढ़ता से बल दिया जाए, तथा निर्वाचन का यथार्थ कार्य पादरी तक ही सीमित रहे। अत्यन्त उग्रतापूर्वक वह अयाजक "प्रतिष्ठापन" का वर्णन करता है, तथा मानता है कि कैथोलिक सिद्धान्त वही था जो ग्रेगोरी सप्तम ने घोषित किया था, यद्यपि वह अयाजक "प्रतिष्ठापन" के धर्म-विरोधी कार्य में एवं विक्रय में विभेद करता है, किन्तु वह मानता है कि पहला दूसरे से अधिक शरारत भरा है क्योंकि लौकिक अधिकारी उस अधिकार का दावा इसी कारण करते हैं कि उसके द्वारा वे या तो धर्मपदों को बेचकर रुपया उगाह सकें अथवा बिशप को अपने अधीनस्थ की श्रेणी में ले आएँ। मुद्रा एवं धर्म-दण्ड द्वारा "प्रतिष्ठापन", उसके अनुसार एक संस्कारगत क्रिया थी।[18]

एक दूसरे ग्रन्थ में, जो, यह सोचा जाता है कि कुछ बाद में लिखा गया था, ज्याँफ्री अपने पूर्वकथित विचारों को ही अधिकांशतः दोहराता है, तथा दृढ़तापूर्वक यह भी कहता है कि इस विषय में चर्च के कानूनों को बदलने का अधिकार रोम (पोप) को भी नहीं है।[19] वह स्पष्टतया पैस्कल द्वितीय के कार्य का उल्लेख करता है, तथा यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह शात्र के ईवो द्वारा प्रतिनिधित्व की गई स्थिति का भी खण्डन करना चाहता है।

अब तक, ज्याँफ्री की स्थिति उग्र तथा अनम्य थी, किन्तु एक ग्रन्थ में, जिसका रचना-काल संभवतः 1119 ई० है। हमें एक नए स्वर एवं भिन्न दृष्टिकोण के दर्शन होते हैं। माउज़ें तथा राइम्स के परिषद् की समझौता वार्ताओं से इस ग्रन्थ के सम्बन्ध का निर्धारण आसान नहीं है, क्योंकि कुछ सीमाओं तक उसके सिद्धान्त एवं प्रस्ताव उनसे कहीं आगे चले जाते हैं जो सम्भवतः केलीक्सटस स्वीकार करने को प्रस्तुत था, तथा वह स्पष्टतया सम्राट् के विरुद्ध किसी भी कठोर कदम की निन्दा करता है। ग्रन्थ दो पाठों में उपलब्ध है[20]–एक संक्षिप्त रूप जिसमें केलीक्सटस को मुद्रा एवं दंड द्वारा अयाजक "प्रतिष्ठापन" रूपी धर्म विरोध में दृढ़ता से डटे रहने के लिए प्रेरित किया गया है, तथा दूसरा वृहत् रूप जिसमें ज्याँफ्री यह तर्क करता है कि एक दूसरे अर्थ में "प्रतिष्ठापन" को स्वीकार किया जा सकता है। वह बलपूर्वक कहता है कि गिर्जों की सम्पत्ति के विषय में अयाजक "प्रतिष्ठापन" के पक्ष में कोई भी वैधानिक या धर्म विधि-सम्मत अधिकार नहीं है, तथा वह यह सिद्ध करता प्रतीत होता है कि यह तर्कसंगत नहीं है कि जो वस्तुएँ चर्च को एक बार दे दी गई हैं पुनः प्रदान की जाए, किन्तु वह यह स्वीकार करता है कि सभी सम्पत्ति पर अधिकार मानवीय कानूनों के अन्तर्गत है। दैवी कानूनों से मनुष्य राजाओं तथा सम्राटों के अधीन है, तथा मानवीय कानूनों को छोड़कर अन्य किसी कानून से चर्च सम्पत्ति को नहीं रख सकता, तथा वह संत ऑगस्टीन के द्वारा व्यक्तिगत संपत्ति के स्वरूप के विषय में कथित उन प्रसिद्ध सूक्तियों को उद्धृत करता है जिनका हमने कई बार उल्लेख किया है।[21] अतः वह मानता है कि इसके विरुद्ध कोई तर्क नहीं है कि यथोचित धर्मविधि के अनुसार निर्वाचन एवं अभिषेक के

Scanned by CamScanner

पश्चात् राजा किसी रूप में चर्च की संपत्ति क्यों न प्रदान करे।[22] तथा यह भी तर्क देता है की इस सुविधा के द्वारा चर्च और राज्य में शांति पुनः स्थापित हो सकती है। वह बिना सोचे धर्म-बहिष्कार के उपयोग के विरुद्ध चेतावनी से इसे समाप्त करता है जिसका स्पष्टतः आशय इस विषय में संदेह प्रकट करना था कि क्या सम्राट् को धर्म-बहिष्कृत करना उस दशा में भी बुद्धिमत्तापूर्ण है जबकि वह चर्च से समझौता करना अस्वीकार कर दे, तथा वह संत पीटर और संत पाल के यहूदियों के पूर्वाग्रहों को अनुमोदित करने के कार्य का उल्लेख करता है।[23]

इस ग्रन्थ द्वारा प्रतिनिहित स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह शात्र के ईवो द्वारा अपने पत्रों में "प्रतिष्ठापन" के विषय में, भौतिक सम्पत्ति के लौकिक सत्ता से सम्बन्ध का, तथा किसी रूप में भौतिक सम्पदाओं सहित "प्रतिष्ठापन" को स्वीकार करने की सम्भावनाओं के विवरण का स्मरण कराता है।[24] तथा नॉनातूला के प्लैसीडस के कुछ सुझावों से भी उसकी स्थिति संगत है, किन्तु उसका ऐतिहासिक महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है जबकि हम ज्याँफ्री द्वारा अपने पहले ग्रन्थों में अंगीकृत उग्र स्थिति का स्मरण करते हैं। जैसा हम कह चुके हैं कि हमें इस बात का ज्ञान नहीं है कि माउजें तथा राइम्स में हुए विचारविमर्श से ग्रन्थ का ठीक सम्बन्ध क्या था, किन्तु निश्चित रूप से वह इस तथ्य को प्रकट करता है कि पोप के दल में भी समझौते की दिशा में एक पक्ष उदित हो गया था, तथा इसके द्वारा इसको समझाने में भी सहायता मिलती है कि किस प्रकार केलिक्सटस, केवल चर्च ही नहीं वरन् चर्च की सम्पत्ति के बारे में भी अयाजक "प्रतिष्ठापन" की निन्दा करने, अपने प्रस्तावों को वापिस लेने के लिए तथा बिशप पदों एवं मठों के "प्रतिष्ठापन" की अस्पष्ट निन्दा के प्रति-कल्पन के लिए विवश हुआ।

दो और संक्षिप्त ग्रन्थ जो एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार ज्याँफ्री द्वारा पोप केलीक्सटस को संबोधित थे, उसी समय की, अथवा कम से कम 1119 ई० एवं 1122 ई० के बीच की रचनाएँ हैं, तथा यह युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि वे उस मध्यस्थवादी स्थिति का प्रति-निधित्व करते हैं जिसे ज्याँफ्री ने उस समय अंगीकार कर लिया था। इनमें से पहले में वह मानता है कि कभी-कभी चर्च के अधिकारियों को ऐसे "विधान" भी देनी चाहिए जिसके अन्तर्गत ऐसा कार्य किया जाए अथवा उसका अनुमोदन किया जा सके जो पूर्णतया अनिन्द्य न हो ताकि ईसाई सम्प्रदाय पर आने वाले किसी गम्भीर खतरे को टाला जा सके तथा दृष्टान्तस्वरूप संत पाल द्वारा टिमोथी (Timothy) के शुद्धिकरण (Circumcising) को तथा संतपीटर द्वारा कुछ गैर-यहूदियों (Gentiles) को यहूदी कानूनों के पालन की अनुमति को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के "विधान" चर्चों एवं मठों की प्रथाओं को भी बदल सकते हैं। वह कहता है कि यह सत्य है कि इनके द्वारा उसकी स्वीकृति नहीं देनी चाहिए जो वास्तव में बुरा है, तथा यदि पोप भी ऐसा करे तो वह अन्वेनेवनीयमाना यथान्धाः वाली बात होगी, किन्तु यह उचित रूप से स्पष्ट होता है कि वह अपने पूर्व ग्रन्थों में वर्णित निर्णय का खण्डन या कम से कम संशोधन कर रहा है।[25]

इनमें से दूसरे ग्रन्थ में ज्याँफ्री चर्च के जीवन के लिए आवश्यक प्रमुख परिस्थितियों का संक्षेप से वर्णन करता है। वह कहता है कि चर्च को विश्वजनीन, स्वतंत्र एवं पवित्र होना चाहिए विश्वजनीन इसलिए कि वह न तो खरीदा जाए और न बेचा जाए,

Scanned by CamScanner

स्वतंत्रता की वह लौकिक सत्ता के अधिकार में न हो, शुद्ध क्योंकि उसे घूसखोरी द्वारा विकृत नहीं बनाया जा सके। जब किसी चर्च को खरीदा या बेचा जाता है तो उसके प्रति आस्था विचलित हो जाती है, क्योंकि मनुष्य सोचते हैं कि जिसे ईश्वर ने सभी मूल्यों से परे बनाया है उसे भी मनुष्यों द्वारा खरीदा जा सकता है। जब चर्च लौकिक सत्ता के अधिकार में होता है तो वह उस स्वतंत्रता के अधिकार पत्र को खो बैठता है जो ईसा ने अपने रक्त से क्रॉस पर उसके लिए लिखा है। जब चर्च रिश्वतों से दूषित हो जाता है तो उसकी पावनता नष्ट हो जाती है।[26] ज्यॉफ्री ने अपने पुराने ग्रन्थों में भी इन वाक्यों का प्रयोग किया है, तथा इनका यहाँ कोई विशेष महत्त्व नहीं है, किन्तु यह भी सम्भव है कि वे उन आवश्यक वाद-वस्तुओं को संक्षिप्त करने के लिए प्रयोग किए गए हों जो ज्यॉफ्री के मत में किसी भी समझौते में ध्यान में रखने होंगे, तथा वह यह सुझाता प्रतीत होता है कि जब तक मूल सिद्धान्त सुरक्षित रहें दूसरे वाद-विषयों पर समझौता किया जा सकता है।

अंततः कार्डीनल पीटर लियोनिस को सम्बोधित एक ग्रन्थ में जिसका काल संभवतः 1122 ई० हो सकता है, ज्यॉफ्री अपने पुराने ग्रन्थों का सार प्रस्तुत करता है, अर्थात् विशेषतः अपने दूसरे एवं तीसरे ग्रन्थों में वर्णित अयाजक "प्रतिष्ठापन" की निन्दा का और यह भी स्वीकार करता है, कि जैसा उसने चौथे ग्रन्थ में कहा है कि, धर्मविधि के अनुकूल निर्वाचन एवं स्वतंत्र अभिषेक के वाद भौतिक सम्पत्ति द्वारा अयोजक "प्रतिष्ठापन" को भी स्वीकार किया जा सकता है।[27] यह ध्यान देने की वात है कि इस ग्रन्थ में दिया गया नवीन विचार केवल यही है कि निर्वाचन एवं अभिषेक दोनों ही स्वतंत्र होने चाहिएँ, तथा शपथ ग्रहणानन्तर अभिषेक स्वतंत्र नहीं है। यह निर्णय उचित ही प्रतीत होता है कि इसका वॉर्म्स के समझौते की शर्तों के वाद-विवाद से सम्बन्ध है।

वेनेडोम के ज्यॉफ्री की स्थिति में यह परिवर्तन जो कि इन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है, बहुत महत्त्वपूर्ण है तथा स्पष्टता से यह बताता प्रतीत होता है कि माउजें की समझौता-वार्ता के भंग होने पर भी दोनों ओर से एक समझौते की आशंका की सम्भावना से वास्तविक प्रगति हुई थी, जो कि दोनों सिद्धान्तों को जिनके लिए पोप प्रयत्नशील थे तथा लौकिक सत्ता के उचित स्थानों को मान्यता प्रदान करे। यह धारणा इसी युग के दो ग्रन्थों की परीक्षा से पुष्ट होती है—ह्यूगोमेटेलस (Hugo Metellus) के पोप और राजा के संघर्ष विषयक छन्द, तथा ह्यूनाल्ड (Hunald) के मुद्रा और दण्ड विषयक छन्द ये लेखक महत्त्वपूर्ण नहीं थे किन्तु उनका दृष्टिकोण कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

ह्यूगोमेटेलस राजा को इस पर बल देते हुए प्रदर्शित करता है कि पूर्ववर्ती पोपों द्वारा राजकीय "प्रतिष्ठापन" की प्रथा की स्वीकृति दी गई थी तथा इसका अभिप्राय "पद-चिह्नों" के प्रदान से है। राजा पूछता है कि यदि यह इनको धर्म-दण्ड के प्रतिकान्तर्गत प्रदान करे तो क्या हानि हो सकती है? पोप उत्तर देता है कि उसके पूर्वाधिकारियों द्वारा वास्तव में अयाजक "प्रतिष्ठापन" को सहन किया था, किन्तु अनिच्छापूर्वक, क्योंकि उन दिनों के राजा चर्च के उपकारक थे तथा यह मानता है कि मुद्रा एवं दण्ड पादरी के पद के प्रतीक थे तथा लौकिक सम्पत्ति के "प्रतिष्ठापन" को सूचित करने के लिए इनका प्रयोग उचित नहीं है। तब राजा पैस्कल द्वितीय द्वारा दी गई सुविधा को अपने समर्थन में प्रस्तुत करता

Scanned by CamScanner

है किन्तु पोप उत्तर देता है यह अवैधानिक था क्योंकि दबाव में आकर दिया गया था। तब राजा सुझाव देता है कि यदि चर्च अपने "पद-चिह्नों" को त्यागने को तैयार हो "प्रतिष्ठापन" के अधिकार को छोड़ देगा; तो वह भी अपने क्योंकि पुराने काल में चर्च के पास ये नहीं थे किन्तु पोप उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता। इस पद्यात्मक प्रबन्ध की समाप्ति दोनों पक्षों के मध्य इस समझौते से होती है कि यह विषय तर्क एवं बुद्धि द्वारा विचारणीय है।[28]

ह्यू नाल्ड, पोप की मान्यता का वर्णन करता है कि मुद्रा एवं दण्ड धार्मिक कृत्यों के पवित्र चिह्न थे। राजा इस सिद्धान्त से सहमत हो जाता है कि धार्मिक वस्तुएँ पुरोहित द्वारा ही प्रदान की जानी चाहिए, तथा वह केवल "पद-चिह्न" प्रदान करने के अधिकार का ही दावा करता है। ह्यू नाल्ड का निष्कर्ष है कि पोप और सम्राट् दोनों ही व्यर्थ लड़ रहे हैं, क्योंकि दोनों में से कोई भी दूसरे को हानि नहीं पहुँचाना चाहता है।[29]

माउज़ें की समझौता वार्ता भंग हो चुकी थी किन्तु शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि कोई समझौता ढूँढने का प्रयत्न फिर से प्रारम्भ करना होगा। जून 1121 ई० में जब हेनरी ने मेन्ज़ पर आक्रमण के लिए प्रस्थान किया तो मेन्ज़ के आर्चबिशप ने जो जर्मनी में पोप के दल का प्रधान था, सेक्सन राजाओं का सहायता के लिए आह्वान किया। किन्तु वास्तविक संघर्ष के प्रारम्भ होने के पहले ही दोनों पक्ष के नेता एक दूसरे से समझौते को वार्ता करने लगे, तथा हेनरी को यह मानने को राजी कर लिया गया कि झगड़े का निपटारा दोनों ओर के प्रमुख व्यक्तियों के निर्णय से हो जाए। यह निश्चित हुआ कि सम्पूर्ण साम्राज्य के राजाओं की एक सभा वुर्त्सबर्ग में माइकेलमास (Michaelmas) नामक स्थान पर इस समझौते का निश्चय करने के लिए हो।[30] सेक्सन इतिहासकार इस सभा में लिए गए निर्णयों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करते हैं सम्राट् को पोप के पद के आगे समर्पण करना था, तथा उसके व चर्च के बीच सघर्ष का समझौता राजाओं की राय एवं सहायता से इस प्रकार होना था कि उसकी तथा साम्राज्य की वस्तुएँ उसके पास रहें, तथा चर्च की सम्पत्ति चर्च के पास रहे। जो बिशप धर्मविधि के अनुसार निर्वाचित एवं अभिषिक्त हैं वे शांतिपूर्वक पोप की उपस्थिति में होने वाली सभा तक अपने-अपने पदों पर बने रहें। राजाओं ने सम्राट् के विरुद्ध चर्च की "प्रतिष्ठापन" विषयक शिकायतों का निपटारा इस प्रकार करने की इच्छा व्यक्त की कि साम्राज्य का गौरव अक्षुण्ण बना रहे। सम्राट् किसी के विरुद्ध यदि भविष्य में संघर्ष में भाग लेने के लिए कार्यवाही करें, तो राजा इसके लिए राजी हुए कि स्वयं सम्राट् की स्वीकृति एवं अनुमति से वे एकमत होकर, यद्यपि अत्यन्त आदरपूर्वक एवं सावधानी से, उसे वैसा न करने की चेतावनी देंगे। अगर फिर भी सम्राट् ने उनकी राय की अवहेलना की, तो वे एक दूसरे से किए समझौते के अनुसार कार्य करेंगे।[31]

यह विवरण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह विशेषतः राजाओं के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है, अर्थात् वे चर्च एवं सम्राट् दोनों को ही एक तर्कसंगत समझौते के लिए विवश करने को कृत-निश्चय थे। एकहार्ड इस कार्यवाही का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है, तथा यह महत्त्वपूर्ण सूचना भी देता है कि इस सभा द्वारा जो कुछ निश्चय हुआ

Scanned by CamScanner

उसकी सूचना रोम को देने एवं पोप से सामान्य परिषद् का सम्मेलन बुलाने का अनुरोध करने के लिए दूतों को नियुक्त किया गया।[32]

पोप द्वारा दूतों को उत्तर देने में कुछ विलम्ब हुआ, किन्तु फरवरी 1122 ई० में उसने हेनरी को ऐसे शब्दों में लिखा जो पूर्णतया शांतिकर तो नहीं थे, तथापि समझौते की दिशा में एक नए प्रयत्न के परिचायक थे। केलीक्सटस ने हेनरी को न केवल सम्राट् कहकर ही किन्तु सजातीय के रूप में सम्बोधित किया, तथा उससे चर्च को शांति प्रदान करने का अनुरोध किया, तथा उसे यह विश्वास दिलाया कि जो भी साम्राज्य की या उसकी सम्पत्ति है ऐसी किसी भी वस्तु को लेने की उसकी इच्छा नहीं है। साथ ही उसने यह चेतावनी भी दी कि यदि वह चर्च को उसकी न्यायोचित वस्तु प्रदान करने को राजी नहीं होता तो वह धार्मिक एवं बुद्धिमान लोगों के द्वारा चर्च के योग-क्षेम की व्यवस्था करेगा, तथा उससे होने वाली हेनरी की हानि का विचार नहीं करेगा।[33]

बिशपों एवं राजाओं का एक नया प्रतिनिधिमंडल हेनरी पंचम द्वारा भेजा गया, जिसमें स्पायर्स का बिशप तथा फ्युल्डा का मठाध्यक्ष (Abbot of Fulda) सम्मिलित थे, जिसने हेनरी की साम्राज्य एवं चर्च के बीच समझौते और शांति की इच्छा, यदि यह साम्राज्य के गौरव को क्षति पहुँचाए बिना प्राप्त की जा सके इसके प्रत्युत्तर में केलीक्सटस ने ऑस्ट्रिया के कार्डीनल बिशप लेम्बर्ट को दो अन्य कार्डीनल सहित जर्मनी में अपने प्रतिनिधि के रूप में इन निर्देशों सहित भेजा, कि वे समझौता करने का प्रयास करें, तथा उन्होंने हेनरी को बिशपों की एक परिषद् से भेंट करने के लिए आमंत्रित किया, जो प्रस्ताव के अनुसार मालिक के जन्मोत्सव (Nativity of Virgin) मेन्ज में सम्पन्न होने वाली थी।[34]

परिषद् की बैठक सितम्बर में वॉर्म्स में हुई तथा विचार-विमर्श लगभग 1 मास तक चलता रहा। हमें मेन्ज़ के आर्चबिशप अदलबर्ट द्वारा पोप केलीक्सटस को कुछ समय बाद लिखे गए एक पत्र से विदित होता है, कि समझौता वार्ता पहले तो बहुत कठिन थी। हेनरी पहले तो मुद्रा एवं दण्ड द्वारा प्रतिष्ठापन के अधिकार को त्यागने को राजी नहीं हुआ,क्योंकि वह उसे अपना कुलक्रमागत अधिकार मानता था, तथा उपस्थित अयाजक वृन्द ने भी राजा के स्वत्व का समर्थन किया। अंततः कार्डिनलों से राय लेने के बाद जिसे अदलबर्ट उनकी अनिच्छुक सहमति कहता है, यह निश्चित हुआ की जर्मनी में बिशपों का निर्वाचन सम्राट् की उपस्थित में हो, तथा हम यह अनुमान कर सकते हैं कि इस समझौते को ध्यान में रखकर हेनरी ने मुद्रा एवं दण्ड से प्रतिष्ठापन के अधिकार को त्यागना स्वीकार कर लिया।[35]

समझौते की सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाएँ जो अंततः स्वीकृत हुई ये थीं : हेनरी ने मुद्रा एवं दण्ड से "प्रतिष्ठापन" के सभी दावों को समर्पित कर दिया, तथा साम्राज्य के सभी चर्चों को स्वतन्त्र चुनाव एवं अभिषेक का अधिकार प्रदान कर दिया। दूसरी ओर पोप ने हेनरी को यह अधिकार प्रदान किया कि जर्मन साम्राज्य में साम्राज्य के जितने भी बिशप पद एवं मठ हैं उनका चुनाव उसकी उपस्थिति में किन्तु हिंसा एवं घर्म विक्रय बिना हो, तथा विवाद-ग्रस्त चुनाव की दशा में प्रधान चर्च एवं सम्प्रान्तीय बिशपों की राय लेकर वह अधिक समझदार पक्ष को अपनी स्वीकृति एवं समर्थन दे। निर्वाचित बिशप अथवा

Scanned by CamScanner

मठाधीश उससे "पद चिह्नों" को राज दण्ड सहित प्राप्त करें, तथा उसके प्रतिदान में वाञ्छित वैधानिक कर्त्तव्यों का पालन करें। साम्राज्य के दूसरे भागों में बिशप अथवा मठाधीश अपने अभिषेक के छः मास की अवधि में सम्राट् द्वारा अधिकार दण्ड से "पद-चिह्नों" को प्राप्त करे तथा सभी वैधानिक कर्त्तव्यों का पालन करे; केवल अपवाद उनके विषय में था जो पूर्णतः रोमन चर्च से सम्बन्धित थे।

यदि हम समझौते की प्रमुख शर्तों का मूल्यांकन करने का प्रयास करें जिसने की धार्मिक एवं लौकिक सत्ता के पचास वर्षों से चले आ रहे बिशपों एवं मठाधीशों की नियुक्ति-सम्बन्धी संघर्ष को समाप्त कर दिया, तो हम कह सकते हैं कि यह स्पष्ट है कि मुख्यतः यह उस मध्यस्थतावादी प्रवृत्ति की विजय का प्रतीक था जिसके विकास को ढूँढने का हमने प्रयास किया है, तथा इसमें दोनों दलों में से किसी के भी उग्रवादी पक्ष की पूर्ण विजय नहीं थी। जब हम समझौते के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने का प्रयास करें तो हमें बहुत सावधान रहना चाहिए, तथापि हम संभवतः निम्न निष्कर्ष निकाल सकते हैं। सम्राट् ने मुद्रा एवं दण्ड से "प्रतिष्ठापन" के अधिकार को सौंपकर, तथा स्वतन्त्र निर्वाचन एवं अभिषेक के अधिकार को स्वीकार करके यह स्पष्ट कर दिया कि धार्मिक पद एवं सत्ता को प्रदान करने का उसे कोई अधिकार नहीं है; इस विषय में उसने बिशप क्षेत्र एवं प्रान्त के अधिकार को मान लिया। दूसरी ओर, चर्च ने सामन्ती सम्पत्ति तथा सत्ता को बिशपों एवं मठाधीशों को लौकिक सत्ताधीश के अधिकारों का प्रयोग करते हुए प्रदान करने या न करने के उसके न्यायोचित दावे को स्वीकार कर लिया। इस व्यवस्था द्वारा कि निर्वाचन उसकी उपस्थिति में हो चर्च ने यह स्वीकार किया कि उच्च धार्मिक पदों की नियुक्ति से सम्राट् को पूर्णतया पृथक् नहीं किया जा सकता, जिनमें कि वास्तव में धर्मविधि की व्यवस्था के अनुसार भी अयाजक वर्ग का न्यायोचित एवं वैधानिक स्थान है। विवादग्रस्त निर्वाचनों के निर्धारण की व्यवस्था द्वारा निस्संदेह सम्राट् को अधि-धर्माध्यक्ष एवं सम्प्रान्तीय बिशपों की राय से निर्देशित होना था, किन्तु चर्च ने यह स्वीकार किया कि सम्राट् को ऐसे निर्णयों में महत्त्वपूर्ण योगदान का अधिकार था। संभवतः चर्च द्वारा दी गई सबसे महत्त्वपूर्ण सुविधा इस व्यवस्था में थी कि निर्वाचित बिशप अथवा मठाधीश अपने "पद चिह्नों" को अभिषेक से पूर्व सम्राट् से प्राप्त करें, क्योंकि सम्भवतः इसका अभिप्राय यह था कि निर्वाचित व्यक्ति के विषय में किसी दुस्तर विरोध की स्थिति में सारे मामले पर पुनर्विचार किया जा सके। दूसरी ओर सम्राट् की ओर से महत्त्वपूर्ण सुविधा वह थी जो जर्मन साम्राज्य के बाहर के बिशप पदों एवं मठों के बारे में दी गई। यहाँ उसने निर्वाचन में किसी भाग का दावा नहीं किया, तथा यह व्यवस्था स्वीकार कर ली कि अभिषेक के पश्चात् अर्थात् कार्यवाही के सम्पूर्ण होने के बाद बिशप या मठाध्यक्ष "पद चिह्नों" के लिए प्रार्थना करें, तथा निस्संदेह वह सम्राट् तथा इटली के बिशप पदों के मध्य सम्बन्धों में बहुत बड़ा परिवर्तन था।

हम साम्राज्य तथा पोप पद के बीच महान् संघर्ष के प्रथम पक्ष पर विचारपूर्ण कर चुके हैं, किन्तु इस संघर्ष के दौरान दूसरे प्रश्न उठ खड़े हुए, तथा दूसरे दावे किए गए जो

Scanned by CamScanner

कि मध्यकाल में लौकिक सत्ता एवं धार्मिक सत्ता के सम्बन्धों के अधिक परिपूर्ण पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं, तथा हमें अब उनके विचार के लिए उन्मुख होना चाहिए।

सन्दर्भ

1. Mansi, 'Corcillia', xxi. 51.
2. Mansi, 'Concilia', xxi 75.
3. Id. id., xxi, 76.
4. Ekkehard, 'Chronicon', (a) 1116.
5. Id. id., (a), a 1118.
6. Id., id., (a) 1119.
7. Id. id., (a), 1119.
8. Monumenta Bambergensia, pp. 348–352.
9. Ekkehard, 'Chronicon', (a), 1119.
10. Id. id.
11. Hesso–Relatio.
12. Id. id.
13. Id. id.
14. Id. id.
15. Id. id.
16. देखें, भाग 2, अध्याय 6।
17. Geoffrey of Vendome, 'Libellus', ii.
18. Id. id.
19. Id., 'Libellus', iii.
20. Cf. editor in 'Lib. De Lite'.
21. Cf. vol. i. pp. 139–142.
22. Geoffrey de Vendome, 'Libellus', iv. p. 691.
23. Cf. p. 98.
24. Cf. p. 136.
25. Id. 'Libellus', v.
26. Id., 'Libellus', xv.
27. Id., 'Libellus', vi.
28. Hugo Metellus, 'Certamen Papae et Regis'.
29. Hunald, 'Canon de Anulo et Baculo'.
30. Ekkehard, 'Chronicon', (a. 1121).
31. M. G. H., Legem, Sect. IV., 'Constitutiones', vol. i, 106.
32. Ekkehard, 'Chronicon', (a). 1121.
33. Calixtus II., 'Epistolae', 168 (Migne, Vol. 163).
34. 'Mon. Bambergensia', p. 383.
35. Id. id., p. 519.
36. Legem, Sect. Iv., 'Constitutiones', i. I07.

Scanned by CamScanner

तृतीय खण्ड

पोप पद एवं साम्राज्य का राजनैतिक संघर्ष

प्रथम अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम की स्थिति तथा दावे

इस ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में हमने नवीं शताब्दी में धार्मिक एवं लौकिक सत्ता के सम्बन्धों की अपनी दृष्टि से एक युक्ति संगत व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया, तथा यह सिद्ध किया कि यह सार रूप में पांचवी शताब्दी में पोप जिलेसियस प्रथम द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों की स्वीकृति का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, अर्थात् दोनों सत्ताएँ दिव्य हैं, तथा दोनों अपने-अपने क्षेत्र में सर्वोच्च हैं, तथा अपने निश्चित क्रिया-कलापों के विषयों में एक-दूसरे पर अधिकार का दावा नहीं कर सकता। यह पूर्णतया सत्य है, तथा हमने इसे निस्संकोच स्वीकार करने का प्रयास किया है, तथा इसके लिए पर्याप्त दृष्टान्त भी प्रस्तुत किए हैं कि वास्तविक व्यवहार में नवीं शताब्दी में दोनों सत्ताओं के क्षेत्र पूर्णतया पृथक् नहीं थे, तथा हम पुनः पुनः प्रत्येक का उन विषयों में हस्तक्षेप देखते हैं जो दूसरे के अधिकार क्षेत्र में थे। किन्तु हमें यह प्रतीत नहीं होता है कि इसने उस युग में मनुष्यों के मन के सामान्य निर्णय को अथवा उनके इस विश्वास की वास्तविकता को किसी भी रूप में प्रभावित किया कि धार्मिक एवं लौकिक सत्ताएँ अपने एक दूसरे से सम्बन्धों में पूर्णतया स्वतंत्र हैं।

यद्यपि यह सत्य है, तथा इस पर हमने कुछ बल भी दिया है कि नवीं शताब्दी में जिलेसियस के सिद्धांतों की पुनरुक्ति में हम कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन एवं परिवर्धन पाते हैं। जिलेसियस ने कहा है कि पुरोहित को सौंपा गया भार राजा को सौपे गए भार से अधिक है, क्योंकि दैवी निर्णय के दिन उसे राजा की आत्मा के विषय में भी लेखा देना होगा। ऑरलियन्स का जौनास (Jonas of Orleans) पुरोहित के व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बताता है क्योंकि वह यह देखने के लिए उत्तरदायी है कि राजा अपने पद के दायित्व का निर्वाह करने में भी अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है, तथा राइम्स का हिन्कमार (Hincmar of Rheims) कहता है कि बिशप का गौरव राजा से अधिक है, क्योंकि बिशप ही राजा का अभिषेक करता है। किन्तु जिलेशियन पदावली में सबसे मूलभूत

Scanned by CamScanner

संशोधन ऑरलियन्स के जोनास तथा बिशपों ने 829 के रिलेशियो (Relatio) में किया है, जहाँ वे कहते हैं पुरोहित तथा राजा के दोनों महान् पद लौकिक नहीं, जैसा कि जिलेसियस ने कहा है, किन्तु विश्वव्यापी चर्च के पद हैं, जो कि ईसा का शरीर है। यह संशोधन कहाँ तक सुविचारित एवं सुचिन्तित था हम नहीं कह सकते, किन्तु यह क्रम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इसकी विषमता उचित प्रकार से मिलेविस के ओपटाटस (Optatus of Milevis) की सूक्तियों से की जा सकती है, जहाँ कि वह डोनेटिस्टों (Donatists) को साम्राज्य के प्रति सम्मान के अभाव के लिए फटकारता है। वह कहता है कि चर्च राज्य अर्थात् रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत है साम्राज्य चर्च के अन्तर्गत नहीं।[1]

यह अवधारणा निश्चित रूप में व्यापक महत्त्व की है, तथा मध्य युग के सम्पूर्ण राजनैतिक एवं चर्च सम्बन्धी सिद्धांतों की प्रतीक है। अपनी दूसरी पुस्तक में हमने तूरनाई के स्टीफेन (Stephen of Tournai) के जो बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का प्रसिद्ध धर्म-शास्त्री है, एक वाक्यांश को उद्धृत किया है, जिसमें इस सिद्धान्त को बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। वह कहता है कि एक राज्य में तथा एक राजा के अधीन दो जन-समूह, दो जीवन प्रणालियाँ, दो सत्तायें हैं : यह राज्य चर्च है, राजा ईसा मसीह है, तथा दो जन-समूह चर्च की दो व्यवस्थाएँ हैं अर्थात् पादरी एवं जन-साधारण, दो जीवन प्रणालियाँ धार्मिक एवं लौकिक हैं, दो सत्ताएँ पुरोहित पद एवं राजपद हैं, द्विविध विधान दैवी तथा मानवीय कानून हैं : प्रत्येक को उसका देय प्रदान करो तथा सभी वस्तुओं में सामञ्जस्य बना रहेगा।[2]

राज्य केवल एक है, वह है ईसा का चर्च, तथा इस राष्ट्रमंडल का ईसा स्वयं राजा है, किन्तु वह अपनी सत्ता दो व्यक्तियों को सौंपता है, पुरोहित को तथा राजा को अकेले एक को नहीं। स्टीफेन के मन में अपने-अपने क्षेत्र में एक पर दूसरे की सत्ता का कोई प्रश्न नहीं है, न ही वह एक की तुलना में दूसरे की प्राथमिकता का कोई प्रश्न ही उठाता है। तथापि यह प्रतीत होता है कि जब राज्य की एक चर्च के रूप में कल्पना की गई, तो इस प्रश्न को पूरी तरह से टालना संभव नहीं है। कुछ भी हो नवीं शताब्दी में भी, ओरलियन्स के जोनास तथा राइम्स के हिंकमार ने किसी सीमा तक उस वास्तविक स्वरूप की पूर्व कल्पना की जो यह प्रश्न वास्तव में ग्रहण करने वाला था। जोनास, जैसा कि हम देख चुके हैं पुरोहित के व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बताता है, क्योंकि उसका दायित्व यह देखना है कि राजा अपना कर्त्तव्यपालन कर रहा है, तथा हिंकमार बिशप के "गौरव" को सम्राट् के गौरव से बढ़कर बताता है, क्योंकि बिशप राजा का उसके पद पर अभिषेक करता है। इन दो वाक्यों में ही हम पोप तथा चर्च के उन दावों का प्रथम अंकुर देख सकते हैं, जिनकी हमें अब परीक्षा करनी है।

इस पुस्तक के पहले खण्ड में हमने संक्षेप में लौकिक सत्ता की तुलना में धार्मिक सत्ता की उत्कृष्टता की अवधारणा के तथा लौकिक सत्ता के निर्धारण में उसकी कुछ सत्ता अवश्य है इस धारणा के कुछ दृष्टांतों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण वाक्य रोडोल्फ्स ग्लेबर (Rodolphus Glaber) का है, जो ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लिखते हुए कहता है कि कोई भी तबतक सम्राट् स्वीकार नहीं

Scanned by CamScanner

किया जा सकता, जबतक पोप उसके चरित्र को उपयुक्त स्वीकार न करे, तथा वह उससे साम्राज्य के प्रतीकों को प्राप्त न कर ले।[3] कुछ समय बाद हम पाते हैं कि संशोधनवादी पोप तथा उसके मित्र उन वाक्यों का प्रयोग कर रहे थे जिनका यथार्थ अर्थ तो निर्धारित करना कठिन है, किन्तु जो कम से कम बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। पोप लियो नवम[4] ने कुस्तुन्तुनिया के अधिधर्माध्यक्ष को प्रधान धर्माध्यक्ष को संबोधित एक पत्र में, जिसमें उसने रोम के धर्मपीठ का सभी चर्चों पर अधिकार का दावा किया है, यह भी कहा है कि रोम के धर्मपीठ का साम्राज्य भौतिक भी है तथा स्वर्गिक भी, रोम के धर्मपीठ का राजकीय पौरोहित्य है तथा वह इसकी पुष्टि "कान्सटेन्टाइन के दान" के प्रमाण से करता है। दुर्भाग्यवश वह उस अर्थ की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता जिससे उसने इस वाक्य से सम्बद्ध किया है। प्रथम पुस्तक में हमने उन तर्कों को प्रस्तुत किया है जिनके आधार पर हम आश्वस्त हुए हैं कि मूल रूप में तथा नवीं शताब्दी में जिस राजनैतिक सत्ता का उल्लेख है उससे अभिप्राय केवल रेवेन्ना के बिशप प्रदेश तथा इटली में अन्य बाईजेन्टाइन क्षेत्रों के बारे में पोप के दावे से था।[5] क्या पोप लियो नवम ने इस दान-पत्र के वाक्यों को इसी अर्थ में अथवा अधिक सामान्य अर्थ में ग्रहण किया था, यह स्पष्ट नहीं है।

कुछ वर्षों के बाद पुनः हम पाते हैं कि पीटर डेमियन, जैसा कि हम देख चुके हैं, ऐसे वाक्यों का प्रयोग करता है जिनका कि अभिप्राय निश्चित करना बड़ा कठिन है। वास्तव में वह बहुत स्पष्टता से स्वीकार करता है कि राजकीय सत्ता को स्वयं ईश्वर से अधिकार प्राप्त हुए हैं तथा वह अत्यन्त आग्रहपूर्वक राजा एवं पुरोहित के कार्यों की प्रकृति में विभेद करता है; तथा जब वह दो तलवारों की चर्चा करता है, तो उनमें से एक पर राजा का और दूसरी पर पुरोहित का अधिकार बताता है, तथा कुछ समय पश्चात् प्रचलित इस सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं करता, कि दोनों पर ही वास्तव में पुरोहित का अधिकार है।[6] दूसरी ओर हेनरी पंचम को लिखे गए एक पत्र में विरोधी पोप कैडेलियस के विरुद्ध रोमन धर्मपीठ की सहायता की माँग करते हुए वह कहता है कि राजा का तभी सम्मान होना चाहिए जबकि वह सृष्टिकर्त्ता की आज्ञा मानता है, किन्तु जब वह दैवी आदेशों का उल्लंघन करता है तो प्रजा द्वारा उसकी अवमानना विधिसम्मत है। दूसरे स्थान पर वह पोप को राजाओं का राजा तथा सम्राटों का राजा कहता है, जो कि गौरव और सम्मान में सभी प्राणियों से उच्चतर है; एक अन्य स्थान पर वह रोम के चर्च की स्थापना ईसा द्वारा बताता है, जिसने पीटर को पार्थिव एवं स्वर्गिक साम्राज्य के कानून सौंपे तथा इसकी पुनरावृत्ति वह दूसरे ग्रन्थ में करता है जहाँ वह ईसा द्वारा पीटर को स्वर्ग एवं पृथ्वी दोनों के कानून सौंपता हुआ बताता है।[7] इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में हम इन वाक्यों पर पहले ही विचार कर आये हैं, द्वितीय पुस्तक में इनमें से कुछ की बारहवीं शताब्दी के धर्म-विधियों द्वारा व्याख्या का भी हमने वर्णन किया है,[8] तथा हम केवल इसी बात को दोहरा सकते हैं कि यह कहना अत्यन्त कठिन है कि पीटर डेमियन का इनसे क्या अभिप्राय था।

इस युग के सर्वाधिक प्रख्यात सुधारवादी पादरियों में से अन्य के द्वारा ऐसे वाक्यों का प्रयोग किया गया है जो इस कारण ध्यान देने योग्य हैं क्योंकि वे धार्मिक सत्ता के उत्तर कालीन दावों का तर्काधार इंगित करते हुए प्रतीत होते हैं। कार्डीनल हम्बर्ट दोनों

Scanned by CamScanner

व्यवस्थाओं के कार्य क्षेत्रों में विभेद करता है; पादरी लौकिक विषयों में उसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं कर सकता जिस प्रकार अयाजक-वृन्द धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। यद्यपि एक अन्य स्थल पर वह कहता है कि यदि हम पादरी एवं राजा के गौरव की यथोचित रूप में तुलना करें तो हम कह सकते हैं कि पौरोहित्य आत्मा के तुल्य है, तथा राज्य शरीर के तुल्य, क्योंकि वे दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं तथा दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता है। जिस प्रकार आत्मा शरीर की तुलना में महान् है तथा शरीर पर नियंत्रण रखती है उसी प्रकार पौरोहित्य का सम्बन्ध राज्य से है; क्योंकि सभी वस्तुओं को इसी प्रकार ठीक रखा जा सकता है, इसलिए आत्मा की तरह पुरोहित भी मनुष्यों को जो कार्य करने चाहिए उनके विषय में चेतावनी देता है; जिस प्रकार राजा को पुरोहित की आज्ञा माननी चाहिए, वैसे ही जनसाधारण को राजा की आज्ञा माननी चाहिए; पुरोहित को जनता को शिक्षा देनी चाहिए, तथा राजा को उन पर शासन करना चाहिए।[9]

हम नहीं सोचते कि यह ठीक-ठीक कहना सम्भव है कि पीटर डेमियन तथा हम्बर्ट और दूसरे सुधारवादी चर्च के सदस्यों का इस प्रकार के वाक्यों से क्या अभिप्राय था, हमें इसमें भी संदेह है कि उनका वास्तव में इनसे कोई सुनिश्चित अर्थ था। तथापि इनको महत्त्वहीन तथा उपेक्षणीय नहीं समझा जा सकता; इनके महत्व के बोध के लिए किसी नवीन परिस्थिति की आवश्यकता थी, सम्भवतः हमको कहना चाहिए कि एक नवीन परिस्थिति तथा एक कृतसंकल्प स्वभाव की।

इस पुस्तक के पिछले खण्ड में हमारे द्वारा विवेचित महान् परिवर्तन के साथ-साथ नई परिस्थितियाँ विकसित हुई थीं। हेनरी तृतीय के देहावसान तक यह स्पष्ट है कि चर्च के सुधारवादी दल को मुख्यतया राजकीय सत्ता का सामान्य तथा सम्पूर्ण समर्थन प्राप्त था, किन्तु उसकी मृत्यु के साथ इसमें परिवर्तन आ गया। हेनरी चतुर्थ की अवयस्कता के काल में सम्राट् की सत्ता का घोर दुरुपयोग हुआ, तथा जब हेनरी चतुर्थ ने स्वयं शासन सम्भाला तो इसकी केवल पुष्टि (पुष्टि-मात्र) ही हुई।

हमें यहाँ हेनरी के व्यक्तिगत चरित्र के विरुद्ध लगाए गए आरोपों की सत्यता पर विचार नहीं करना है—उसके राजनैतिक एवं धार्मिक शत्रुओं के वक्तव्यों को हमें सावधानी से ग्रहण करना चाहिए। किन्तु यह निर्विवाद है कि व्यक्तिगत आचरण एवं चर्च से सम्बन्धित कृत्यों के द्वारा उसने अप्रसन्नता के गम्भीर कारणों को जन्म दिया। यहाँ केवल उस महान् लोकापवाद का उल्लेख करना पर्याप्त होगा जो तब फैला जब 1069 ई० में हेनरी ने अपनी पत्नी को तलाक देने की इच्छा सार्वजनिक रूप से व्यक्त की। मेन्ज का आर्चबिशप सीमफ्रिड के पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय को लिखे गए एक पत्र में उस रोष का वर्णन करता है जो इस समाचार के कारण फैला।[10] उसी आर्चबिशप के दूसरे पत्र में हम उस समय पादरियों से सम्बन्धित अपवादों से हेनरी के सम्बन्ध का अच्छा उदाहरण पाते हैं। एलेक्जेण्डर द्वितीय ने धर्म-विक्रय के आरोप के आधार पर सीमफ्रिड को कॉन्सटेन्स के निर्वाचित बिशप का अभिषेक करने का निषेध कर दिया था, तथा सीमफ्रिड सूचित करता है कि हेनरी उस पर इस कारण बहुत क्रुद्ध था, तथा उसे भय था कि यदि पोप

Scanned by CamScanner

ने उसे राजकीय क्रोध से नहीं बचाया तो हेनरी उसके विरुद्ध और भी कार्यवाही करेगा।[11] वास्तव में यदि हम हेनरी चतुर्थ के ग्रेगोरी सप्तम को 1073 ई० में स्वयं लिखित पत्र के वक्तव्यों को स्वीकार करें, तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि वह व्यक्तिगत एवं धार्मिक दोनों प्रकार के गंभीर दोषों से अनभिज्ञ था, अथवा अभिज्ञ-रूप में चित्रित कराना उसे स्वीकार्य था।[12]

जब 1073 ई० में हिल्डेब्रांड ग्रेगोरी सप्तम के रूप में पोप निर्वाचित हुआ तो चर्च के सुधारवादी दल एवं साम्राज्य के तथा फ्रांस के भी राज्याधिकारियों के मध्य मतभेद बहुत बढ़ चुके थे, तथा यद्यपि यह सत्य है कि काफी समय तक हिल्डेब्रैण्ड ने पोप-पद की नीतियों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया था, यह कहना भी सत्य है कि उसकी नीति पोप-पद पर उसके अभिषिक्त होने के बाद से स्पष्ट एवं अधिक दृढ़ हो गई। सुत्री की परिषद् के समय से पोप ने स्थिरतापूर्वक सुधार की नीति अपनाई थी, विशेषत: दो प्रश्नों के विषय में—एक तो वह जिसके साथ यहाँ हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, पादरियों का विवाह, तथा दूसरा चर्च के पदों का क्रय या विक्रय अर्थात् धर्म-विक्रय। अबतक यह मुख्यत: उन पादरियों के विरुद्ध जो कि धर्म-विक्रय के अपराधी थे, कठोर कार्यवाही के रूप में अभिव्यक्त किया जाता रहा, किन्तु ग्रेगोरी सप्तम के पदारोहण काल से पोप ने अपने आक्रमण का लक्ष्य लौकिक सत्ताधारियों को बनाया जो उसके निर्णयानुसार मुख्यत: इस प्रकार की परिस्थितियों के लिए उत्तरदायी थे।

कभी-कभी यह भी माना गया है अथवा सुझाव दिया गया है कि यह न्यूनाधिक रूप में लौकिक सत्ता के ऊपर धार्मिक सत्ता की श्रेष्ठता को बनाए रखने के निश्चित एवं सुविचारित उद्देश्य के कारण था : हमें इसमें संदेह है कि इसका कोई न्यायोचित आधार है जिस पर यह निर्णय आधारित हो, तथा हमारे विचार में इतिहासकार के लिए अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण यह होगा कि वह पोप की नवीन नीति के वास्तविक विकास के निरीक्षण तक अपने को सीमित रखे। यद्यपि यह सत्य है कि नयी नीति का विकास द्रुत गति से हुआ, तथा वास्तव में पदारोहण के प्रथम वर्ष से ही ग्रेगोरी सप्तम ने यह प्रदर्शित कर दिया कि वह पोप पद के द्वारा कभी भी दावा की गई या प्रयोग की गई प्रत्येक शक्ति का उपयोग, सुधार के लिए करने को कटिबद्ध था।

नई नीति का, यदि हम इसे यह संज्ञा प्रदान कर सकते हैं, सर्वप्रथम फ्रांसीसी राजतंत्र के सम्बन्ध में रूप निश्चित हुआ; तथा 1076 ई० तक हेनरी चतुर्थ के साथ पूर्ण-विच्छेद नहीं हुआ था। अत: हमें ग्रेगोरी सप्तम के पोप-पद के आरम्भिक वर्षों में फ्रांस से उसके सम्बन्धों के निरीक्षण से अध्ययन आरम्भ करना चाहिए।

एक पिछले अध्याय में हम उस कठोर कार्यवाही का वर्णन कर चुके हैं जो पोप लियो नवम ने फ्रांसीसी चर्च में धर्म-विक्रय के विरुद्ध की थी।[13] जब हिल्डेब्रैण्ड पोप बना, तो उसने इस दोष को फ्रांस में प्रचलित पाया, तथा उसके निर्णय के अनुसार स्वयं राजा फिलिप प्रथम ही इस दोष का मूल कारण था। अपने पदारोहण के वर्ष 1073 ई० में ग्रेगोरी सप्तम ने शालों के बिशप को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने फिलिप को, अपने काल के सभी राजाओं में सच्ची व्यवस्था तथा चर्चों की स्वतन्त्रता का सबसे बड़ा विनाशक

Scanned by CamScanner

तथा सबसे अधिक गर्हित धर्म-विक्रय का विशेषत: दोषी बताकर, निन्दा की थी। वह स्पष्टत: इसका अपराध उस पर आरोपित करता है, क्योंकि वह फ्रेंच राज्य को रोमन चर्च के प्रति निष्ठा एवं कर्त्तव्यपालन में अद्वितीय बताता है। वह राजा की निन्दा करने मात्र तक ही सीमित न रह कर, उसे स्पष्ट शब्दों में, धमकी देता है कि यदि फिलिप ने अपने गलत तरीकों में सुधार नहीं किया तो, वह राज्य का सामान्य धर्म-बहिष्कार कर देगा, तथा इस प्रकार फ्रांसीसी जनता को विवश कर देगा[14] कि वह राजा के प्रति आज्ञा पालन को समाप्त कर दे।

हमें वास्तव में एक नई नीति के आश्चर्यजनक प्रमाण उपलब्ध होते हैं कि रोमन धर्मपीठ अब एक पोप के आधीन है जो अपने अधिकार में विद्यमान सभी साधनों को अपनाकर चर्च की परिस्थितियों में सुधार लाने को कृतनिश्चय है। इस पत्र में प्रकट नीति और संकल्प आगामी वर्षों में और विकसित हो गए। सितम्बर 1074 ई० में ग्रेगोरी सप्तम ने राइम्स मेन्ज़ व बोर्ड्यू के आर्चबिशपों, शात्र के बिशप तथा फ्रांस के अन्य बिशपों को पत्र लिखकर, राजा की दुष्टता को रोक सकने की असफलता के लिए उनको फटकारा, और उनको आज्ञा दी कि एकमत होकर उसका प्रतिवाद करें, तथा उसके समक्ष उसके कार्यों की दुष्टता की निन्दा करें। यदि वह उनकी बात पर ध्यान न दे तो उसे चेतावनी दे दें कि वह पादरी की तलवार से नहीं बच सकेगा, तथा वे रोम का आज्ञा पालन करते हुए अपने को उसकी आज्ञा पालन तथा धार्मिक सभा से पृथक् कर लें, तथा सारे फ्रांस में दैवी उपासना के सार्वजनिक कार्यों को निषिद्ध कर दे, और अन्त में, फिर भी यदि फिलिप पश्चात्ताप न करे, तो उसने अपना निश्चय प्रकट किया कि वह उसे फ्रांस के राजत्व से वंचित करने के लिए अपनी शक्ति भर कोई उपाय उठा नहीं रखेगा।[15]

उसी वर्ष के नवम्बर में ग्रेगोरी ने प्वाइतू के सामन्त (Poitou) विलियम को लिखा, तथा उसे फिलिप से मिलकर उसके अन्यायों के विशेषतया फ्रांस में इटली के व्यापारियों को लूटने के सम्बन्ध में उसके आचरण के, विषय में प्रतिवाद करने को कहा, और उसे निर्देश दिया कि यद्यपि इस समय वह उसके पश्चात्ताप को स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत है किन्तु यदि उसने अपने बुरे तौर-तरीकों को नहीं सुधारा तो उसको तथा उसकी आज्ञा का पालन करने वाले सभी को वह धर्म-बहिष्कृत कर देगा। पुन: उसी वर्ष 1074 ई० के दिसम्बर में उसने राइम्स के आर्चबिशप मेनेसस (Manasses) को उसी विषय में पत्र लिखकर राजा के नए एवं अभूतपूर्व अपराध की, कि उसने इटली एवं दूसरे देशों के व्यापारियों को लूटा है, निन्दा की तथा उसे चेतावनी दी कि यदि वह ऐसे अपराध करता रहा तो वह पोप और रोमन चर्च को सदैव कट्टर शत्रु के रूप में पाएगा। फरवरी 1075 ई० में रोम की परिषद् में उसने आदेश दिया कि जबतक फिलिप अपने संशोधित व्यवहार के बारे में पोप के दूतों को जमानत नहीं देता जो कि फ्रांस को भेजे जाने वाले थे, वह धर्म-बहिष्कृत रहेगा।[16]

ग्रेगोरी सप्तम के इस पत्र की शब्दावली में लौकिक सत्ताओं के प्रति पोप के एक नए दृष्टिकोण, धर्म-विक्रय के अपराधी केवल पादरियों के प्रति ही नहीं, किन्तु यदि उसके लिए उत्तरदायी हो तो लौकिक सत्ताधारियों से भी निपटने और राजाओं को धर्म-बहिष्कृत

Scanned by CamScanner

एवं पदच्युत करने के पोप के अधिकार के आरोपण के, दर्शन होते हैं। बहुत बाद तक इन दावों का तर्कसंगत स्पष्टीकरण ग्रेगोरी के द्वारा नहीं किया गया, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि 1074 ई० में एरागोन के राजा सैंकी को लिखे गए एक पत्र में, वह इस पर बल देता है कि ईसा ने पीटर को दुनिया के समस्त राज्यों का राजा बनाया था, तथा एक प्रलेख में जिस पर 1075 ई० की तारीख पड़ी है तथा जिसमें पोप की सत्ता की प्रकृति के बारे में सार-रूपेण एक वक्तव्य है, हम इस सिद्धान्त का प्रबल समर्थन पाते हैं कि पोप शासकों को पदच्युत कर सकता है, तथा क्रूर शासकों की प्रजाओं को उनके प्रति राजभक्ति से मुक्त कर सकता है।[17] वास्तव में इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि चर्च निरन्तर ही राजाओं पर भी अपने आध्यात्मिक अधिकार का वैसा ही दावा करता आया था जैसा साधारण मनुष्यों पर, किन्तु यह अवधारणा कि इसके अन्तर्गत राजाओं को पदच्युत करने का अधिकार भी आता है पूर्णतया भिन्न थी। हमारी प्रथम पुस्तक में हमने कुछ लेखांशों को उद्धृत किया है जो यह सिद्ध करते हैं कि यह परिकल्पना अपरिचित नहीं थी, तथा कम से कम कभी-कभी नवीं शताब्दी में स्वीकार भी की जाती रही थी, किन्तु ग्रेगोरी सप्तम की कृतसंकल्प शब्दावली निश्चित रूप से एक नवीन विश्वास एवं नई नीति की परिचायक प्रतीत होती है।[18]

यदि नई नीति सबसे पहले पोप एवं फ्रांसीसी राजतन्त्र के सम्बन्धों में दिखाई दी, तो उसका विकास साम्राज्य के सम्बन्धों के विषय में हुआ। हम यहाँ ग्रेगोरी सप्तम एवं हेनरी चतुर्थ के बीच महान् संघर्ष के विस्तृत इतिहास को प्रस्तुत करने का दावा नहीं करते किन्तु हमें उसकी दिशा का उस सीमा तक अनुसरण करना चाहिए जहाँ तक कि वह संघर्ष के आधारभूत सिद्धान्तों को समझने के लिए अनिवार्य हो। हम 1069 ई० में अपनी पत्नी को तलाक देने के हेनरी चतुर्थ के प्रस्ताव तथा धर्म-पद-विक्रय में उसके संपर्क से उठने वाली गम्भीर लोकनिन्दा का पहले उल्लेख कर चुके हैं। जब 1073 ई० में हिल्डेब्राण्ड का पोप पद पर अभिषेक हुआ तब तक हेनरी चतुर्थ व्यक्तिगत रूप से एवं स्पष्ट शब्दों में धर्म बहिष्कृत नहीं हुआ था, किन्तु उसने धर्म-बहिष्कृत लोगों के सम्पर्क से अपने को पृथक् करने को अस्वीकार कर दिया था, उसका अवहेलना की, इसलिए वह अप्रत्यक्षतः चर्च के निषेधाधीन था। तथापि यह ध्यान देने योग्य है कि हिल्डेब्राण्ड ने यह सावधानी बरती कि हेनरी चतुर्थ के रुष्ट का कोई कारण न दे, तथा ऐसा प्रतीत होता है कि उसके वास्तविक अभिषेक से पूर्व उसके राय लिए जाने के दावे को स्वीकार कर लिया।[19]

पोप की गद्दी पर पदारोहण के समय हेनरी के प्रति ग्रेगोरी का दृष्टिकोण लोरेन के ड्यूक गॉडफ्रे को लिखे गए पत्र से भलीभाँति प्रकट होता है। वह उसे विश्वास दिलाता है कि हेनरी का हित उससे अधिक कोई नहीं चाहता, तथा उसे बड़ी प्रसन्नता होगी यदि हेनरी न्यायपालन में उसकी राय एवं प्रताड़ना का ध्यान रखे, किन्तु वह स्पष्टतया यह भी कहता है कि किसी भी व्यक्ति के प्रति सम्मान की भावना उसे उनका न्याय करने से ईश्वर से जो घृणा करते थे विमुख नहीं कर सकती।[20] पुनः ल्यूका के निर्वाचित बिशप एन्सलम को 1073 ई० के सितम्बर में लिखे गए पत्र में वह उसे तबतक हेनरी से प्रतिष्ठापन प्राप्त करने का निषेध करता है जबतक कि उसने धर्म-बहिष्कृत लोगों के साथ सहभागिता के

Scanned by CamScanner

लिए ईश्वर के प्रति प्रायश्चित न कर लिया हो, तथा पोप से शांति न कर ली हो।[21]

ग्रेगोरी का सत्तारोहण हेनरी चतुर्थ के विरुद्ध सेक्सनों के महान् विद्रोह के भड़क उठने के साथ ही साथ हुआ। इस ग्रन्थ की तीसरी पुस्तक में हमने राजनैतिक विचारों के विकास के इतिहास के सम्बन्ध में उसका महत्त्व प्रदर्शित किया है। हम यहाँ पहले कही हुई बात की पुनरुक्ति नहीं कर सकते, न हम परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन कर सकते हैं, किन्तु जर्मनी की राजनैतिक परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है, क्योंकि निस्सन्देह पोप की स्थिति के विकास में उनका बहुत बड़ा योगदान था। निस्सन्देह चाहे वह आंशिक रूप में ही रहा हो, विद्रोह के भय ने ही उसे उतनी विनम्रता से तथा पश्चात्ताप-पूर्वक अपने को 1073 ई० के उस पत्र द्वारा अभिव्यक्त करने को विवश किया, जिसे हम पहले उद्धृत कर आए हैं। वह अत्यन्त नम्रता से यह स्वीकार करता है कि उसने सत्ता का दुरुपयोग किया है तथा वह धर्म-विक्रय का अपराधी है, उसने ग्रेगोरी से मंत्रणा देने की प्रार्थना की तथा आज्ञापालन की प्रतिज्ञा की।[22] एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्र में जो दिसम्बर 1073 ई० में मेग्डेबर्ग के आर्चबिशप तथा दूसरे सेक्सन राजाओं को जो हेनरी के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे लिखा गया था हेनरी तथा उसकी प्रजाओं के बीच ग्रेगोरी के हस्तक्षेप का सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त है। वह उनमें उत्पन्न हुए संघर्ष तथा परिणामस्वरूप होने वाली जर्मनी की बरबादी पर शोक प्रकट करता है, तथा स्पष्टतया पुनः शांति स्थापित करने के लिए वास्तविक रूप में अभिलाषी है, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि उसने प्रारम्भ से ही उनके तथा राजा के प्रति सत्ता एवं मध्यस्थ की स्थिति अंगीकार की है। वह उनसे कहता है कि उसने राजा से प्रार्थना की है तथा चेतावनी दी है कि पीटर तथा पॉल नामक प्रेरितिकों के नाम पर वह तबतक संघर्ष से विरत रहे जबतक कि वह संघर्ष के कारण को जानने के लिए दूतों को भेजकर शांति स्थापित नहीं कर देता है, तथा वह उसी शांति की शर्त को पालन करने के लिए उनको भी प्रताडित करता है; वह उनको विश्वास दिलाता है कि वह न्याय को स्थापित करने का प्रयास करेगा, तथा किसी भी व्यक्ति के भय या आदर से ऊपर उठकर धर्मासनीय सत्ता का संरक्षण उस पक्ष को देगा जिसके साथ अन्याय हुआ है तथा जिसकी हानि हुई है।[23] इस पत्र का स्वर शिष्ट किन्तु अधिकारपूर्ण है।

यह प्रतीत होगा कि हेनरी ने चर्च से कोई समझौता नहीं किया था किन्तु जून 1074ई० में हेनरी चतुर्थ की माता साम्राज्ञी एग्नेस को ग्रेगोरी द्वारा लिखे गए एक पत्र से यह स्पष्ट होता है कि इस समय तक हेनरी को चर्च की सहभागिता में पुनः स्वीकार कर लिया गया था, तथा इस प्रकार जैसा ग्रेगोरी कहता है उसके साम्राज्य का एक बड़ा भारी खतरा टल चुका था, क्योंकि हेनरी जबतक उस धर्म-सहभागिता से बहिष्कृत था, ग्रेगोरी उससे भेंट नहीं कर सकता था, तथा प्रजाओं से उसके सम्बन्ध अत्यन्त कठिन थे।[24] दिसम्बर 1074 ई० में हेनरी को लिखे गए उसके एक पत्र में हमारे पास एक बयान है जो कि मित्रतापूर्ण है परन्तु साथ ही कठोर भी, जिसमें वह उसे चेतावनी देता है कि वह न्याय-पूर्वक अपने राज्य को तभी तक बनाए रख सकता है जबतक कि वह ईसा के चर्च की सुरक्षा एवं पुनरुद्धार के लिए अपने अधिकारों का उपयोग करे।[25] उसी समय के एक दूसरे पत्र में हमें ग्रेगोरी की हेनरी के प्रति, जब उसे उसके पश्चात्ताप तथा सुधार का पूर्ण

Scanned by CamScanner

आश्वासन मिल गया था, भावनाओं की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। वह हेनरी के प्रति अविरक्त स्नेह की अभिव्यक्ति करता है तथा इस पर खेद प्रकट करता है कि मनुष्य उनमें फूट के बीज बो रहे हैं तथा उससे अनुरोध करता है कि उसकी स्वयं की इच्छा ईसा की समाधि तक एक सेना के साथ जाने एवं पूर्वीय ईसाइयों की सहायता करने की है तथा यदि ईश्वर की कृपा से वह वैसा कर सका तो चर्च को हेनरी के संरक्षण में छोड़ देने का इच्छुक है ताकि वह माता की भांति उसका संरक्षण करे तथा उसके गौरव की सुरक्षा करे। वह इस प्रार्थना से समाप्त करता है कि ईश्वर उसे सभी पापों से मुक्त करे तथा उसके आदेशों के अनुरूप जीवन-यापन की उसे प्रेरणा दे तथा उसे शाश्वत जीवन की ओर लाए।[26] अनस्ट्रट (Unstrut) में हेनरी की सेक्सनों पर विजय के उपलक्ष्य में लिखे गए पत्र में वह प्रसन्नता व्यक्त करता है कि दैवी निर्णय ने उसे सेक्सनों पर जो अन्यायपूर्वक उसका प्रतिरोध कर रहे थे, यह विजय प्रदान की है साथ ही वह इस पर खेद भी प्रकट करता है कि इतना अधिक ईसाई रक्त बहा है तथा उसे विश्वास दिलाता है कि वह उसके प्रवेशार्थ चर्च को खोलने तथा ऐसे व्यक्ति के रूप में उसका स्वागत करने को तैयार हैं जो एक ही साथ चर्च का स्वामी तथा पुत्र है, यदि वह अपनी स्वयं की मुक्ति का विचार करने तथा ईश्वर को सम्मान एवं गौरव प्रदान करने को तैयार हो।[27]

किन्तु जनवरी 1076 ई० में हम देखते हैं कि ग्रेगोरी एवं हेनरी के बीच सम्बन्धों में गम्भीर तनाव आ गया था। इसी मास की आठवीं तारीख को उसने पुनः धर्म-बहिष्कृत लोगों से उसे पृथक् रहने का उपदेश दिया, तथा फर्मो एवं स्पोलेटो (Fermo and Spoleto) के बिशप पद दो ऐसे व्यक्तियों को प्रदान करने के लिए उसकी शिकायत की जिनको ग्रेगोरी पहचानता भी नहीं था।[28] कुछ सप्ताहों के बाद अन्तिम विस्फोट हुआ, तथा ग्रेगोरी सप्तम एवं हेनरी चतुर्थ एक दूसरे के विरुद्ध खुली लड़ाई को तत्पर हो गए। इन परिस्थितियों का विवरण हर्सफील्ड के लेम्बर्ट, ग्रेगोरी सप्तम एवं ब्रूनो ने किया है। लेम्बर्ट के अनुसार पोप के दूत जर्मनी में आए, तथा हेनरी को उस पर लगाए गए आरोपों का उत्तर देने के लिए लेन्ट (Lent) के दूसरे सप्ताह में रोम में होने वाली परिषद् में उपस्थित होने को निमन्त्रित किया तथा घोषणा की, कि यदि वह वैसा नहीं करेगा तो चर्च-निर्णय द्वारा उसे चर्च से निकाल दिया जाएगा। हेनरी इस घोषणा से बहुत विचलित हो गया, तथा उसने दूतों को तुरन्त ही धृष्टतापूर्वक विदा करके, अपने साम्राज्य के सभी बिशपों तथा मठाध्यक्षों को लेण्ट त्यौहार से पहले (Septu ageima) तीसरे रविवार को वॉर्म्स नामक स्थान पर बुलाया, जहाँ वे ग्रेगोरी की पदच्युति पर विचार कर सकें, क्योंकि यह उसकी एवं साम्राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक हो गया था। ग्रेगोरी ने 1 अगस्त 1076 को जर्मनी के श्रद्धालुओं को लिखे गए पत्र में हेनरी चतुर्थ से सम्बन्धों का एक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करके यह बताया है कि उसने हेनरी को चेतावनी देते हुए लिख दिया है कि यदि वह अपने को धर्म-बहिष्कृत लोगों के सम्पर्क से अलग नहीं रखता तो उसे चर्च से पृथक् मान लिया जाएगा, तथा भर्त्सना के कारण क्रुद्ध हेनरी ने, जर्मनी व इटली के कई बिशपों को इसके लिए फुसला लिया है कि वे पोप की गद्दी का आज्ञा पालन छोड़ दें।[29]

परिषद् निश्चित दिन हुई, तथा उसकी कार्यवाही का सबसे अच्छा ज्ञान उन पत्रों पर

Scanned by CamScanner

विचार करने से होगा जो कि स्वयं बिशपों एवं हेनरी चतुर्थ ने निर्णयों की घोषणा करते हुए लिखे थे। हम बिशपों के पत्रों में वर्णित सभी विषयों पर विचार नहीं कर सकते, किन्तु उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण निम्न थे। इन पत्रों में उनके द्वारा आरोप लगाया गया कि उसने (ग्रेगोरी ने) सभी चर्चों में उपद्रव खड़ा कर दिया है, जनता को बिशपों एवं पादरियों के विरुद्ध कर दिया है, तथा बिशपों की नियुक्ति को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने का अधिकार हथिया लिया है, तथा किसी भी व्यक्ति को जिसके अपराध के प्रति उनका ध्यान आकर्षित किया गया हो, बाँधने या मुक्त करने के अधिकार का भी उन्हें निषेध कर दिया है। उनके द्वारा सुझाव दिया गया कि पोप-पद पर उसका निर्वाचन अनियमित है, तथा पोप निकोलस द्वितीय के घोषणा-पत्र के बिलकुल विरुद्ध है; उस पर किसी स्त्री से अपवादपूर्ण सम्बन्ध एवं उसे धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप करने की छूट देने का आरोप लगाया गया। अतः उन्होंने निश्चय किया कि वे उसे पोप के रूप में मान्यता नहीं देंगे।[30]

हेनरी ने ग्रेगोरी के लिखे गए पत्र में कहा, कि पहले उसने उन बिशपों पर आक्रमण किया है जो उसके मित्र हैं, और इसके बाद स्वयं उस पर (हेनरी पर) आक्रमण के लिए तैयार हो गया है तथा उसकी आत्मा और साम्राज्य को छीनने की धमकी दे रहा है। परिणामस्वरूप उसने साम्राज्य के सभी प्रमुख लोगों की एक सभा बुलाई है, और उनके द्वारा यह निश्चय किया गया है कि ग्रेगोरी को पोप नहीं स्वीकार किया जाए। हेनरी ने ने उनके निर्णय की पुष्टि कर दी है, तथा ग्रेगोरी के पोप-पद पर दावे को अस्वीकार कर दिया है तथा उसे आदेश देता है कि उस रोम नगर के धर्मपीठ को छोड़ दे, जिसका कि वह ईश्वरीय प्रदान द्वारा तथा रोमन जनता की शपथपूर्ण सहमति द्वारा साम्राज्यिक प्रतिनिधि है।[31] रोमन जनता को सम्बोधित अपने पत्र में हेनरी ने अपने पूर्व पत्र का उल्लेख किया है, तथा उनका ग्रेगोरी के विरुद्ध विद्रोह करने एवं उसे पोप-पद से उतारने के लिए आह्वान किया है, ताकि हेनरी द्वारा सभी बिशपों एवं रोमन नागरिकों की सहमति से नया पोप नियुक्त किया जा सके जो चर्च के घावों को भर सके।[32]

सम्भवतः यह उल्लेखनीय है कि बिशपों का पत्र मुख्यतः धार्मिक शिकायतों तथा ग्रेगोरी के चुनाव की तथाकथित अनियमितताओं पर बल देता है, जबकि हेनरी का मुख्यतः पोप द्वारा उसे धर्म-बहिष्कृत करने की धमकी, तथा उसे पदच्युत करने की आरोपित धमकी का वर्णन करता है। हम नहीं कह सकते हैं कि क्या उसका यह अभिप्राय धर्म-बहिष्कृत करने की धमकी में छिपा था, केवल मात्र जिसका वर्णन लेम्बर्ट ने किया है, अथवा ग्रेगोरी का कोई इस प्रकार का वक्तव्य था, जैसा कि हेनरी के पत्र में उसके शब्दों से विदित होता है (Scillicet ut tuisverbis utar)। हेनरी ने स्पष्टतया आरोप लगाया है कि ग्रेगोरी ने उसे पदच्युत करने की धमकी दी थी। यह इस ग्रन्थ की विषय-वस्तु के बाहर की बात है कि इस प्रश्न पर विचार किया जाए कि कहाँ तक बिशपों की यह मान्यता तर्कसंगत थी या नहीं कि ग्रेगोरी उन पर नए अधिकारों का दावा कर रहा है। निस्सन्देह यह सत्य है कि पोप उत्तरी चर्च की दशाओं को सुधारने के प्रयत्नों में अपनी गतिविधि को एक बड़ी सीमा तक बढ़ा रहा था, किन्तु सैद्धान्तिक रूप में यह कितनी नवीन वृद्धि की परिचायक थी यह दूसरी बात है।

Scanned by CamScanner

हमारा सम्बन्ध यहाँ लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के सम्बन्धों से है, तथा अब वॉर्म्स की परिषद् की कार्यवाही से हट कर रोम में फरवरी में हुई ग्रेगोरी की परिषद् की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस परिषद् में, संत पीटर को सम्बोधित एक स्तुति की पदावली का प्रयोग करके, ग्रेगोरी ने गम्भीरता से हेनरी को धर्म-बहिष्कृत कर दिया, उसे जर्मनी व इटली के सम्राट् पद से पदच्युत कर दिया, तथा सभी प्रजाजनों को उनकी निष्ठा की शपथ से मुक्त कर दिया। उसने यह इन आधारों पर किया कि हेनरी ने ईश्वर की आज्ञा मानने से अस्वीकार कर दिया है, उन लोगों में सम्मिलित हो गया है जो धर्म-बहिष्कृत हैं, तथा उसने चर्च के विभाजन का प्रयत्न किया है, उसने इस अधिकार का दावा संत पीटर के नाम पर किया, जिसे ईसा ने स्वर्ग और धरती पर बाँधने या मुक्ति की शक्ति सौंप दी है।[33]

अंततः संघर्ष एक खुला युद्ध हो गया, तथा यूरोप की सबसे महान् लौकिक सत्ता रोम की धार्मिक सत्ता के विरुद्ध हो गई। अब हमें उन प्रलेखों की परीक्षा करनी है जिनमें हेनरी तथा ग्रेगोरी ने अपने कार्यों का औचित्य सिद्ध किया है। सबसे पहला महत्त्वपूर्ण वक्तव्य जिस पर हमें विचार करना चाहिए ग्रेगोरी को 27 मार्च 1076 को लिखा गया हेनरी का पत्र है, जो उसने सम्भवतः फरवरी में रोम की परिषद् द्वारा अपने धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युति के बारे में सुनकर लिखा था। वह इस पत्र में उसे पोप के रूप में नहीं किन्तु झूँठे साधु हिल्डेब्राण्ड के रूप में सम्बोधित करता है तथा वह उस पर चर्च की सभी न्यायोचित व्यवस्था को भंग करने, तथा बिशपों से अपने गुलाम की भाँति व्यवहार करने का आरोप लगाता है; वह कहता है कि, उसने, धैर्यपूर्वक इन सबको सहन किया, किन्तु हिल्डेब्राण्ड ने उसकी नम्रता को कायरता समझ लिया है, तथा अन्त में राजकीय सत्ता पर आक्रमण किया है जो उसे ईश्वर द्वारा प्रदत है, तथा उससे उसे छीनने की धमकी दी है, मानो हेनरी को राजगद्दी उसी ने दी हो। पवित्र धर्माचार्यों की परम्परा ने यह सिखाया है कि अभिषिक्त राजा का न्याय केवल ईश्वर द्वारा होता है, तथा उसे अपधर्म के अतिरिक्त किसी भी अन्य अपराध के कारण पदच्युत नहीं किया जा सकता। इसलिए वह तथा सभी बिशप आज्ञा देते हैं कि हिल्डेब्राण्ड पोप की गद्दी से उतरे तथा दूसरे के लिए जगह खाली करे।[34] यह पत्र दो महत्त्वपूर्ण दावे या सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। पहला, हेनरी की नियुक्ति ईश्वर द्वारा हुई है, और वह केवल ईश्वरीय न्याय के अधीन है, तथा यदि वह धर्म त्याग करे तभी उसे पदच्युत किया जा सकता है; दूसरा यह कि राजा और बिशपों को पोप का न्याय करने एवं उसे पदच्युत करने का अधिकार है। किन्तु यह अधिकांशतः अस्पष्ट रूप में ही प्रस्तुत किया गया है, तथा इन दावों के आधार एवं परिस्थितियों को स्पष्टतया नहीं बताया गया है।

हेनरी की स्थिति एक दूसरे लेख में अधिक सावधानी से प्रस्तुत की गई है जो वॉर्म्स में विटसनटाइड (Whitsuntide) पर होने वाली परिषद् के लिए बिशपों को सम्बोधित निमंत्रण समझा जाता है। इसमें वह कुछ सावधानी से दोनों सत्ताओं "राजकीय" तथा "धार्मिक" के विभेदक सिद्धान्तों का वर्णन करता है, जिन्हें ईसा ने अपने चर्च में दो तलवारों के रूप में स्थापित किया, और वह इनके पृथक्-पृथक् कार्यों का वर्णन करता है। "धार्मिक"

Scanned by CamScanner

सत्ता को ईश्वर के पश्चात् राजा के प्रति आज्ञापालन प्राप्त करना है तथा "राजकीय" सत्ता को ईसा के शत्रुओं को जीतना है, तथा चर्च के अन्तर्गत मनुष्यों को "धार्मिक" सत्ता की आज्ञापालन के लिए विवश करना है। हिल्डेब्राण्ड इस व्यवस्था को नष्ट करने का प्रयत्न कर रहा था तथा वैसा करते हुए वास्तव में दोनों सत्ताओं की स्थिति एवं शक्ति को नष्ट कर रहा था। प्रासंगिक रूप से वह इसे भी अस्वीकार कर देता है कि ईश्वर ने हिल्डेब्रांड को धार्मिक सत्ता सौंपी है।[35]

हिल्डेब्राण्ड ने अपनी स्थिति को तर्कपूर्ण शब्दों में मेट्स के बिशप हरमन को अगस्त 1076 ई० में भेजे गए एक पत्र में व्यक्त किया। प्रमुख रूप से वह उन लोगों के तर्कों को सम्बोधित कर रहा है जो यह मानते थे कि एक राजा को धर्म-बहिष्कृत करना उचित नहीं है। वह अनेक अधिकृत मत एवं ऐतिहासिक दृष्टान्तों को प्रस्तुत करके सिद्ध करता है कि यह विधि-सम्मत था, तथा वैसा पहले किया भी गया है; वह तर्क देता है कि यह धारणा कि कोई भी व्यक्ति धार्मिक अधिकार-क्षेत्र से मुक्त हो सकता है वास्तविक दृष्टि से मूर्खतापूर्ण है क्योंकि इसका अभिप्राय होगा कि वह चर्च से बाहर है, तथा ईसा से परे है। राजा को धर्म-बहिष्कृत करना न्यायोचित सिद्ध करने के लिए वह पोप जखारियास अभिकथित द्वारा फ्रांस के अन्तिम मेरोविनजियन (Merovingian) राजा की अभिकथित पदच्युति का दृष्टान्त देता है, तथा ग्रेगोरी महान् के पत्र के शब्दों को प्रस्तुत करता है जिसमें उसने अपना निर्णय न मानने वाले राजाओं को न केवल धर्म-बहिष्कार, अपितु पद-हानि की भी धमकी दी थी। सम्भवतः, जब वह कहता है कि पोप का धर्मासन जो ईश्वर द्वारा प्रदत्त सत्ता के कारण धार्मिक मामलों का निर्णय करता है लौकिक विषयों में भी क्यों न निर्णय करे, तो उसका यही अभिप्राय है। कुछ लोग मानते हैं कि राजकीय गौरव बिशप के गौरव से बढ़कर है, वह उसका विरोध करते हुए कहता है कि सत्य इससे ठीक विपरीत है, तथा यह इसकी उत्पत्ति से ही स्पष्ट है; राजत्व का मूल मनुष्य का अहंकार है, जबकि बिशप का पद ईश्वर-निर्मित है। अन्त में वह हेनरी को पाप-मुक्त करने का प्रत्येक व्यक्ति को कठोरता से निषेध करता है: क्योंकि यह पोप के निर्णय के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए।[36]

जर्मनी के श्रद्धालुओं को सम्बोधित तीन सितम्बर के पत्र में, ग्रेगोरी ने अपनी स्थिति तथा दावा किए गए अधिकारों को कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्धनों सहित प्रस्तुत किया। उसने हेनरी को धर्म-बहिष्कृत करने वाली घोषणा की और उनको निर्देशित किया जो कि उस कार्य को करने के आधारों के बारे में एक वक्तव्य चाहते थे, तथा उनको यह समझाने का प्रयत्न किया कि हेनरी का धर्म-बहिष्कार ही नहीं हुआ है अपितु उसे पदच्युत भी कर दिया गया है, तथा सभी व्यक्तियों को उनकी निष्ठा की शपथ से मुक्त कर दिया गया है। वह चाहता है यदि वह (हेनरी) पश्चात्ताप करे तो विशेषतया उसके पिता व माता के कारण उस पर दया की जाए, किन्तु हेनरी को यह जान लेना चाहिए कि चर्च उसके हाथों का खिलौना नहीं, किन्तु उसके ऊपर स्थापित है। यदि वह पश्चात्ताप नहीं करेगा तो दूसरा राजा चुना जाएगा जो ग्रेगोरी के आदेशों का पालन करने की प्रतिज्ञा करेगा, तथा ईसाई धर्म और सम्पूर्ण साम्राज्य के हित में जो-जो कार्य आवश्यक प्रतीत हों करेगा।

Scanned by CamScanner

वह चाहता है कि जिसे वे चुनें उस व्यक्ति तथा उसके चरित्र के बारे में वे उसे सूचना दें, ताकि वह उसके चुनाव और नई व्यवस्था की पुष्टि करे, जैसा कि पवित्र धर्माचार्यों ने पहले भी किया है। अन्ततः वह साम्राज्ञी एग्नेस को की गई किसी शपथ का उल्लेख करता है तथा यदि उन्होंने उसके पुत्र को सम्राट पद से हटाने का निश्चय कर लिया हो तो साम्राज्ञी से और स्वयं (पोप) से उसके उत्तराधिकारी के रूप में चुने गए व्यक्तियों के बारे में राय लेने का आदेश देता है।[37]

यदि हम इन प्रलेखों में विद्यमान सिद्धान्तों एवं दावों को संक्षिप्त करने का प्रयत्न करें, तो हमें प्रतीत होगा कि ग्रेगोरी द्वारा राजा के ऊपर भी आध्यात्मिक-क्षेत्राधिकार प्रयुक्त करने के दावे से तत्काल एवं प्रत्यक्ष रूप से संघर्ष उत्पन्न हुआ। हेनरी को अभिकथित धार्मिक अपराधों का स्पष्टीकरण देने के लिए रोम आने की आज्ञा ही खुले संघर्ष का तात्कालिक कारण थी। ग्रेगोरी की मूलभूत एवं प्रथम मान्यता यह थी कि राजा भी चर्च की धार्मिक-गर्हा का पात्र है, तथा यदि आवश्यकता हो तो, उसे भी धर्म-बहिष्कृत किया जा सकता है। यह स्पष्ट नहीं है कि क्या ग्रेगोरी ने हेनरी को औपचारिक रूप से पदच्युत करने की धमकी दी थी, किन्तु हेनरी ने समझा कि उसने वैसा किया है, चाहे स्पष्ट रूप से हो या अस्पष्ट रूप से। इसीलिए उसने विरोध में दावा किया कि उसे तथा बिशपों को पोप का न्याय करने के लिए बैठने का अधिकार है, तथा, इस दावे के अनुसार काम करते हुए उनके द्वारा वॉर्म्स में ग्रेगोरी को पदच्युत करने की घोषणा की गई। ग्रेगोरी ने इसका उत्तर हेनरी को धर्म-बहिष्कृत तथा ईश्वर तथा स्वयं चर्च के विरोधी के रूप में औपचारिक रूप से पदच्युत करके दिया, तथा विभिन्न तर्कों एवं दृष्टान्तों से अपने कार्यों का औचित्य सिद्ध किया। हेनरी ने इसका उत्तर दो प्रकार से किया : पहला तो इस दावे के रूप में कि राजा केवल ईश्वर के निर्णय के अधीन है, तथा उसे अपधर्म के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से पदच्युत नहीं किया जा सकता, तथा दूसरे, उसने अपने समर्थन में दोनों सत्ताओं की विभिन्नता एवं स्वतन्त्रता की गैलेसियन परम्परा को उद्धृत किया। यह ध्यान देना चाहिए कि मेट्ज़ के बिशप हरमन को लिखे गए पत्र में ग्रेगोरी ने स्पष्ट रूप से इसे अस्वीकार नहीं किया, किन्तु राजा पर धार्मिक सत्ता के दावे की पुष्टि की तथा सम्भवतया यह माना कि उसके अन्तर्गत पदच्युत करने का अधिकार भी सम्मिलित है; उसने स्पष्ट किन्तु महत्त्वपूर्ण शब्दों में, यह मान्यता प्रस्तुत की, कि पवित्र पोप यदि धार्मिक मामलों का निर्णय कर सकता है, तो वह लौकिक वस्तुओं का भी निर्णय कर सकता है। वास्तविक परिस्थिति के विशेष सन्दर्भ में, उसने उस व्यक्ति के बारे में विचार करने एवं स्वीकृति प्रदान करने का भी दावा किया जिसे जर्मन जनता हेनरी के स्थान पर चुने।

इस प्रकार महान् संघर्ष की यह प्रथम सीढ़ी थी, तथा दोनों दलों द्वारा प्रस्तुत किए गए दावों का यह स्वरूप था। अब हमें ऐतिहासिक परिस्थिति के विकास, तथा प्रस्तुत किए गए सिद्धान्तों के उत्तरकालीन विकास का संक्षिप्त विवेचन करना चाहिए।

ऐसा प्रतीत हुआ होगा कि ग्रेगोरी से संघर्ष में हेनरी जर्मनी एवं यहाँ तक जर्मन बिशपों का भी समर्थन प्राप्त कर सका था, किन्तु थोड़े ही समय में स्पष्ट हो गया कि

Scanned by CamScanner

यह सत्य नहीं था। अन्सट्रट् की 1075 ई० की विजय ने सेक्सनों के विद्रोह को दबा कर जर्मनी में हेनरी की सर्वोच्चता स्थापित कर दी, किन्तु 1076 ई० में एक नया तथा व्यापक विद्रोह खड़ा हो गया, तथा थोड़े समय में राजनैतिक स्थिति पूर्णतया बदल गई।

सैक्सनों और सुआबियनों (Suabians) ने खुला विद्रोह कर दिया, और हेनरी तूफान के आगे सिर झुकाने को बाध्य हो गया। इतिहासकारों में घटनाओं के बारे में मतभेद है, किन्तु वे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अनेक प्रश्नों पर एकमत हैं। हेनरी ग्रेगोरी को आत्मसमर्पण करने के लिए बाध्य हुआ, तथा राजाओं ने निश्चय किया कि यदि वह एक वर्ष में पाप-मुक्त नहीं होता है तो वह सम्राट् नहीं रहेगा, उन्होंने पोप को जर्मनी आने का निमंत्रण दिया ताकि संघर्ष समाप्त किया जा सके।[38] हेनरी द्वारा ग्रेगोरी सप्तम तथा जर्मन राजाओं को लिखे पत्रों में उसके समर्पण की घोषणा अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त है।[39]

हेनरी ने विद्रोही राजाओं की शर्तों को स्वीकार कर लिया, तथा वह स्पायर्स को लौट गया, किन्तु अपने धर्म-बहिष्कार की वर्षगांठ से पूर्व पाप-मुक्त होने के महत्त्व को देखते हुए उसने ग्रेगोरी के सम्मुख उपस्थित होने तथा अपने को पाप-मुक्त करने के लिए इटली जाने का निश्चय कर लिया। ग्रेगोरी उसी समय रोम से जर्मनी जाने को रवाना हो चुका था और हेनरी जब आया तब वह केनोसा पहुँच चुका था। हमें केनोसा के दरवाजे पर हेनरी के नंगे पैर खड़े रहने की कथा का वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु उसकी पाप-मुक्ति की शर्तें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ग्रेगोरी सप्तम के पंजिका में हेनरी के द्वारा 28 जनवरी 1077 ई० को की गई तथाकथित प्रतिज्ञाओं का विवरण मिलता है। इसमें हेनरी ने प्रतिज्ञा की कि जर्मन साम्राज्य के आर्चबिशपों बिशपों तथा अन्य राजाओं द्वारा उसके विरुद्ध की गई शिकायतों के बारे में या तो पोप के निर्णय के अनुसार न्याय करेगा, या उसकी राय से पोप द्वारा निश्चित की गई शर्तों के अन्तर्गत शान्ति स्थापित कर लेगा, जबतक कि वह या पोप किसी भी निश्चित बाधा (certum impedimentum) से अवरुद्ध न हो जाय। लेम्बर्ट द्वारा पाप-मुक्ति की शर्तों के विवरण का बहुत थोड़ा ऐतिहासिक मूल्य है, किन्तु हेनरी के कुछ शत्रुओं के दृष्टिकोण के उदाहरण-स्वरूप वह महत्त्वपूर्ण है। उसमें हेनरी को यह प्रतिज्ञा करता हुआ बताया गया कि वह पोप द्वारा निश्चित किए गए समय एवं स्थान पर जर्मन राजाओं की एक परिषद् में उपस्थित होगा, तथा वहाँ अपने ऊपर लगाए आरोपों का उत्तर देगा, वहाँ पर पोप न्यायाधीश का कार्य करेगा, तथा उसके निर्णय के अनुसार हेनरी यदि अपने पर लगाए गए आरोपों से मुक्त हो जाता है तो राजगद्दी बनाए रखेगा, अथवा यदि वे सिद्ध हो जाते हैं तो पद-त्याग देगा, तथा धार्मिक कानूनों के अनुसार राजकीय गरिमा के अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा। उसने प्रतिज्ञा की कि यदि उसे राजा बनाए रखा गया तो वह पोप का अनुयायी तथा आज्ञापालक बना रहेगा, तथा उसके साम्राज्य में बहुत समय से विद्यमान धार्मिक नियमों के विपरीत कुप्रथाओं के सुधार में साहसपूर्वक सहायता करेगा। यदि हेनरी इन प्रतिज्ञाओं को पूरा न करे, तो पाप-मुक्ति अवैध हो जाएगी, तथा राजाओं को दूसरा सम्राट् चुनने का अधिकार होगा।[40]

Scanned by CamScanner

यह स्पष्ट है कि लेम्बर्ट का विवरण न केवल अधिक विस्तृत है किन्तु अधिक सशक्त रूप में अभिव्यक्ति भी है; किन्तु वास्तविकता इससे बहुत भिन्न नहीं है, क्योंकि पंजिका में विद्यमान प्रलेख के अनुसार भी हेनरी ने पोप के निर्णय के सम्मुख समर्पन करने अथवा उसकी मंत्रणा का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा की थी। हमें ग्रेगोरी द्वारा हेनरी के समर्पण की घोषणा करने वाले जर्मन राजाओं को भेजे गए पत्र में विद्यमान परिस्थिति के विवरण तथा इस तथ्य की कि उसके द्वारा वह धर्म-बहिष्कार के दण्ड से मुक्त कर दिया गया है, तुलना करनी चाहिए।[41]

केनोसा में हेनरी का आत्मसमर्पण प्रतीयमानतः सम्पूर्ण था किन्तु सारी परिस्थिति और भी अधिक जटिल हो गई। ग्रेगोरी सप्तम 1080 ई० में हेनरी को धर्म-बहिष्कृत करने की घोषणा में स्पष्टतया कहता है कि, उसने केनोसा में हेनरी को पाप-मुक्त तो कर दिया था, किन्तु उसे उसका साम्राज्य पुनः प्रदान नहीं किया था, और उसके तथा विद्रोही बिशपों एवं राजाओं के मध्य शांति या न्याय स्थापित करने की इच्छा से उसका कार्य प्रेरित था। इन्हीं बिशपों तथा राजाओं ने यह सुनकर कि हेनरी ग्रेगोरी से की गई प्रतिज्ञाओं का पालन नहीं कर रहा हैं, उससे निराश होकर रूडोल्फ को बिना उससे परामर्श किए अपना सम्राट् चुन लिया है (sine meo consilio vobis testibus, elegerunt sibi Rodulfum ducem in regem)[42]

वह पुनः स्पष्टतया एक अदिनांकित पत्र में, जो सम्भवतः 1081 एवं 1084 के बीच लिखा गया है,[43] सुस्पष्ट रूप से इसकी पुनरावृत्ति करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जर्मन राजाओं का कार्य जिन्होंने मार्च 1077 में फॉरखाहम (Forkheim) में रूडोल्फ को चुना, बिना पोप की राय के किया गया था, तथा शीघ्र ही यह स्पष्ट हो गया कि जर्मनी पूर्णतया विभाजित था, तथा रूडोल्फ के निर्वाचन को राष्ट्र के केवल एक वर्ग ने ही स्वीकार किया था। उसी वर्ष (1077) मई के अन्त में हम पाते हैं कि ग्रेगोरी ने जर्मनी के श्रद्धालुओं को सम्बोधित एक पत्र लिखा, जिसमें वह कहता है कि दोनों सम्राटों ने रोम के धर्मपीठ से सहाय-याचना की है, तथा वह जर्मनी जाना चाहता है, ताकि उनकी सहमति से झगड़े को निपटा दे, तथा जो पक्ष दोनों में से न्यायोचित प्रतीत हो उसकी मदद करे। यदि दोनों सम्राटों में से कोई भी उसे आवश्यक अभय-पत्र प्रदान न करे, तो वह धर्म-बहिष्कृत कर दिया जाए; वह ग्रेगोरी महान् के शब्दों को उद्धृत करता है, जिनमें कहा गया है कि जो राजा प्रेरितिक धर्मासन के विरुद्ध काम करे उनकी गरिमा समाप्त कर दी जाय, तथा मेट्ज के हरमन को लिखे गए पत्र में प्रयुक्त शब्दों को दोहराता है कि यदि पीटर की धर्मपीठ धार्मिक मामलों में निर्णय कर सकती है तो पार्थिव व लौकिक मामलों में तो और भी अधिक निर्णय करने में समर्थ है। वह उन्हें विश्वास दिलाते हुए उपसंहार करता है कि उसने किसी राजा से कोई प्रतिज्ञा नहीं की है तथा वह न्यायोचित को छोड़कर कोई भी अन्य कार्य नहीं करेगा।[44]

ग्रेगोरी के उसी तारीख के अपने प्रतिनिधियों को लिखे गए निर्देश पत्र में भी उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन है, किन्तु अधिक विस्तृत रूप में। उनको दोनों सम्राटों से जर्मनी में

Scanned by CamScanner

पोप के लिए सुरक्षित यात्रा की माँग करनी है, क्योंकि वह उन दोनों के मध्य विवाद का निपटारा जर्मन पादरियों एवं ईश्वर-भीरु अयाजन-वर्ग की राय से करना चाहता है, तथा न्याय किस पक्ष के समर्थन में है इसकी घोषणा करना चाहता है। वे जानते हैं कि चर्च के गंभीर विषयों का निर्णय पोप की गद्दी का दायित्व है, तथा यह मामला इतना भारी तथा खतरनाक है कि यदि वह इसकी उपेक्षा करेगा तो समस्त चर्च दारुण क्षति-ग्रस्त हो जाएगा। इसलिए दोनों सम्राटों में से कोई भी यदि उसके लक्ष्य या उनकी प्रयोजन सिद्धि में बाधा दे तो उनको चाहिए कि वे उसे राज्य से वंचित कर दें तथा उसके समर्थकों को चर्च की संगति से बहिष्कृत कर दें, तथा जो राज्य में ग्रेगोरी की आज्ञा पालन करे, उसकी पुष्टि के लिए, तथा पादरियों एवं अयाजक दोनों को निष्ठापूर्वक उसकी सेवा करने का निर्देश देने के लिए पादरियों तथा अयाजक वर्ग की एक सभा आहूत करे।[45]

ग्रेगोरी सप्तम की पंजिका में कई प्रलेख हैं जो 1078 ई० की घटनाओं का विकास प्रदर्शित करते हैं। फरवरी 27 से 3 मार्च तक रोम की परिषद् की पुष्टिकृत कार्यवाही से पता चलता है कि यह निश्चय किया गया कि, जर्मनी में गंभीर मतभेदों के कारण उत्पन्न हुए चर्च के खतरे के कारण सभी धार्मिक व्यक्तियों को चाहे वे पादरी हों या अयाजक अपने प्रतिनिधि एक परिषद् के लिए भेजने को कहा गया है ताकि उनकी मदद से या तो शांति स्थापित हो सके, या यह जाना जा सके कि न्याय किस पक्ष की ओर है, तथा उसे पोप-सत्ता की सहायता दी सके।[46] ग्रेगोरी का एक पत्र जो जर्मनी के सभी कोटि के व्यक्तियों को सम्बोधित है, परिषद् के निर्णय की घोषणा करता है तथा सबसे शांति के लिए प्रयत्न करने का अनुरोध करता है।[47] 1 जुलाई को ग्रेगोरी ने पुनः सभी जर्मन पादरियों एवं अयाजकों को जर्मनी में उसके दूतों की उपस्थिति में हेनरी एवं रूडोल्फ के बीच निर्णय के लिए होने वाली परिषद् के विषय में लिखा।[48]

फरवरी 1079 में हेनरी तथा रूडोल्फ दोनों के दूत रोम की एक परिषद् में उपस्थित हुए, तथा पंजिका में उनके द्वारा अपने स्वामियों की ओर से की गई प्रतिज्ञाएँ अंकित हैं। हेनरी के दूतों ने शपथ ली कि न्यायोचित कारण बाधक न हो तो स्वर्गारोहण दिवस (Ascension Day) के पूर्व ही वे पोप के दूतों को जर्मनी ले जाने के लिए आएँगे, तथा हेनरी न्याय तथा उनके निर्णय के अनुसार सभी बातों में आज्ञा पालन करेगा। रूडोल्फ के दूतों ने शपथ ली कि यदि पोप के आदेशानुसार जर्मनी में परिषद् की बैठक हुई तो, वह स्वयं उपस्थित होगा या उसके बिशप तथा अन्य विश्वसनीय व्यक्ति उपस्थित होंगे, और वह राजत्व के बारे में रोमन चर्च का निर्णय स्वीकार करने को तैयार रहेगा, वह परिषद् की बैठक के मार्ग में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करेगा तथा पोप के प्रतिनिधियों की उपस्थिति के लिए जो भी संभव हो करेगा।[49]

अतः परिषद् ने जर्मनी में प्रतिनिधि भेजने का निर्णय किया जो कि पादरियों एवं अयाजकों की एक संयुक्त सभा बुलाएँगे, जो या तो शांति स्थापित करेगी या उन लोगों के विरुद्ध जो संघर्ष के कारण हैं, धार्मिक विधि के आधार पर निर्णय करेगी तथा घोषणा की कि कोई भी व्यक्ति जो प्रतिनिधियों के कार्य में बाधा देगा, अथवा जब शांति वार्ता चल रही हो युद्ध करेगा, धर्म-बहिष्कृत कर दिया जाएगा।[50]

Scanned by CamScanner

ग्रेगोरी ने सुआबिया के रूडोल्फ को सम्बोधित उसी मास के एक पत्र में इसी निर्णय का उल्लेख किया है। वह उसे विश्वास दिलाता है, कि यद्यपि हेनरी चतुर्थ के दूत उससे अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए निरन्तर आग्रह करते रहे हैं, किन्तु उसने दृढ़ निश्चय किया है कि वह केवल न्यायोचित का अन्वेषण तथा उसका ही समर्थन करेगा। एक दूसरे पत्र में, रूडोल्फ तथा उसके पक्ष के बिशपों एवं राजाओं को वह उनका धर्म की सत्यता एवं अपनी स्वतन्त्रता के लिए डटे रहने का आह्वान करता है; किन्तु उन विधानों की जानकारी के लिए, उनका ध्यान अपने प्रतिनिधियों एवं पत्रों की ओर आकृष्ट करता है जो जर्मन साम्राज्य में शान्ति स्थापित करने के लिए रोम की परिषद् के द्वारा लिए गए थे।[51] यह दूसरा पत्र ग्रेगोरी की निष्पक्षता के दावे से आसानी से मेल नहीं खाता।[52] उसी वर्ष अक्टूबर के प्रारम्भ में लिखे गए दो पत्र ग्रेगोरी की स्थिति को भलीभांति स्पष्ट करते प्रतीत होते हैं। एक जर्मनी में उसके दूतों को लिखा गया है, तथा उसमें कहा गया है कि उसे शिकायतें मिली हैं कि वे उसके निर्देशों का पालन नहीं कर रहे हैं, और, यद्यपि वह उन शिकायतों को सत्य नहीं समझता, तथापि वह उन्हें अत्यन्त सावधानी बरतने की चेतावनी देता है, ताकि वे किसी प्रकार इस सन्देह का अवसर प्रदान न करें कि वे एक दल के पक्ष में अधिक झुके हैं, क्योंकि उसने न्याय को छोड़कर किसी अन्य पक्ष का अवलम्बन न करने का निश्चय किया है। यह महत्त्वपूर्ण है कि उसने उनको किसी आर्चबिशप या बिशप पर, जिस पर अयाजक "प्रतिष्ठापन" प्राप्त करने का आरोप हो, कोई निर्णय देने का प्रबल निषेध किया है तथा कहा है कि वे तुरन्त उसे सूचित करें यदि राजा (हेनरी) ने साम्राज्य में पुनः शान्ति स्थापनार्थ किसी सम्मेलन को बुलाने का उनके साथ कोई समझौता किया हो।[53] दूसरा पत्र जर्मनी के श्रद्धालुओं को सम्बोधित है। वह कहता है कि उसने सुना है कि यह शिकायत है कि वह लौकिक आकाशगमिता (Seculari levitate), के पक्ष में आचरण कर रहा है किन्तु वह उनको विश्वास दिलाता है कि उससे अधिक किसी की भी हानि नहीं हुई है। लगभग सभी जनसाधारण हेनरी चतुर्थ के पक्ष में हैं तथा उस पर अशिष्टता एवं उसके प्रति धर्म (Hietas) हीनता का आरोप लगा रहे हैं। उसने अभी तक इस दबाव का प्रतिरोध किया है तथा जहाँ तक समानता एवं न्याय की माँग है वह किसी भी पक्ष की ओर नहीं झुका है। यदि उसके प्रतिनिधियों ने वैसा किया है तो उसका उसे खेद है, किन्तु उन्होंने भी उग्र दबाव, या धोखे में आकर वैसा किया होगा।[54]

मार्च 1080 ई० में ग्रेगोरी सप्तम एवं हेनरी चतुर्थ के बीच में पूर्ण मतभेद हो गया, तथा ग्रेगोरी ने पुनः हेनरी को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत करके रूडोल्फ को राजा स्वीकार कर लिया। ग्रेगोरी ने यह घोषणा रोम की एक परिषद् में की, जिसमें उसने कैनोसा से लेकर अब तक की घटनाओं तथा अपने कार्य का संक्षिप्त विवरण दिया है। उसने घोषणा की कि यद्यपि उसने कैनोसा में हेनरी को पापमुक्त कर दिया था, तथापि उसने उसे राजत्व पुनः प्रदान नहीं किया था, तथा न्याय करने एवं उसमें तथा उसके विरुद्ध विद्रोह करने वालों के बीच शान्ति स्थापित करने को कृत-निश्चय था। रूडोल्फ का निर्वाचन उसकी राय के बिना किया गया था, किन्तु उसने हेनरी की प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया

Scanned by CamScanner

था कि रूडोल्फ के विरुद्ध उसकी सहायता करे। अन्त में, दोनों राजाओं ने उससे न्याय करने को कहा, तथा उसने घोषणा की थी कि जर्मनी में एक सभा हो जो या तो यह निश्चय करे कि न्याय किस पक्ष की ओर है अथवा शान्ति स्थापित कर दे, क्योंकि वह जानता था कि जो पक्ष दोषी होगा वह सभा को रोकने का प्रयत्न करेगा, उसने, जो यह प्रयत्न करे उसे भी धर्म-बहिष्कृत कर दिया था। हेनरी तथा उसके समर्थकों ने सभा को रोक दिया है, अतः ईश्वर एवं पवित्र कुमारी के न्याय एवं करुणा पर विश्वास करके, वह उसे तथा उनको धर्म-बहिष्कृत करता है, ईश्वर तथा परिषद् के नाम पर हेनरी को जर्मनी एवं इटली के सम्राट पद से पदच्युत करता है, सभी ईसाई लोगों को उसकी आज्ञा मानने से निषेध करता है, तथा उनको आज्ञापालन की उस शपथ के बन्धन से मुक्त करता है जो उन्होंने ली है अथवा भविष्य में लेने वाले हैं। उसने गम्भीरता पूर्वक रूडोल्फ को जर्मन साम्राज्य का शासक बनाया जिस पर जर्मनों ने उसे चुना है, तथा उन सबको जो निष्ठापूर्वक उसकी आज्ञापालन करें पापों से मुक्ति तथा इस लोक और परलोक में परिषद् की ओर से आशीर्वाद प्रदान किए। अन्त में उसने परिषद् के सदस्यों को इस प्रकार कार्य करने के लिए आह्वान किया जिससे सारा विश्व यह जान सके कि उनके पास स्वर्ग में बाँधने या मुक्त करने की शक्ति है, इस तरह वे राज्य, प्रदेश तथा मनुष्यों की दूसरी सम्पत्तियाँ मनुष्यों के गुणों के अनुसार प्रदान अथवा ग्रहण कर सकते हैं। दुनियां के सम्राट एवं राजा जान लें कि उनकी शक्ति कितनी महान है, तथा चर्च की आज्ञा का उल्लंघन करने से भयभीत हों।[55]

इस वक्तव्य में निहित सिद्धान्तों पर ध्यान देना बहुत महत्त्वपूर्ण है। पहला तो ग्रेगोरी का दावा कि जिस सभा को अपने तथा रूडोल्फ के बीच विवाद को सौंपने की उसने प्रतिज्ञा की थी उसमें बाधा उत्पन्न करने पर उसे हेनरी को धर्म-बहिष्कृत करने तथा पदच्युत करने का अधिकार है। दूसरे, वह जर्मन साम्राज्य पर रूडोल्फ को नियुक्ति प्रदान करने की स्वीकृति के अधिकार का दावा करता है, लेकिन यह दृष्टव्य है कि वह यह कहने की सावधानी बरतता है कि जर्मनों ने उसे चुना है। तीसरे, वह रोम की परिषद् को इस कार्य में अपने साथ सम्मिलित कर लेता है। चौथे, वह परिषद् से अनुरोध करता है कि उनको स्पष्ट कर देना चाहिए कि उनको मनुष्यों की योग्यता के अनुसार राजनीतिक सत्ता प्रदान करने या छीन लेने का अधिकार है। ये दावे ग्रेगोरी के द्वारा 1076 ई० में किए गए दावों से कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर हैं। तब उसने हेनरी को चर्च के विरुद्ध एक निश्चित एवं सुविचारित विद्रोह के कारण, पोप का न्याय करने एवं उसे पदच्युत करने की धृष्टता के कारण, धर्म-बहिष्कृत किया था; अब उसने हेनरी को जर्मनी के राजनीतिक मामलों के निर्धारण में पोप की सत्ता को स्वीकार न करने के कारण पदच्युत किया था। किन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि जैसा हम देख चुके हैं ग्रेगोरी यह स्मरण दिलाने की सावधानी रखता है कि दोनों पक्षों ने उससे उनके बीच निर्णय करने की प्रार्थना की है, तथा उसके निर्णय को स्वीकार करने की शपथ ली है। तथापि ग्रेगोरी की घोषणा के अन्तिम वाक्यांश एक विस्तृत एवं व्यापक शब्दावली में इस दावे को प्रस्तुत करते हैं कि चर्च को राजनीतिक सत्ता प्रदान करने अथवा छीनने का अधिकार है।

Scanned by CamScanner

ग्रेगोरी के कार्य के तुरन्त बाद हेनरी की कार्यवाही प्रारम्भ हो गई, उसने ब्रिक्सेन में एक परिषद् बुलाई जिसने हिल्डेब्राण्ड को पोप की गद्दी से पदच्युत करने की घोषणा की। उन्होंने अपने कार्य का औचित्य इस आरोप से सिद्ध किया कि उसका निर्वाचन बल-प्रयोग से पोप निकोलस के आदेश-पत्र का उल्लंघन करते हुए हुआ था, उसमें सम्राट की सहमति की भी आवश्यकता थी, तथा साथ ही यह भी आरोप लगाया कि उसने चर्च की सम्पूर्ण व्यवस्था एवं साम्राज्य की शान्ति को भंग किया था। तब उन्होंने रेवेन्ना के आर्चबिशप ग्यूबर्ट को पोप चुना।[56]

फरवरी 1081 में रोम की एक परिषद् में ग्रेगोरी ने हेनरी तथा उसके समर्थकों के धर्म-बहिष्कार का पुनः नवीनीकरण कर दिया, तथा मार्च में उसने मेट्ज के बिशप हर्मन को सम्बोधित एक-दूसरे पत्र में अपने कार्यों का विस्तारपूर्ण औचित्य प्रस्तुत किया। इस पत्र में उसने अगस्त 1076 के पत्र में वर्णित अनेक आधारों को दोहराया है, किन्तु इस पत्र में सिद्धान्तों का अधिक वर्णन तथा निष्कर्षों की अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति की गई है। वह इस तर्क के खण्डन से प्रारम्भ करता है कि रोम के धर्मपीठ को राजाओं को धर्म-बहिष्कृत करने तथा उनकी प्रजा को उनकी प्रतिनिष्ठा की शपथ से मुक्त करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वह धर्म-ग्रन्थों एवं धर्माचार्यों की सत्ता के विपरीत है। वह ईसा द्वारा स्वर्ग तथा पृथ्वी दोनों स्थानों पर संत पीटर को बाँधने एवं मुक्त करने का अधिकार देने वाले शब्दों को, तथा ग्रेगोरी महान एवं अन्य लेखकों के अनेक लेखांशों को उद्धृत करता है तथा यह पूछता है कि जिसे स्वर्ग को खोलने एवं बन्द करने का अधिकार है, वह पृथ्वी पर निर्णय भी न कर सके यह कहाँ तक संगत है। सभी पार्थिव सत्ताएँ जो मनुष्य निर्मित हैं उस सत्ता के अधीन हैं, जिसे स्वयं ईश्वर ने बनाया है। उन शब्दों में जिन्हें प्रायः उद्धृत किया जाता है वह लौकिक सत्ता के अधम एवं पापपूर्ण जन्म का उल्लेख करता है : सम्राट तथा राजाओं का जन्म उन मनुष्यों से हुआ है, जो अभिमान, लूटखसोट, विश्वासघात तथा हत्या में तथा शैतान के निर्देश में अपने समवर्गीय लोगों के स्वामी बनने की असहनीय तथा अंधी लालसा करते हैं।[57] इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता है कि ईसा के पुरोहित सभी निष्ठावानों के स्वामी तथा आचार्य हैं। वह कॉन्सटेन्टाइन की विनम्रता का उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो नाइस की परिषद् में तुच्छतम बिशप से भी, यह कहते हुए कि वह उनका निर्णय नहीं कर सकता, नीचे बैठा था, परन्तु उनको देवता बताते हुए उसने कहा था कि वे उसके निर्णय के अधीन नहीं किन्तु वह उनके निर्णयों के अधीन है। वह जिलेसियस के शब्दों को भी उद्धृत करता है, जिनमें यह घोषणा की गई है कि पादरी का भार अधिक है, क्योंकि अन्तिम निर्णय के दिन उनको ईश्वर के सम्मुख राजा का भी लेखा देना होगा। इन अधिकारों के अन्तर्गत विभिन्न पोपों ने राजाओं तथा सम्राटों को पुराने समय में धर्म-बहिष्कृत अथवा पदच्युत किया था, तथा वह विशेषतया पोप इन्नोसेन्ट प्रथम द्वारा सम्राट आर्केडियस की पदच्युति तथा पोप जकारियास प्रथम द्वारा अन्तिम मेरोविंजियन सम्राट की पदच्युति तथा संत अम्ब्रोस द्वारा थियोडोसियस के धर्म बहिष्कार का उल्लेख करता है। अन्त में वह अनुरोध करता है कि किसी भी अच्छे ईसाई को राजा मान लेना अच्छा है बजाय इसके कि किसी क्रूर राजपुत्र को स्वीकार किया

Scanned by CamScanner

जाए। बहुत थोड़े राजा ऐसे हुए हैं जो वास्तव में धार्मिक थे, जबकि संत पीटर ने अपने उत्तराधिकारियों की अविच्छिन्न पवित्रता प्रदान की है। जिनको चर्च राजा या सम्राट का पद सौंपे उन्हें विनीत होना चाहिए, उनको ईश्वर के प्रति सम्मान रखना चाहिए, तथा न्याय करना चाहिए।[58]

ग्रेगोरी सप्तम तथा हेनरी चतुर्थ के बीच अन्तिम विच्छेद हुआ ही था, तथा ग्रेगोरी ने रूडोल्फ को औपचारिक रूप से सम्राट् माना ही था, कि अक्टूबर 1080 ई० में एल्सटर के युद्ध में लगे घावों के कारण रूडोल्फ की मृत्यु होने से एक नई स्थिति उत्पन्न हो गई। इस परिस्थिति के बारे में ग्रेगोरी का दृष्टिकोण 1071 ई० में पासाऊ के बिशप आल्टमान (Altamann) को लिखे गए एक पत्र में स्पष्टतया उल्लिखित है। अपने दावों तथा माँगों को कम करने के बजाय वह उनको अधिक स्पष्टतया व्यक्त करता है तथा उनको और भी अधिक बढ़ा देता है। वह बिशपों से कहता है कि रूडोल्फ की मृत्यु के पश्चात् उस पर निष्ठा रखने वाले लगभग सभी लोगों ने हेनरी को स्वीकार करने की उससे प्रार्थना की, जो कि उसके पक्ष में अनेक सुविधाएँ देने को राजी था। उन्होंने आग्रह किया कि लगभग सभी इटली वासी उसके पक्ष में है, तथा यदि हेनरी इटली पर आक्रमण करे तो ग्रेगोरी को जर्मनी से विशेष सहायता की आशा नहीं करनी चाहिए। ग्रेगोरी ने इन आशंकाओं तथा परामर्शों को निस्संकोच अस्वीकार कर दिया। स्पष्टतया उनके मन में इसके अतिरिक्त कोई विचार नहीं था कि रूडोल्फ के स्थान पर दूसरा राजा चुना जाय, तथा तात्कालिक खतरे का विचार करने के बजाय वह इसके बारे में अधिक व्यग्र था कि निर्वाचित व्यक्ति योग्य हो। वह आग्रहपूर्वक कहता है कि रूडोल्फ के उत्तराधिकारी के निर्वाचन में अनावश्यक शीघ्रता नहीं की जाए; यह अधिक अच्छा है कि अयोग्य या अक्षम व्यक्ति को चुनने की अपेक्षा निर्वाचन में कुछ देरी ही हो जाए। चर्च किसी ऐसे व्यक्ति को स्वीकार न करेगा जो कि उसके प्रति आज्ञाकारी तथा उपयोगी न हो। तदनन्तर वह निश्चित तथा महत्त्वपूर्ण शब्दों में, उस शपथ को निरूपित करता है जिसकी निर्वाचित राजा से वह अपेक्षा करेगा। उसे शपथ लेनी होगी कि वह संत पीटर तथा उसके प्रतिनिधि पोप ग्रेगोरी के प्रति निष्ठावान रहेगा, तथा पोप जो भी उसको आज्ञा देगा सच्ची आज्ञाकारिता के नाम पर वह निष्ठापूर्वक उसका पालन करेगा। वह पोप से चर्चों की व्यवस्था के बारे में, सम्राट् कॉन्सटेन्टाइन द्वारा चर्चों को दी गयी भूमि तथा राजस्व के सम्बन्ध में, दूसरों के द्वारा पोप की गद्दी को सौंपे गए चर्चों एवं उनकी सम्पदा के बारे में, इस प्रकार समझौता करेगा कि वह धर्मद्रोह तथा अपनी आत्मा के विनाश के भय से सर्वथा मुक्त रहे। पहली बार जब वह पोप से भेंट करे, तो वह स्वयं संत पीटर एवं पोप का सैनिक बन जाए। ग्रेगोरी अन्य विस्तार की बातों को बिशपों के द्वारा तय करने को छोड़कर, आज्ञापालन एवं निष्ठा की पूरी और सुनिश्चित प्रतिज्ञा पर बल देता है।[59]

ये वाक्य ग्रेगोरी द्वारा कम से कम जर्मन साम्राज्य के बारे में अब तक किए गए दावों से, अधिक विस्तृत दावों के परिचायक हैं, क्योंकि उनके द्वारा अपेक्षित शपथ के अंतिम शब्दों का अभिप्राय सम्भवतः यही माना जा सकता है कि राजा अपने को रोमन धर्मपीठ का सामन्त मानता है। और यदि यह अनिश्चित भी हो कि उनका इतना सुनिश्चित अर्थ

Scanned by CamScanner

अभिप्रेत अर्थ था, तो भी सम्पूर्ण शपथ आज्ञा-पालन के चरम दावे की परिचायक है।

जर्मनी में दोनों पक्षों की वार्ता शीघ्र ही टूट गई, तथा हेनरी के विरोधियों ने साल्म के हर्मन (Hermann of Salm) को राजा चुना, और वह 26 दिसम्बर 1081 ई० को अभिषिक्त हुआ। इस समय से मई 1085 ई० में ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु के समय तक ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण हम यहाँ नहीं देंगे, क्योंकि इन वर्षों के नाटकीय तथा महान घटनाओं से परिपूर्ण होने पर भी, साम्राज्य तथा पोप के सम्बन्धों के बारे में कोई नया सिद्धान्त प्रकाश में नहीं आया।

इस प्रकार हमने ग्रेगोरी सप्तम के लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के सम्बन्धों के बारे में दावों के स्वरूप एवं सिद्धान्तों पर, जैसे वे ऐतिहासिक घटनाओं एवं उनके अपने ही शब्दों में व्यक्त होते हैं, विचार किया, किन्तु हम उनके वास्तविक एवं स्थायी महत्त्व का मूल्यांकन अधिक पूर्णता से कर सकें इसके लिए अब हमें तत्कालीन एवं बाद के वर्षों के साहित्य में उनकी आलोचना तथा व्याख्या का परीक्षण करना चाहिए।

सन्दर्भ

1. Cf. Vol. 1. pp. 148 and 255.
2. Stephen of Tournai, 'Summa', p. 198.
3. Cf. p. 9.
4. Leo IX., 'Ep'., 100, 13.
5. Cf. Vol. i. pp. 288–89.
6. Peter Damian, 'Ep'., Bk. III., 6.
7. Id., 'Opusc'., 23, I.
8. Cf. pp. 45–48, and vol. ii. pp. 206–209.
9. Humbert, 'Adversus Simoniacos', iii. 9., M. G. H., 'Lib. De Lite', vol. i.
10. Siegfried of Maintz, 'Mon. Bambergensia', p. 65.
11. Id. id., p. 69.
12. Greg. vii., 'Registrum', i. 29, (a).
13. देखें, भाग 2 अध्याय 1।
14. Greg. VII., 'Registrum', i. 35.
15. Id. id., ii. 5.
16. Id. id., ii. 18.
17. Id. id., i. 63.
18. Cf. vol. i. pp. 282-287.
19. Lambert of Hersfeld,'Annales',(a),1073
20. Gregory VII., 'Registrum', i. 9.
21. Id. id., i. 21.
22. देखें, भाग 2, अध्याय 2।
23. Gregory VII., 'Registrum' i. 39.
24. Id. id., i. 85.
25. Id. id., ii. 30.
26. Id. id , ii. 31,
27. Id. id., iii. 7.
28. Id. id., iii. 10.
29. Lambert, 'Annales', 1076 (M. G. H. S. S., vol. 5, p. 241).
30. M. G. H., Legum, Sect. IV., Constitutiones, vol. i. 58.
31. Id. id., 60.
32. Id id. 61.
33. Gregory VII., 'Reg'., iii. 10. (a).
34. M. G. H., Legum, Sect. IV., Const., vol. i. 62.
35. Id. id., 63.
36. Gregory VII., Reg.. iv. 2.
37. Id. id., Reg., iv. 3.
38. Berthold, 'Annales', a. 1076.
39. 'Mon. Bambergensia', pp. 110. 111.
40. Gregory VII., 'Registrum', iv. 12, a.
41. Gregory VII., 'Registrum', iv. 1.2
42. Id. id., vii. 14 a. cf. p. 201.
43. Id. id., viii. 51.
44. Id. id., iv. 24.
45. Id. id., iv. 23.

Scanned by CamScanner

46. Id. id., v. 14, a.
47. Id., v. 15.
48. Id., vi, 1.
49. Id. id., vi. 17, a.
50. Id., 'Epistolae Collectae', 25.
51. Gregory VII, 'Epistoloe Collectae', 26.
52. Mr. Z. Brooke of Caius College, Cambridge, tells me that he has some doubts about the date of this letter.
53. Gregory VII,, 'Epistolae Collectae', 31.
54. Gregory VII., 'Epistolae Collectae', vii, 3.
55. Gregory VII., 'Epistolae Collectae', vii. 14, a.
56. M. G. H., Legum, Sect. IV., 'Constitutiones', vol. i., No. 70.
57. For a full discussion of the significance of the phrase, of, vol. iii pp. 91–98.
58. Gregory VII., 'Registrum', viii, 21.
59. Greg. VII., 'Reg'., viii. 26.

Scanned by CamScanner

द्वितीय अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों एवं दावों का विवेचन-1

हम पिछले अध्यायों में यह बता चुके हैं कि ग्रेगोरी सप्तम के पदारोहण से पूर्व भी सुधारवादी दल के पादरियों के लेखों में प्रायः ऐसे वक्तव्यों का पूर्णतः अभाव नहीं है जो इस परिकल्पना की ओर संकेत करते हों कि चर्च अथवा पोप के पास एक ऐसी सत्ता थी जो, कुछ अर्थों में, सभी लौकिक सत्ताओं से सर्वोच्च थी, किन्तु यह कहना कठिन है कि यथार्थ रूप में इन लेखकों द्वारा इन शब्दों को क्या निश्चित अर्थ प्रदान किया गया है। ग्रेगोरी सप्तम के पदारोहण से यह सब बदल गया; जैसा हम देख चुके हैं, उसने न केवल सामान्य सिद्धान्तों को व्यक्त ही किया, अपितु उनको निश्चित एवं सुस्पष्ट कार्यों में परिणत किया, या संभवतः यह कहना अधिक उचित होगा कि उसने कुछ ऐसे कार्य किए या करने की धमकी दी जिनमें कुछ सामान्य सिद्धान्त अन्तर्निहित से थे, तथा जिनके द्वारा अनुकरण करने वाले कुछ सामान्य सिद्धान्तों एवं नीतियों के बारे में आंशिक रूप से अभिज्ञ हो गए। तथापि हमें यह नहीं मानना चाहिए कि ग्रेगोरी के मस्तिष्क में भी ये एक तार्किक रूप से विकसित तथा सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था के रूप में थे, न हमें यह मानना चाहिए कि वे व्यक्ति भी जो उसके दृढ़ तथा अविच्छिन्न समर्थक थे, वास्तव में उसके सिद्धान्तों का सभी अर्थों में पूर्णतया अनुकरण करते थे। हमें न तो तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी के उग्रवादी पोपपक्षीय सिद्धान्तों को और न तेरहवीं शताब्दी की तर्कपूर्ण विचार प्रणाली को ग्यारहवीं शताब्दी में ढूंढने की गलती करनी चाहिए। अतः अब हमें ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों तथा दावों की समकालीन आलोचना या समर्थन का न्यूनाधिक रूप में अध्ययन करना चाहिए, तथा यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि धार्मिक एवं लौकिक सत्ता के सम्बन्धों के विषय में क्या कल्पनाएँ, संघर्ष के दौरान विकसित हुई थीं।

इसके प्रारम्भिक अवस्था का बहुत थोडा साहित्य उपलब्ध होता है, किन्तु सौभाग्य से कान्सटेन्स के विद्यालय के प्रधान अधिकारी बर्नार्ड तथा "क्रानिकल" के लेखक किन्हीं बर्नाल्ड तथा अदलबर्ट के बीच हुए पत्राचार में यह सुरक्षित है। यह पत्राचार 1076 ई० का माना जाता है, तथा इसके लेखक यद्यपि उस समय भी ग्रेगोरी के समर्थक थे, तथापि

Scanned by CamScanner

इसमें उनका स्वर अपने उत्तरकालीन लेखों से, जिनका हम अभी उल्लेख करेंगे कहीं भिन्न है। अदलबर्ट तथा बर्नाल्ड ने बर्नार्ड को ग्रेगोरी सप्तम द्वारा कुछ व्यक्तियों को धर्म-बहिष्कृत करने के स्वरूप के औचित्य के बारे में सम्मति लेने को लिखा है, जिन व्यक्तियों को वे "publicos et contumaces apostolicae sedis prescriptores" कहते हैं, जिसका सम्भवतः अर्थ है, जिन्होंने 1076 ई० की वॉर्म्स की परिषद् में भाग लिया है; साथ ही वे धर्म-विक्रयी तथा धर्म-बहिष्कृत व्यक्तियों द्वारा किए गए संस्कारों के बारे में भी उसकी राय पूछते हैं। हम बर्नार्ड के उत्तर का विस्तृत विवेचन नहीं कर सकते, किन्तु उसमें हमारे काम के कई महत्त्वपूर्ण सूत्र उपलब्ध होते हैं।

बर्नार्ड पहले यह कहता है कि पोप का पद सर्वोच्च है, तथा उसकी सर्वोच्चता उस पर बैठने वाले व्यक्ति की योग्यता एवं अयोग्यता पर निर्भर नहीं है; यद्यपि रोम का धर्मासन सर्वोच्च पद है तथापि पोप ने यदाकदा अपनी प्रजाओं को प्रबोधन की अनुमति दे रखी थी, क्योंकि वे विधि के शासन के अधीन तथा शास्त्रानुसार रहना चाहते थे। वह यह नहीं कहता कि ग्रेगोरी की कार्य-प्रणाली अनियमित है किन्तु उसका विषय-विवेचन यह सुझाता है कि इसमें उसे थोड़ा संदेह था।[1] वह ग्रेगोरी के पोप-पद के कार्यकाल के बारे में इस आपत्ति पर भी विचार करता है, कि उसने इस शपथ से अपने को बाँध लिया था कि वह सम्राट् की स्वीकृति के बिना उस पद को स्वीकार नहीं करेगा। बर्नार्ड इस कथन का खण्डन नहीं करता, किन्तु तर्क देता है कि यह सत्य भी हो तो भी रोमन चर्च को स्वतंत्र चुनाव के अपने अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

बर्नाल्ड तथा अदलबर्ट बर्नार्ड को प्रेषित अपने उत्तर में उसका मत स्वीकार कर लेते हैं कि पोप की प्रजाएँ उसे प्रबोधित कर सकती हैं, जैसा पीटर को पॉल ने किया था, तत्पश्चात् वे वॉर्म्स और रोम की परिषदों की महत्त्वपूर्ण कार्यवाही का विवरण देते हैं जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। वे वॉर्म्स की कार्यवाही की कठोरतम शब्दों में निन्दा करते हैं, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि वे इस प्रश्न के बारे में स्पष्ट नहीं है कि क्या पोप विधिवत् आहूत चर्च की परिषद् के निर्णयाधीन है अथवा नहीं। वे वास्तव में अनेक प्रामाणिक व्यक्तियों के मतों को उद्धृत करते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि रोम का पोप किसी के निर्णयाधीन नहीं है, विशेषतः रोम की धर्मसभा की कार्यवाही का उल्लेख करते है, जिसने पोप साईमाकस (Symachus) के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का विचार करने से अस्वीकार कर दिया था तथा उनको ईश्वरीय निर्णय के लिए छोड़ दिया था; किन्तु वे अपधर्म के मामले को अपवाद मानते प्रतीत होते हैं, और वे इस पर बल देते हैं कि ग्रेगोरी सप्तम ने बारम्बार इस बात से सहमति प्रकट की थी कि रोम में अथवा अन्य किसी स्थान पर एक परिषद् हो जो उसकी नियुक्ति तथा आचरण की परिस्थितियों पर विचार करे तथा यदि वह पद-त्याग के योग्य सिद्ध हो तो वह पोप की गद्दी से उतर जाएगा।[2] यह विदित नहीं होता कि उनके द्वारा यह वक्तव्य किस आधार पर दिया गया था। इसकी पुष्टि करने वाला कोई भी अन्य प्रमाण नहीं है। हमारे लिए इसका महत्त्व इस तथ्य में है कि जो व्यक्ति ग्रेगोरी के समर्थक थे उन्होंने ऐसा कहा था। लेखक तत्पश्चात् 1076 ई० में रोम की परिषद् की कार्यवाही का, विशेषतः हेनरी चतुर्थ के धर्म-बहिष्कार तथा पदच्युति

Scanned by CamScanner

का वर्णन करते हैं, तथा यह मानते हैं कि इस धर्म-बहिष्कार को वैधानिक रूप में लागू करने में कोई संशय नहीं हो सकता है, क्योंकि उसे अनेक बार चेतावनी दी गई थी तथा उसके विरुद्ध कार्यवाही स्थगित की गई थी।[3] इन लेखकों की बाद की सम्मतियों पर हम आगे विचार करेंगे।

दूसरी रचनाएँ जिन पर हम अब विचार करेंगे सभी 1080 ई० में हेनरी के दूसरी बार धर्म-बहिष्कार एवं पदच्युति के बाद के काल की तथा उसी वर्ष में ब्रिक्सेन की धर्म-सभा तथा हेनरी तथा उसके साथियों द्वारा विरोधी-पोप के रूप में ग्लूवर्ट के निर्वाचन के बाद की हैं। सम्भवतः इसके थोड़े ही समय बाद लिखे गए दो ग्रन्थों पर विचार करना सुविधाजनक होगा, जो कि दोनों पक्षों के उदारवादी प्रतिनिधियों, साल्जबर्ग के आर्च बिशप गेबहार्ट तथा ट्रीयर के वेनरिख के मतों को अभिव्यक्त करती है।

गेबहार्ट एक अत्यन्त उदार, किन्तु हेनरी से संघर्ष में ग्रेगोरी सप्तम के कट्टरतम अनुयायियों में से था तथा उसने मेन्ज के बिशप हर्मन को सम्बोधित एक पत्र अथवा लेख में कुछ उन विचारों को रखा है, जो उसे सबसे महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुए। वह संघर्ष का मूल मुख्यतः चर्च के उस नियम के उल्लंघन में देखता है, जो निष्ठावान व्यक्तियों को निर्देश देता है कि उन लोगों की संगति त्यागनी चाहिए जो धर्म-बहिष्कृत हैं, विशेषतः उनकी जो रोम द्वारा धर्म-बहिष्कृत किए गए हैं।[4] और इसके लिए उन लोगों की त्रुटि को भी उत्तरदायी बताता है, जो कि यह स्वीकार नहीं करते कि धर्म-बहिष्कार का दण्ड, चाहे मनुष्य उसे न्यायपूर्ण माने अथवा अन्यायपूर्ण जब तक सक्षम पदाधिकारी द्वारा समाप्त नहीं किया जाए बाध्यकारी था,[5] और इसका उल्लेख वह विशेषतः 1080 ई० में रोमन परिषद् द्वारा घोषित धर्म-बहिष्कार के संदर्भ में करता है।[6] तत्पश्चात् वह जून 1080 ई० में ब्रिक्सेन की धर्मसभा द्वारा ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति तथा विरोधी पोप की नियुक्ति की चर्चा करता है, तथा यह मानता है कि यह कार्य इंजील तथा प्रेरितिकों के इस सिद्धान्त के खिलाफ है कि पोप किसी मनुष्य के निर्णयाधीन नहीं है।[7] फिर वह उन लोगों के तर्कों का विवेचन करता है जो यह कहते हैं कि वे हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ का उल्लंघन नहीं कर सकते, तथा आग्रह पूर्वक कहता है कि यह स्पष्ट है कि जो शपथ गलती से ली गई हो या जिसमें कोई बड़ी भारी गलती निहित हो उसका पालन नहीं करना चाहिए।[8] गेबहार्ट तदनन्तर हेनरी के समर्थक पादरियों के विषय में विचार करता है तथा प्रश्न करता है कि क्या यह पादरी के पद के अनुकूल आचरण है कि वे अपनी सम्मति एवं सहायता से एक ईसाई राजा की सहायता मनुष्यों को ईसाई विधान का उल्लंघन करने के लिए विवश करने को, श्रद्धावानों को पीड़ा देने को, ईश्वर के मन्दिरों पर कब्जा करने तथा संत पीटर के सेवकों की हत्या द्वारा धर्म-स्थानों को दूषित करने के लिए करें। वे कहते हैं कि वे संत पीटर के भक्त हैं, किन्तु क्या यह उचित हैं कि वे संत पीटर के धर्मासन के अधिकारी पर इसलिए आक्रमण करें कि उसने राजा एवं अनेक बिशपों की गर्हणा करते हुए एक अभूतपूर्व तथा अन्यायपूर्ण दण्डाज्ञा की घोषणा की थी। वह उनसे यह विचार करने का आग्रह करता है कि चाहे पोप का कार्य अनावश्यक रूप से कठोर हो, तो भी नैष्ठिक बिशपों के लिए उचित यही था कि वे धार्मिक प्रक्रियान्तर्गत ही कोई उपाय करने के लिए राजा को राजी करते,

Scanned by CamScanner

परन्तु इस प्रकार के साधनों से नहीं जो हत्या एवं विनाश के द्वारा चर्च के कानूनों को भंग करें।

अन्त में वह अनुरोध करता है कि उनके लिए पोप के कार्य की कठोरता एवं उसकी अभूतपूर्वता की शिकायत करते हुए अपने कार्य का औचित्य सिद्ध करने का प्रयत्न भी निरर्थक है, क्योंकि वे स्वयं ही समस्त अशान्ति के कारण थे। उनका वॉर्म्स का कार्य ही (1076 ई०), जिसमें उन्होंने ग्रेगोरी की पदच्युति का दण्ड घोषित किया था, इस पूरे संकट का मूल कारण था; पोप ने तब उनके विरुद्ध किसी धर्म-बहिष्कार की घोषणा नहीं की थी, अपितु उनके द्वारा ही उसके प्रति आज्ञा पालन को समाप्त किया गया था।[9] गेबहार्ट के निर्णय के अनुसार यहीं अशान्ति मूल रूप में प्रारम्भ हुई, तथा इसका कोई भी औचित्य नहीं था।[10]

ये तर्क हमारे लिए विशेषत: रोचक हैं, क्योंकि ये गेबहार्ट के मत को व्यक्त करते हैं—तथा यह मत ऐसे उदार व्यक्ति का प्रतीत होता है जो ग्रेगोरी सप्तम के प्रत्येक कार्य का प्रत्येक दशा में समर्थन करने को तैयार नहीं है—कि संघर्ष उतना ग्रेगोरी के क्रांतिकारी नवाचारों के कारण उत्पन्न नहीं हुआ, जितना कि पोप का निर्णय करने एवं उसे पदच्युत करने में हेनरी तथा उसके समर्थक बिशपों के प्रयत्नों के रूप में अधिक क्रांतिकारी कार्यों के कारण। इस प्रकार के प्रयत्न एवं उनके परिणामों को देखते हुए गेबहार्ट इसे असंगत नहीं मान सकता था कि उन शपथों को जो मनुष्यों को हेनरी के आज्ञापालन के लिए बाध्य करती थीं अवैधानिक मानना चाहिए, तथा उनको औपचारिक रूप से समाप्त किया जाना चाहिए।

यदि हमें साल्जबर्ग के गैबहार्ट के लेख में ग्रेगोरी सप्तम के समर्थन में संयत मत का एक प्रतिनिधिक चित्र उपलब्ध है तो हमें हेनरी चतुर्थ के अनुग्र समर्थकों की स्थिति के सम्बन्ध में एक सशक्त वक्तव्य ट्रीयर के वैनरिख के एक पत्र में मिलता है, जो संभवत: अक्टूबर 1080 ई० तथा अगस्त 1081 ई० के बीच वेरडन के बिशप थियोडोरिक के नाम लिखा गया था। यह ध्यान रखने योग्य है कि यह पत्र एक ऐसे व्यक्ति द्वारा लिखा गया है जो अभी भी ग्रेगोरी को पोप स्वीकार करता था, तथा जिसने उसके पक्ष का समर्थन करने के कारण बहुत हानि उठाई थी।[11] वेरडन का थियोडोरिक उनमें से था जिनकी स्थिति प्राय: अस्थिर रही थी। वह कभी ग्रेगोरी के पक्ष में होता था, कभी हेनरी के पक्ष में।

वैनरिख अपने पत्र का प्रारम्भ ग्रेगोरी के उच्च चरित्र तथा योग्यताओं को मानते हुए करता है और यद्यपि वह उस पर लगाए गए हिंसा तथा महत्त्वाकांक्षा के आरोपों का भी कुछ विस्तार से वर्णन करता है, वह इन आरोपों की सत्यता के बारे में स्वयं कुछ भी नहीं कहता, क्योंकि उनका उसे व्यक्तिगत ज्ञान नहीं था।[12] तथापि वह उसके द्वारा असंयम अर्थात् पादरियों की शादी के विरुद्ध किए गए उपायों की उच्छेदकारिता की कड़ी निन्दा करता है; वह उस पर अयाजकीय वर्ग को पादरियों के विरुद्ध उकसाने, तथा इस प्रकार चर्च की सम्पूर्ण व्यवस्था को भंग करने का आरोप लगाता है।[13] किन्तु यह केवल प्रस्तावना मात्र है।

फिर वह ग्रेगोरी द्वारा हेनरी को पदच्युत करने तथा रूडोल्फ की नियुक्ति को अनुमोदित

Scanned by CamScanner

करने के कार्य पर ध्यान देता है, तथा मानता है कि यह कार्य पूर्णतया अवैधानिक था। वह कहता है कि लौकिक मनुष्यों के राजा के प्रति विद्रोह में कोई नई बात नहीं थी, किन्तु यह पूर्णतया नई एवं अश्रुत बात है कि पोप राजा को अपने पूर्वजों की गद्दी से उतारने की आज्ञा देने का कार्य स्वयं करे, तथा यदि वह तुरन्त आज्ञापालन न करे तो उसे धर्म-बहिष्कृत कर दे।[14] वह ग्रेगोरी को स्मरण दिलाता है कि राइम्स का आर्चबिशप एब्बो लुई पायस के विरुद्ध विद्रोह के कारण पदच्युत किया गया था, वह उसके आचरण का ग्रेगोरी महान् के आचरण तथा सिद्धान्तों से असाम्य प्रदर्शित करता है, जिसने मनुष्यों को अपने शासकों के प्रति आदरभाव तथा उनकी आज्ञा के पालन का उपदेश दिया है, तथा अपने को सम्राट् की आज्ञाओं के पालन के लिए उनसे असहमत होने पर भी बाध्य बताया है। तत्पश्चात् वह धर्म बहिष्कार के प्रश्न के औचित्य का विवेचन करता है, तथा अपने तर्कों को धर्माचार्यों के अनेक उद्धरणों से समर्पित करते हुए यह आग्रह करता है कि अन्यायपूर्ण कारणों से किए गए धर्म-बहिष्कार का कोई वास्तविक प्रभाव नहीं होता।[15] वह वास्तव में, प्रत्यक्ष रूप से, साल्जबर्ग के गेबहार्ट के लेख में वर्णित इस सिद्धान्त का भी खण्डन नहीं करता, कि धर्म-बहिष्कार का निर्णय तब तक मान्य होगा जब तक कि सक्षम पदाधिकारी उसे निरस्त न कर दें, किन्तु वह स्पष्टतः पोप के निर्णय के प्रभाव को नियमित करना चाहता है। तत्पश्चात् वह हेनरी की प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने के ग्रेगोरी के दावे के विरुद्ध बहुत तीव्रता से तर्क करता है तथा स्पष्टतया अस्वीकार कर देता है कि पोप को ऐसी कोई सत्ता प्राप्त है, चाहे यह सत्य भी हो कि हेनरी एक अपावन तथा क्रूर राजा था। वह प्रत्युत्तर में सुआबिया के रूडोल्फ तथा अन्य शासकों के चरित्र पर भयानक आक्षेप करता है, जिन्होंने अपना राज्य हिंसा तथा अपकृत्यों के द्वारा अर्जित किया था परन्तु वे पोप के कृपा-पात्र थे।[16] वह अयाजकों द्वारा बिशपों के "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर भी विचार करता है, किन्तु इस पर हम पिछले अध्यायों में विवेचन कर चुके हैं। वह प्रासंगिक रूप से पोप के पद के निर्वाचन की संपुष्टि करने के सम्राट् के अधिकार का उल्लेख भी ग्रेगोरी महान् का उदाहरण देते हुए करता है।[17]

यह उल्लेखनीय है कि वैनरिख हेनरी तथा उसके समर्थकों द्वारा ग्रेगोरी को पोप-पद से पदच्युत करने का औचित्य सिद्ध नहीं करता, यद्यपि वह इसके लिये सफाई देता है, न ही वह प्रत्यक्षतः इसका समर्थन करता है कि पोप को हेनरी को धर्म बहिष्कृत करने का कोई अधिकार नहीं था, किन्तु वह इसको अस्वीकार करता है कि पोप का धर्म-बहिष्कार अनिवार्यतः वैधानिक था, तथा वह प्रबल रूप से ग्रेगोरी द्वारा हेनरी को पदच्युत करने एवं उसकी प्रजा को उसके प्रति राजभक्ति की शपथ से मुक्त करने के अधिकार का खण्डन करता है।

गेबहार्ट तथा बेनरिख के ये लेख उन कुछ प्रधान सिद्धान्तों के उदाहरणों को बताने के लिये पर्याप्त हैं, जो इस संघर्ष के मूल में थे, तथा जैसा प्रायः ऐसे संघर्षों में होता है, प्रत्येक दल दूसरे के पक्ष का उत्तर देने की अपेक्षा अपने पक्ष के प्रतिपादन में अधिक सफल होता है, दूसरे के द्वारा किये गये आक्रमण की आलोचना अधिक होती है बजाय इसके कि अपने द्वारा किये गये कार्यों का समर्थन किया जाये। ये ग्रन्थ हेनरी द्वारा ग्रेगोरी की

Scanned by CamScanner

अंतिम पदच्युति तथा विरोधी पोप के निर्वाचन के तुरन्त बाद के समय के हैं, किन्तु अधिकांश सुरक्षित पुस्तिकायें तथा लेख कुछ वर्षों के बाद लिखे गये थे।

इनमें से पहले जिस पर हम विचार करेंगे सम्भवत: 1084 ई० में लिखा गया था, जब हेनरी चतुर्थ ने रोम पर कब्जा कर लिया था। वह किसी पीटर क्रेसस (Peter Crassus) की रचना है, जो रेवन्ना में रोमन कानून का अध्यापक रहा होगा, कम से कम लेखक कानूनी ज्ञान का अच्छा प्रदर्शन करता है तथा अपनी स्थिति ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रदर्शित करता है जो यह दिखाना चाहता हो कि हेनरी का पक्ष कानूनों पर आधारित है, एवं यदि ग्रेगोरी सप्तम रोमन कानूनों की सत्ता को मानने से अस्वीकार कर दे, तो वह हेनरी को एक ग्रन्थ भेजने का प्रस्ताव करता है, जिसमें जैसा वह कहता है कि ग्रेगोरी महान ने दोनों कानूनी व्यवस्थाओं, अर्थात् नागरिक तथा धार्मिक कानूनों को चर्च के उपयोग के लिये संग्रहीत किया था।[18]

वह मानता है कि सम्राट ने ही चर्च को शान्ति प्रदान की है, तथा ग्रेगोरी ने शांति को भंग किया है,[19] तथा वह हेनरी को राय देता है कि एक सभा बुलाए जिसमें ग्रेगोरी को उपस्थित होने के लिये बुलाया जाये।[20] वह ग्रेगोरी पर इन्द्रजाली होने का आरोप लगाता है, तथा जो न्यायाधीश के रूप में उपस्थित हों उनसे उसे पादरी के विशेषाधिकारों से वंचित करने तथा उसे दंड के लिये लौकिक सत्ता को सौंप देने की अपील करता है।[21] वह हेनरी को धर्म-बहिष्कृत करने तथा उसके राजत्व के विरुद्ध षडयंत्र करने के ग्रेगोरी के कार्यों को कानून के विरुद्ध बताता है, तथा सेक्सनों से आग्रह पूर्वक कहता है कि हेनरी ने राज्य अनुवंशिक उत्तराधिकार के कारण पाया है, तथा यदि किसी साधारण व्यक्ति को उसके पूर्वजों की सम्पत्ति के स्वामित्व से वंचित रखना न्यायोचित नहीं है तो एक राजा के राज्य-धारण पर आपत्ति उठाना जो कि उसने उत्तराधिकार में पाया था न्याया-नुकूल नहीं माना जा सकता। इसलिए, वह दृढ़ता पूर्वक कहता है, कि न तो वे, न ग्रेगोरी ही हेनरी के राज्याधिकार का निर्णय करने के लिए बैठने का दावा करने के अधिकारी हैं जोकि उसने अपने पिता से प्राप्त किया है तथा दैवी नियुक्ति द्वारा पाया है।[22] राज्य के ऊपर आनुवंशिक अधिकार की यह मान्यता ध्यान देने योग्य है, राजनैतिक सिद्धान्त के एक उत्तरकालीन विकास के पूर्वानुमान के रूप में रोचक है, किन्तु यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट है कि रोमन कानून से उसका उतना ही कम सम्बन्ध है जितना प्रारम्भिक मध्य युग के परम्परागत सिद्धान्तों से वह मनुष्यों को निष्ठा की शपथ भंग करने तथा दैवी अधिकारों के अन्तर्गत राजाओं को देय सम्मान तथा आदर प्रदर्शित न करने के लिए प्रोत्साहित करने की दुष्टता पर बल देता है, तथा सेक्सनों को हेनरी के न्याय के आगे आत्मसमर्पण करने तथा उससे दया की भीख माँगने की राय देकर अपने वक्तव्य को समाप्त करता है।[23]

यह ग्रन्थ, रोमन कानून के विशेष ज्ञान का प्रतिनिधित्व करने के आडम्बर के बावजूद, तर्कों के रूप में किसी भी महत्त्वपूर्ण कथन से युक्त नहीं है। हमने पिछली पुस्तक में बारहवीं शताब्दी में बोलोग्ना (Bologna) के वकीलों के राजनीतिक सिद्धान्तों का विवरण प्रस्तुत किया है,[24] तथा उनके ग्रन्थ तथा पीटर क्रेसस की अपरिष्कृत हठधर्मिता में कोई

Scanned by CamScanner

सम्बन्ध स्थापित कर पाना कठिन ही होगा।

हमें हेनरी के अधिक कट्टर समर्थकों की स्थिति के बारे में एक अधिक गम्भीर कथन एक अनाम-ग्रन्थ में उपलब्ध होता है जो भी उसी काल की रचना समझी जाती है। इसमें हमें तर्कसंगत कारण मिलते हैं, जोकि कुछ सीमा तक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित हैं।

वह मूलभूत प्रश्न जिसकी ओर लेखक प्रवृत्त होता है पोप-पद हेतु निर्वाचन के निर्धारण में सम्राट के अधिकार का स्थान है। वह रोम के चर्च के अन्य सब चर्चों पर प्राधान्य से प्रारम्भ करता है, तथा एक हस्तलिखित प्रति में यह कथन भी सम्मिलित है कि रोम सबका निर्णय करता है, किन्तु सिवाय पोप के उस निर्वाचन के मामले के जो कि अन्याय पूर्ण है तथा साम्राज्यिक गरिमा के प्रतिकूल है, या किसी विवादास्पद निर्वाचन के मामले में उसका कोई निर्णयकर्ता नही है।[25] फिर वह अनेक ऐसे मामले प्रस्तुत करता है जिनमें जैसा कि वह मानता है अनेक प्रतियोगियों के बीच सम्राट ने निर्णय किया कि कौन न्याय संगत पोप माना जाय। ये उदाहरण 377 ई० में डेमेसस प्रथम के निर्वाचन से लेकर 963 ई० व 964 ई० में ओटो प्रथम के कार्य तक से लिए गए हैं। लेखक अपनी परिगणना को यह कहकर समाप्त करता है कि ओटो के हस्तक्षेप के बाद रोम की सेनेट व जनता ने शपथ ली कि वे उसकी या उसके पुत्र की सहमति के बिना भविष्य में किसी पोप का निर्वाचन नहीं करेंगे। वह तत्पश्चात् वर्णन करता है कि सम्राट हेनरी तृतीय ने कुछ पोपों को पदच्युत करके यही नियम बनाया तथा उसने हिल्डेब्राण्ड को बाध्य किया, जो उस समय उपपादरी था, कि वह यह शपथ ले कि उसकी स्वीकृति के बिना "Nunquam se de Papatu Intromissurum" वह पोप निकोलस द्वितीय तथा उसकी परिषद् की पोप के निर्वाचन के बारे में आज्ञप्ति से उस अंश का वर्णन करता है जो सम्राट् का उल्लेख करता है तथा कहता है कि इस आज्ञप्ति द्वारा जो सभी रोमन पादरियों एवं जनता की स्वीकृति से की गई थी, यह व्यवस्था कर दी गई थी कि पोप के निर्वाचन में जो कोई उपद्रव खड़ा करेगा, या हेनरी अथवा उसके पुत्र की सहमति बिना पोप बना दिया जाएगा, उसे पोप नही समझना चाहिए किन्तु शैतान और धर्म-त्यागी समझना चाहिये। वह विशेषतः यह कहता है कि हिल्डेब्राण्ड ने इसकी शपथ ली तथा आज्ञप्ति को अनुमोदित किया था।[26]

इस प्रकार विगत के बारे में विचार करके, तथा पोप की नियुक्ति के बारे में सम्राट् के कुछ अधिकारों के दावे के ऐतिहासिक दृष्टान्त को प्रस्तुत करके, लेखक संक्षेप में अपने युग की परिस्थिति का विवरण प्रस्तुत करता है। वह आरोप लगाता है कि हिल्डेब्राण्ड ने पोप का पद एक रोमन सामन्त चिन्चियस (Chinchius) तथा उसके द्वारा बनाए गए दल की सहायता से प्राप्त किया था। हेनरी ने पोप-पद के इस अधिग्रहण का विरोध करने के लिए तथा उसे पोप की गद्दी से उतरने का आदेश देते हुए दूतों को भेजा था, किन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ, और अन्त में केवल युद्ध, षडयंत्र, हत्या, लूट-खसोट तथा आगजनी के बाद हेनरी रोम पर कब्जा करने में समर्थ हुआ, तथा उसने प्राचीन परम्परा के अनुसार क्लेमेण्ट का पोप-पद पर स्थापन किया, तथा उससे अभिषिक्त हुआ।

Scanned by CamScanner

वह यह बताते हुए उपसंहार करता है कि रोमन सम्राटों ने कुछ व्यक्तियों को पोप के अयोग्य बताकर स्वीकार नहीं किया था, कुछ को पदच्युत किया था, कुछ को स्वयं नियुक्त किया था, तथा अन्यों को नियुक्त करने की आज्ञा दी थी।[27]

हम इस लेख में तर्कों की दो सारणियों को जो असमान मूल्य की है, देख सकते हैं। हिल्डेब्राण्ड के निर्वाचन के बारे में वह जो बातें कहता हें वे साम्राज्यिक दल की गप से अधिक कुछ भी नहीं है। दूसरी ओर पोप के निर्वाचन में सम्राट के स्थान के प्रश्न का विवेचन भलीभाँति किया गया है, तथा साम्राज्यिक दावे की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का उचित बोध व्यक्त करता है।

विडो के, जो बाद में ओसनावर्ग (Osnaburg) का बिशप बना, एक ग्रन्थ के दुर्भाग्य से केवल कुछ अंश ही प्राप्त होते हैं। लगभग 1118 ई० के आसपास यह संकलित किया गया प्रतीत होता है तथा यह मूल रूप में रेवन्ना के ग्यूबर्ट के विरोधी-पोप के रूप में निर्वाचन के समर्थन में लिखा गया है।[28] वह इन आधारों पर इसका समर्थन करता है, प्रथम, राजा का पोप के निर्वाचन में वैध स्थान, और दूसरा, ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति का न्यायसंगत होना। वह यह मानता है कि चर्च की सुदीर्घ परम्परा से किसी भी पोप के पदग्रहण से पूर्व सम्राट की राय लेनी चाहिये। वास्तव में विडो स्वीकार करता है, कि, प्रारम्भिक अवस्थाओं में इस प्रकार की कोई परम्परा नहीं थी, किन्तु कान्सटेन्टाइन के धर्म परिवर्तन तथा चर्च के समृद्ध होने के साथ-साथ जब पोप का पद मनुष्यों की महत्त्वाकांक्षाओं का केन्द्र बन गया, तथा उत्तराधिकार के प्रश्न पर भेदकारी तथा हिंसक झगड़े होने लगे, तो यह आवश्यक पाया गया कि रोम के राजा हस्तक्षेप करें ताकि निर्वाचन नियमित तथा धार्मिक नियमों के अनुरूप हो सके। तब से यह प्रथा हो गई कि जब एक पोप का निर्वाचन होता था, तो उसका अभिषेक तब तक नहीं होता था जब तक कि राजा को उसकी सूचना नहीं दी जाती तथा वह इससे संतुष्ट नहीं हो जाता कि यह निर्वाचन विधिवत् हुआ है, तथा जब तक कि वह अभिषेक के बारे में अपनी अनुमति नहीं दे देता।[29] फिर वह अपनी मान्यता को सिद्ध करने के लिए अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है, तथा यह प्रदर्शित करता है कि राजा का निर्वाचन में स्थान सदा स्वीकृत हुआ है तथा कभी भी उसकी निन्दा नहीं हुई है।[30]

विडो यह कहने की सावधानी रखता है कि इसका अर्थ यह नहीं कि राजा को कोई स्वेच्छाचारी अधिकार इस मामले में प्राप्त है : केवल पादरियों एवं जनता की सहमति से ही उसे पोप को नियुक्त करने का अधिकार है, वह किसी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं कर सकता जिसके बारे में कोई सिद्धान्तगत विरोध हो, तथा वह किसी ऐसे अधिकार का दावा नहीं कर सकता जो सिद्धान्तों के अनुसार पोप के अधिकार में है। इस प्रकार विडो शास्त्रीय नियम की व्याख्या करता है कि अयाजकों को धार्मिक वस्तुओं के निपटारे का कोई अधिकार नहीं है। तथापि वह कहता है कि राजा वास्तव में अयाजक नहीं है, क्योंकि अभिषेक किए जाने के कारण उसका भी पुरोहित के पद में योगदान है।[31]

विडो के ग्रन्थ का दूसरा उद्धरण रोमन राजाओं के धर्म-बहिष्करण का वर्णन करता है। वह बल पूर्वक कहता है कि हिल्डेब्राण्ड से पूर्व किसी पोप ने राजा को धर्म-बहिष्कृत

Scanned by CamScanner

नहीं किया है, चाहे वह चर्च के विरुद्ध किसी गंभीर अपराध का दोषी ही क्यों न रहा हो। इसका कारण यह नहीं था कि उनको मनुष्यों के समर्थन को खोने का भय था, अपितु यह था कि वे संतों के आदेश का ध्यान रखते थे कि सभी कार्य आत्मिक उन्नति के लिये ही होने चाहिए। वह कहता है कि हिल्डेब्राण्ड तथा हेनरी चतुर्थ के संघर्ष का परिणाम गृह युद्ध से भी अधिक असहनीय है, अतः वह हेनरी को धर्म-बहिष्कृत करने के कार्य को अन्यायपूर्ण तथा अधर्मपूर्ण मानता है।[32] वह यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि संत एम्ब्रोस का सम्राट थियोडोसियस के विरुद्ध कर्म वास्तव में धर्म-बहिष्कार का मामला नहीं था।[33]

तीसरा उद्धरण हेनरी की प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने से सम्बन्ध रखता है। विडो मानता है कि चाहे हेनरी का धर्म-बहिष्कार न्याय संगत हो, तथा उचित व्यक्ति द्वारा घोषित भी हो, तो भी उसकी प्रजाओं को शपथ से मुक्त करने के दावे का कोई औचित्य नहीं हैं। जिन्होंने यह शपथ ली है वे अपने को मिथ्या शपथ का दोषी बनाए बिना उसको तोड़ नहीं सकते, तथा वह व्यक्ति जो मनुष्यों को शपथ भंग करने की स्वीकृति एवं आदेश देता है मिथ्या शपथ का दोषी है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हेनरी की प्रजाओं को शपथ से मुक्त करने के कारण, हिल्डेब्राण्ड ने ईश्वरीय कानून का तथा चर्च की व्यवस्था का उल्लंघन किया है, शांति के विनाश का कारण बना है, षडयंत्र तथा फूट को उकसाया है, तथा चर्च और साम्राज्य पर असंख्य विपदाओं को थोप दिया है।[34] अतः वह निष्कर्ष निकालता है कि यह न्यायोचित ही था कि हिल्डेब्राण्ड को पदच्युत किया गया, क्योंकि उसने पोप-पद की सत्ता का दुरुपयोग किया है, "धार्मिक सत्ता" एवं "राजसत्ता" को एक दूसरे का विरोधी बना दिया है, क्योंकि जब चर्च के दो अध्यक्ष एक दूसरे से संघर्ष में रत हों तो शरीर या आत्मा किसी का भी कल्याण नहीं हो सकता।[35]

ये ग्रन्थ, विशेषतया दूसरा व तीसरा, बहुत स्पष्टतया उन व्यक्तियों के मुख्य सिद्धान्तों को प्रकट करते हैं जो 1080 ई० के अन्तिम मतभेद के पश्चात् हेनरी चतुर्थ के समर्थक थे। इन तर्कों की प्रमुख शक्ति निश्चित रूप से पोप-पद एवं साम्राज्य के ऐतिहासिक सम्बन्धों के आग्रह में तथा उन अनेक दृष्टान्तों में है जिनसे वह यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता है कि पोप के निर्वाचन में राय देने का तथा विवादास्पद निर्णयों में हस्तक्षेप का अधिकार राजा को रहा है। तथापि ओसनाबर्ग के विडो द्वारा ट्रीयर के वेनरिच की इस मान्यता को दोहराया जाना भी कम महत्व का नहीं है कि चाहे राजा को धर्म-बहिष्कृत करना पोप के अधिकार में हो, परन्तु इसके साथ उसको पदच्युत करने या उसकी प्रजा को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने का कोई अधिकार नहीं है।

अब हमें ग्रेगोरी सप्तम के समर्थकों के तर्कों की ओर भी ध्यान देना चाहिये, तथा कुछ ग्रन्थों पर विचार करना चाहिये जो लगभग उसी समय में लिखे गए थे, जिस समय कि वे ग्रन्थ जिन पर हम विचार कर रहे थे।

इनमें से सर्वप्रथम जिसका हम विवेचन करेंगे, संभवतः उसी बर्नार्ड का लिखा हुआ है, जो कॉन्सटेन्स के स्कूल में अध्यापक था, तथा 1076 ई० के संघर्ष के प्रारम्भ में जिसके कुछ पत्रों का हम पहले विवेचन कर आए हैं। वह ग्रन्थ जिससे हमारा सम्बन्ध है 1085 ई०

Scanned by CamScanner

में लिखा गया था, और यदि यह वास्तव में उस लेखक की ही रचना है, तो हम कह सकते हैं कि इस बीच उसका निर्णय स्पष्ट तथा दृढ़ हो गया था। यह मुख्यतया धार्मिक लेखकों के विषय-क्रम से जमाए गए वाक्य-समूहों का एक संग्रह है, जो लेखक की दृष्टि में पोप के पक्ष की स्थिति का समर्थन करते हैं।

साल्जबर्ग के गेबहार्ट जैसे लेखक स्पष्टतः यह अनुभव करते थे कि सारे संघर्ष का मूल कारण, तथा ग्रेगोरी सप्तम की स्थति का मूल-आधार, धर्म-बहिष्कार के सिद्धान्तों तथा उनके परिणामों में देखना चाहिए अतः वह इस कठोर धार्मिक सिद्धान्त से प्रारम्भ करता है कि ईसाई लोगों को धर्म-बहिष्कृत व्यक्तियों से कोई व्यवहार नहीं रखना चाहिए तथा यदि वह ऐसा करें तो उन्हें धर्म-बहिष्कार का दण्ड भुगतने को तैयार रहना चाहिए।[36] वह इस कठिनाई से परिचित है कि धर्म-बहिष्कार अन्याय पूर्ण हो सकता है, किन्तु यह मानता है कि जब तक वह निरस्त न हो जाए उसका आदर करना चाहिए।[37] इस प्रकार पृष्ठभूमि के विवेचन के पश्चात्, वह ग्रन्थ के मुख्य विषय की अवतारणा करता है, जो है हेनरी का धर्म बहिष्कार तथा ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति। वह सर्वप्रथम संत अगस्तीन के तथा संत क्राइसोटोम (St. Chrysostom) के तथाकथित ग्रन्थ के कुछ वाक्य उद्धृत करता है, जो यह दिखलाते प्रतीत होते हैं कि राजा का विरोध करना वैधानिक नहीं था,[38] किन्तु इसके बाद वह लेखांशों की एक शृंखला प्रस्तुत करके यह दिखलाता है कि कोई भी पोप की धार्मिक सत्ता से मुक्त नहीं था, तथा बहुत बड़ी संख्या में ऐसे मामले गिनाता है, जिनमें जैसी उसकी मान्यता है, राजा और सम्राट् धर्म-बहिष्कृत तथा पदच्युत किए गए हैं।[39] तत्पश्चात् वह ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति का वर्णन करता है तथा मानता है कि पोप किसी मनुष्य के निर्णय के अधीन नहीं था, किन्तु यदि वह अधीन होता भी तो भी ग्रेगोरी को दोषी ठहराना एवं दण्डित करना बिना किसी आवश्यक धर्म-विहित ढंग से किया गया था।[40] कुछ आगे चलकर वह निष्ठा की शपथ की पवित्रता की विवेचना करता है, तथा तर्क देता है कि जो भी व्यक्ति किसी स्वामी के प्रति निष्ठा की शपथ लेते हैं कैथोलिक कानून के अन्तर्गत ही लेते हैं। किसी स्वामी की उसकी दुष्टता में भी सेवा करना निष्ठा नहीं है, किन्तु शपथ के प्रति निष्ठाहीनता है। एक धर्म-बहिष्कृत व्यक्ति अथवा ऐसे व्यक्तियों से संपर्क रखने वालों की आज्ञापालन शपथ भंग मे बड़ा अपराध है। किसी ऐसी शपथ का पालन नहीं करना चाहिए जो किसी के देश की सुरक्षा या चर्च के कानूनों के विपरीत हो, किसी व्यक्ति को ईश्वर के अतिरिक्त किसी के भी प्रति भक्ति की शपथ नहीं लेनी चाहिए, न ईश्वर के विरुद्ध शपथ का पालन करना चाहिए।[41] वह इसको सम्राट् आटो तथा बेनेवेंटम के एडलजीसस (Adelgisus of Beneventum) की एक कथा के उदाहरण से पुष्ट करता है तथा संत अम्बरोस के अनेक उद्धरणों से इसका औचित्य सिद्ध करता है।

चाहे इस ग्रन्थ में कोई नवीनता न हो, तथापि यह स्पष्टतापूर्वक तथा समुचित ज्ञान के साथ पोप के समर्थकों के दृष्टिकोण को दोहराता है, तथा विरोधी पोप ग्यूबर्ट के विरुद्ध एक प्रबल भर्त्सना से समाप्त करता है।

इस समय का सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक ग्रन्थ लौटनबाख (Lautenbach) के

Scanned by CamScanner

मेनेगोल्ड (Manegold) का ग्रन्थ एड गेबेहार्डम (Ad Gebehardum) है। इस पुस्तक के पिछले खण्ड में राजनीतिक सत्ता के स्वरूप के बारे में उसके सिद्धान्तों का हम विस्तृत विवेचन कर आए हैं।[42] इस लिए यहाँ हमारा सम्बन्ध केवल धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं के सम्बन्धों तथा ग्रेगोरी सप्तम एवं हेनरी चतुर्थ के वास्तविक संघर्ष के वर्णन से ही है। मेनेगोल्ड के ग्रन्थ को हम ट्रीयर के वेनेरिच की आलोचना के प्रत्युत्तर में ग्रेगोरी की नीतियों का तर्कसंगत समर्थन तथा औचित्य सिद्ध करने वाला कह सकते हैं, तथा अपने विषय के विकास में वह उसी क्रम को अपनाता है जो कि वेनेरिच ने अंगीकार किया है।[43]

वह वेनेरिच द्वारा लगाए गए या सूचित किए गए ग्रेगोरी के चरित्र के प्रति आक्षेपों का उत्तर देते हुए प्रारम्भ करता है,[44] तथा उसकी चर्च सुधार की नीति का ससर्थन करता है, इसमें वह विशेषतः धर्म-विक्रय तथा जिसे वह बिशपों का "अविवाहित व्यभिचार" कहता है के प्रचलन पर देता है, तथा वह इस विषय में दोषी पादरियों की सेवाओं को अस्वीकार करने के लिए अपने जन-साधारण के आवाहन के कार्य का औचित्य सिद्ध करता है।[45] तत्पश्चात् वह महान् संघर्ष के प्रारम्भ होने का, वॉर्म्स की परिषद् की कार्यवाही का जिसमें हेनरी को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत किया गया था, वर्णन करता है।[46] इसके बाद उसके ग्रन्थ का सबसे विशिष्ट एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग आता है—एक निरंकुश शासक को पदच्युत करने के प्रजाजनों के अधिकार का तथा प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने के पोप के अधिकार के सही अर्थ का विवेचन।[47] वह वेनेरिच के सुझाव का खण्डन करता है कि पोप-पद के चुनाव में सम्राट् की स्वीकृति की आवश्यकता है,[48] तथा वह अयाजक प्रतिष्ठापन के निषेध का समर्थन करता है।[49]

हम मेनेगोल्ड द्वारा प्रतिष्ठापन के प्रश्न के विवेचन का अध्ययन पहले कर आए है।[50] तथा यहाँ उसके द्वारा ग्रेगोरी के चरित्र के समर्थन से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है, किन्तु हमें ग्रेगोरी और हेनरी के संघर्ष के प्रारम्भ के उसके द्वारा दिए गए विवरण का तथा हेनरी के धर्म-बहिष्कार तथा उसकी पदच्युति के औचित्य का कुछ अधिक सावधानी से अध्ययन करना है। मेनेगोल्ड द्वारा वॉर्म्स तथा रोम की परिषदों की कार्यवाही का विवरण मुख्यतः बर्नार्ड के विवरण तथा ग्रेगोरी के पत्रों से लिया गया प्रतीत होता है। वह ग्रेगोरी को हेनरी से उसके विभिन्न अपराधों के विरुद्ध कई वर्षों तक विरोध करता हुआ, तथा अंततः उसे चेतावनी देता हुआ प्रदर्शित करता है कि यदि उसने अपने कार्यों के प्रति पश्चात्ताप नहीं किया तो वह उसे धर्म-बहिष्कृत कर देगा। हेनरी ने अपने दुष्कर्मों को स्वीकार करने के स्थान पर वॉर्म्स में बिशपों तथा राजाओं को एकत्रित किया, तथा उनकी राय एवं प्रेरणा से ग्रेगोरी की पदच्युति की घोषणा कर दी, तथा दूतों द्वारा रोमन परिषद् को इसकी सूचना दे दी। इसी कारण अंत में ग्रेगोरी और रोम की परिषद् को हेनरी के धर्म-बहिष्कार तथा सिंहासन से पदच्युति की घोषणा करनी पड़ी।[51] इस प्रकार कार्य की परिस्थितियों एवं कारणों का विवेचन करने के पश्चात् मेनेगोल्ड अपने ऐतिहासिक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है। वह आरोप लगाता है कि ग्रेगोरी महान् ने सम्राट् मॉरिस की पदच्युति तथा मृत्युदण्ड की सहमति दी थी, सम्राट् कॉन्सटेन्टियस को पोप फेलिक्स द्वारा धर्म विद्रोही घोषित किया गया था, पायस लुई को बिशपों ने तपस्या करने को विवश किया था,

Scanned by CamScanner

पोप स्टीफेन के अधिकार से चिलपेरिक (Chilperic) को पदच्युत करके पिप्पिन (Pippin) को फ्रैन्क लोगों का राजा चुना गया था, तथा पोप निकोलस ने सम्राट् लोथेयर (Lothair) को उसकी उपपत्नी वाल्ड्राडा (Waldrada) के कारण धर्म-बहिष्कृत कर दिया था। (हमारा यहाँ इसके वक्तव्यों की ऐतिहासिक सत्यता से मतलब नहीं है)।[52] फिर वह अनेक उदाहरण देता है जिनमें राजाओं को उनकी ही प्रजाओं ने पदच्युत कर दिया था, तत्पश्चात् राजत्व के स्वरूप के बारे में विवाद है जिसका विस्तृत विवेचन हम पिछली पुस्तक में कर चुके हैं, जिसमें वह यह सिद्ध करता है कि राजा अपनी सत्ता को उस समझौते या सहमति के कारण धारण करता है जिसमें उसने कानून और न्याय को बनाए रखने की प्रतिज्ञा की है, तथा जनता ने आज्ञा पालन की प्रतिज्ञा की है, और वह तर्क देता है कि हेनरी के द्वारा किए गए अपराध उसकी पदच्युति का पर्याप्त रूप से औचित्य सिद्ध करते हैं।[53]

इस स्थान पर हमारा सम्बन्ध इस प्रश्न से नहीं है, जिस पर हम पिछली पुस्तक में विचार कर चुके हैं, किन्तु मेनेगोल्ड द्वारा पोप के कार्यों के वर्णन से है, तथा हमें इसीलिए ध्यान रखना चाहिए कि वह तुरन्त मुख्य तर्क की ओर लौट आता है, अर्थात् हेनरी चतुर्थ एवं उसके समर्थकों द्वारा पवित्र पोप-पद तथा चर्च की एकता के विरुद्ध षडयंत्र किया गया था, अतः यह न्यायोचित था कि उसे धार्मिक निन्दा एवं लौकिक बल दोनों के द्वारा बाध्य किया जाए।[54] यह स्पष्ट है कि वह ग्रेगोरी सप्तम के कार्य को मुख्यतः वार्म्स में हेनरी तथा उसके समर्थकों के कार्य की दृष्टि से उचित ठहराता है, तथा साथ ही वह इस विषय में भी असंदिग्ध है कि यह कार्य—अर्थात् हेनरी को धर्म-बहिष्कृत करना तथा पदच्युति-पोप के अधिकार में था। ग्रेगोरी द्वारा हेनरी की प्रजा को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने का समर्थन वह जैसा कि हम पिछली पुस्तक में कह आए हैं यह कहकर करता है कि यह इस सार्वजनिक एवं अधिकार युक्त घोषणा से अधिक कुछ भी नहीं है कि शपथ पहले से ही अमान्य थी।[55]

सुत्री के बिशप बोनीजो के ग्रन्थ, जिसका नाम "एड एमीकम" (Ad Amicum) है, कि सातवीं तथा आठवीं पुस्तक में, ग्रेगोरी सप्तम के पोप-पद के कार्यकाल का महत्त्वपूर्ण विवरण मिलता है, किन्तु वह पूरी तरह से विश्वसनीय नहीं है। वह ग्रेगोरी का एक कट्टर समर्थक था, यद्यपि उसके कथनों का प्रायः सावधानी से अध्ययन करना चाहिए, तथापि उसने अपने युग की घटनाओं में पर्याप्त रूप से भाग लिया है, तथा विशेषतः लम्बार्डी के 'पेटेरिया' (Pataria) तथा मिलन के चर्च के मामलों के बारे में बहुत सी महत्त्वपूर्ण सूचनायें सुरक्षित रखी है। उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए 1076 ई० में वार्म्स की परिषद् द्वारा ग्रेगोरी सप्तम की पदच्युति तथा उसी वर्ष में रोम की परिषद् द्वारा हेनरी के धर्म-बहिष्कार तथा पदच्युति के वर्णनों में कोई विशेष नवीनता नहीं है, तथा जैसा हम पहले देखते आए हैं वह ग्रेगोरी के कार्य को बहुत अधिक उचित सिद्ध करता है। वह कहता है, कि ग्रेगोरी को पवित्र पोप-पद से च्युत करने के राजा के प्रयत्नों के कारण उसको धर्म-बहिष्कृत करना न्यायसंगत था, तथा वह यह दिखाने के लिए अनेक दृष्टान्तों को उद्धृत करता है कि पुराने काल में पोपों ने राजाओं को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत

Scanned by CamScanner

भी किया है।[56] वह बहुत सशक्त शब्दों में 1077 ई० में फॉरखाइम नामक स्थान पर जर्मन राजकुमारों को रूडोल्फ के निर्वाचन के लिए उत्तरदायी ठहराता है तथा इसे दुनियां की बहुत सी बुराइयों का कारण बताता है।[57]

एक छोटे ग्रन्थ में जो ल्यूका के बिशप एन्सलम के नाम से प्रसिद्ध है, तथा जिसे उसने संभवतः 1085 ई0 में ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु के कुछ समय बाद लिखा है, विरोधी पोप ग्यूबर्ट के विरुद्ध गहरा आक्षेप है तथा वह संघर्ष का एक बड़ी सीमा तक कारण हेनरी के धर्म-विक्रय तथा चर्च की स्वतन्त्रताओं को नष्ट करने के उसके प्रयत्नों को बताता है।[58]

उस बर्नाल्ड द्वारा लिखे गए अनेक ग्रन्थ सुरक्षित है, जिसके 1076 ई० में बर्नार्ड से पत्राचार की हम पहले ही चर्चा कर आए हैं।[59] इनमें से एक ग्रन्थ में जो संभवतः 1086 ई० में ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु के बाद लिखा गया था वह जोरदार रूप में तीन सूत्रों के बारे में चर्चा करता है। प्रथम, निष्ठावानों को धर्म-बहिष्कृत व्यक्तियों का सम्पर्क त्याग देना चाहिए और विशेषतः विरोधी पोप ग्यूबर्ट तथा उसके अनुयायियों का, द्वितीय, कि राजा अन्य मनुष्यों की भांति चर्च की सत्ता के ही अधीन हैं, और उनका धर्म-बहिष्कार किया जा सकता है, तृतीय, ग्रेगोरी ने मनुष्यों को शपथ-भंग के लिए प्रेरित नहीं किया, किन्तु उसी सत्ता से जिससे उसने उनके शासकों को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत किया था, मनुष्यों को आज्ञापालन की शपथ से भी मुक्त कर दिया।[60] वह एक अन्य ग्रन्थ में जिसका समय अनिश्चित है इन्हीं विषयों पर बहुत महत्त्वपूर्ण ढंग से विवेचन करता है, तथा सबसे पहले यह तर्क देता है, कि यदि संत पीटर के उत्तराधिकारियों को, जैसा वह बता चुका है, बांधने एवं मुक्त करने का अधिकार है और इस प्रकार यदि चर्च के पादरियों को भी पदच्युत करने का अधिकार है तो लौकिक राजाओं को पदच्युत करने का अधिकार तो उससे कहीं अधिक है, जिनकी गरिमा मनुष्य-कृत है, और वह संत ग्रेगोरी महान् के बहुधा उद्धृत लेखांशों के उल्लेख से इसकी पुष्टि करता है तथा कई बहुधा-चर्चित उदाहरण देता है, दूसरे यह कि यदि उनको शासकों को पदच्युत करने का अधिकार था, तो स्पष्टतः उनको प्रजाओं को भक्ति एवं आज्ञापालन की शपथ से मुक्त करने का भी अधिकार था, तीसरे, यह कि ऐसी शपथ प्रायः शासकों के लिए तभी तक वास्तव में ली जाती है जब तक कि वे पद पर हों, तथा यदि उनको वैधानिक रूप से पदच्युत किया गया हो तो किसी भी प्रकार से उनकी बाध्यता नहीं है, और इस दशा में चर्च ने केवल उनके दुर्बल भाइयों को ध्यान में रख कर मनुष्यों को औपचारिक रूप से शपथ मुक्त किया है, जो कि इन मामलों में जब तक विशेषतया उसका उल्लेख न कर दिया गया हो यह जान न सकें कि क्या हुआ है।[61]

उस युग का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ, फेरेरा के विशप विडो द्वारा 1086 ई० में ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु के बाद किन्तु उसके उत्तराधिकारियों के निर्वाचन से पूर्व लिखा गया ग्रन्थ है। वह विरोधी पोप ग्यूबर्ट (क्लेमेण्ट) के अनुरोध पर लिखा गया है, तथा उसका उद्देश्य यह सुझाना हो सकता है कि, चूंकि अब ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु हो गई है, अतः उसके अनुयायियों को भी क्लेमेन्ट को स्वीकार करना संभव है। इस ग्रन्थ के बारे में विचित्रता इसके प्रथम भाग में ग्रेगोरी सप्तम का सशक्त एवं स्पष्ट समर्थन है, वास्तव में उसके पक्ष

Scanned by CamScanner

को प्रस्तुत करने वाला यह सबसे प्रभावशाली वक्तव्य है—जो सार एवं प्रस्तुतीकरण की सशक्तता के कारण उसके लेख के दूसरे भाग से अधिक प्रभावशाली है, जिसमें हेनरी चतुर्थ एवं उसके समर्थकों द्वारा ग्रेगोरी के विरुद्ध लगाए गए आरोप हैं।

ग्रन्थ के प्रथम भाग का प्रारम्भ विडो हिल्डेब्राण्ड के उच्च चरित्र तथा शक्ति से, तथा उसके नियमित एवं सिद्धान्तानुकूल पोप-पद पर निर्वाचन से करता है।[62] फिर वह हेनरी चतुर्थ के व्यक्तिगत दोषों तथा उसके द्वारा धर्म-विक्रय के व्यवहार का, तथा ग्रेगोरी द्वारा उसके मन एवं चरित्र को श्रेष्ठतर बनाने के प्रयत्नों का गंभीर विवरण देता है। हेनरी ने परन्तु कोई ध्यान नहीं दिया, तथा अन्त में ग्रेगोरी द्वारा कठोर कदम उठाने की धमकी देने पर वह जर्मनी व लम्बार्डी के बिशपों को एक साथ बुलाकर उसकी निन्दा करने की आज्ञा देता है। केवल तभी ग्रेगोरी एवं रोम के बिशप हेनरी को पूर्णतया पश्चात्ताप रहित पाकर उसे धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत करते हैं।[63] तत्पश्चात् विडो धर्माचार्यों के अनेक वाक्य-समूहों को उद्धृत करके यह बताता है कि चर्च की सत्ता राजाओं तथा सम्राटों पर भी है, तथा अनेक उदाहरण देता है जिनमें राजाओं तथा सम्राटों को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत किया गया है।[64] वह सुआबिया के रूडोल्फ को उसकी निष्ठा की शपथ के बावजूद राजा के विरुद्ध खड़ा करने के कारण ग्रेगोरी पर हुए आक्षेपों का विवरण प्रस्तुत करता है, किन्तु वह तर्क देता है कि, पहले, तो ग्रेगोरी ने सदा यह माना है कि उसने रूडोल्फ को स्वयं नियुक्त नहीं किया, दूसरे, यह कि हेनरी की न्याय संगत पदच्युति हो चुकी थी, और इसलिए रूडोल्फ उसकी भक्ति के दायित्व से मुक्त था, और यदि ग्रेग्रोरी ने रूडोल्फ के निर्वाचन की पुष्टि कर दी तो वह कोई गलत कार्य नहीं कर रहा था।[65] वह ग्रेगोरी पर लगाए गए इस आरोप का उत्तर कि उसने जर्मनों को हेनरी के विरुद्ध युद्ध करने को उकसाया है—इस तर्क द्वारा देता है कि वह केवल धर्माचार्यों के निर्णय के अनुरूप ही कार्य कर रहा था कि दुष्ट लोगों पर आक्रमण करना तथा उनको दबाना उचित है, यह संतों के लिए उचित हो सकता है कि वे अपना बचाव न करें, किन्तु न्याय को बनाये रखना एक पूर्णतया भिन्न विषय है।[66] जब ग्रेगोरी ने जर्मनों को हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ से मुक्त किया, तो वह केवल यही घोषणा कर रहा था कि वह शपथ अवैध हो चुकी है। यह भी आरोप लगाया गया है कि ग्रेगोरी ने अयाजकों को धर्म-विक्रयी एवं विवाहित पादरियों पर आक्रमण एवं उनसे दुर्व्यवहार करने के लिए उकसाया, किन्तु विडो उत्तर देता है कि उसने सदैव उनके आचरण की निन्दा करते हुए भी उनके साथ की गई हिंसा पर दुःख प्रकट किया है, तथा धर्माचार्यों के विभिन्न वाक्य-समूहों को उद्धृत करके वह ग्रेगोरी द्वारा निष्ठावानों को उनसे संस्कार प्राप्त करने के निषेध का औचित्य सिद्ध करता है।[67] वह अनेक अधिकारियों को उद्धृत करके ग्रेगोरी द्वारा अयाजक 'प्रतिष्ठापन' के निषेध को उचित ठहराता है,[68] तथा संक्षेप में उन लोगों के तर्कों को भी प्रस्तुत करता है जो यह मानते थे कि ग्यूबर्ट (क्लेमेण्ट तृतीय) का निर्वाचन अवैध है।[69] वह अपने ग्रन्थ के प्रथम भाग का समापन हेनरी द्वारा रोम पर अधिकार के संक्षिप्त वर्णन, नगर की रक्षा के लिए उसका सामना करने को नारमनों का आगमन, तथा नगर को लूटना, और ग्रेगोरी के अन्तिम निष्क्रमण एवं मृत्यु से करता है।[70] जैसा हम पहले कह चुके हैं हिल्डेब्राण्ड का यह

Scanned by CamScanner

समर्थन सुविचारित है एवं प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

अपने ग्रन्थ के दूसरे भाग में विडो ग्रेगोरी के विरुद्ध लगाए गए प्रमुख आरोपों तथा उसकी पदच्युति एवं ग्यूबर्ट के पोप के रूप में निर्वाचन को उचित ठहराने वाले तर्कों को प्रस्तुत करता है। सर्वप्रथम, वह यह तर्क देता है कि निकोलस द्वितीय के विधान के विपरीत ग्रेगोरी राजकीय सहमति के बिना निर्वाचित हुआ था; तथा वह उन संदिग्ध किंवदन्तियों का भी उल्लेख करता है कि उसने यह निर्वाचन रिश्वत के द्वारा करवाया था।[71] दूसरे, वह यह तर्क देता है कि यदि ग्रेगोरी वैधानिक रूप से निर्वाचित भी हो, तो भी उसने अपनी सत्ता के दुरुपयोग के कारण अपनी गरिमा को खो दिया था। उसने धर्माचार्यों के सभी निदेशों के विपरीत युद्ध छेड़ा था; रूडोल्फ को गद्दी पर बैठाने तथा जर्मनों को उनकी हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ से मुक्त करने के कारण वह हत्या एवं शपथ भंग का कारण रहा था; उसने धर्माचार्यों के सिद्धान्तों के विरुद्ध यह शिक्षा दी थी कि मतभेद उपस्थित करने वाले तथा धर्म-बहिष्कृत व्यक्तियों के संस्कार अवैध हैं, उसने अन्यायपूर्वक हेनरी तथा अन्य व्यक्तियों को धर्म-बहिष्कृत किया था तथा उसमें आवश्यक विधि-विधान के स्वरूप का ध्यान नहीं रखा था।[72] तीसरे, वह यह तर्क देता है कि, यदि ग्रेगोरी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों तथा इन निष्कर्षों को कि उसने अपनी सत्ता का स्वत्व खो दिया था, उपेक्षा भी कर दी जाए तथा ग्यूबर्ट का पहला निर्वाचन अनियमित था यह भी स्वीकार कर लिया जाए तो भी, चूंकि अब ग्रेगोरी की मृत्यु हो चुकी थी, इसका कोई कारण नहीं था कि ग्यूबर्ट को अब पोप स्वीकार नहीं किया जाए, तथा वह इसके अनेक समरूप उदाहरण प्रस्तुत करता है जो इस कार्य पद्धति को उचित सिद्ध करते हैं।[73] हम विडो द्वारा 'प्रतिष्ठापन' के प्रश्न के विवेचन का पहले ही वर्णन कर चुके हैं,[74] तथा यहाँ केवल यही कहा जा सकता है कि विडो प्रतिष्ठापन के लौकिक अधिकार का सम्बन्ध केवल बिशप पद की लौकिक सम्पदाओं से मानता है। वह अपने ग्रन्थ का समापन यह कह कर करता है कि दो तर्क हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि ग्रेगोरी निन्दा के योग्य है : पहला, यह कि उसने रूडोल्फ को राजा बनवाया, और इस प्रकार अनेक मनुष्यों की हत्या तथा अनेक जर्मनों के शपथ भंग का कारण बना; दूसरा, यह कि वह धर्म में फूट डालने का अपराधी था, क्योंकि उसने धर्म-बहिष्कृत तथा अयोग्य पुरोहितों से संस्कार करवाने को जनता से मना कर दिया, तथा उनके संस्कारों को मान्यता देने से अस्वीकार कर दिया।[75]

कुछ वर्षों के बाद एक ग्रन्थ जिसका शीर्षक था "De Unitate Ecclesiae Conservanda", लिखा गया तथा उसकी परीक्षा करके हम इस अध्याय को समाप्त करते हैं। जैसा कि पाठ्य में विभिन्न संदर्भों से सिद्ध होता है यह ग्रन्थ 1090 ई० तथा 1093 ई० के बीच लिखा गया किन्तु उसका लेखक अनिश्चित है। इसमें बहुत सी ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें हैं जिनका विवेचन हम यहाँ नहीं कर सकते, विशेषत: 1086 ई० से लेकर 1092 ई० तक जर्मनी की राजनैतिक तथा धार्मिक दशाओं का वर्णन। हमें मुख्यत: लेखक द्वारा ग्रेगोरी सप्तम के दावों की, कि उसे राजाओं और सम्राटों को धर्म-बहिष्कृत करने तथा पदच्युत करने का अधिकार था, तथा इससे उत्पन्न होने वाले लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के सम्बन्धों के बारे में सम्पूर्ण प्रश्न के विवेचन तक ही अपने को सीमित रखना होगा।

Scanned by CamScanner

यह निरीक्षण करना अत्यन्त रोचक है कि, पहली बार, राजाओं के धर्म-बहिष्कार तथा पदच्युति के तथाकथित दृष्टान्तों के बारे में हमें यहाँ आलोचनात्मक ऐतिहासिक विवाद उपलब्ध होता है। वह सर्व प्रथम अन्तिम मेरोविन्जियन राजा चिलपेरिक की तथाकथित पदच्युति तथा पिप्पिन पोप जखारियास तथा पोप स्टीफेन द्वारा पिप्पिन की फ्रैंको के राजा के रूप में नियुक्ति पर विचार करता है। वह वास्तव में इसे अस्वीकार नहीं करता कि पोपों ने उनमें भाग लिया था, किन्तु वह यह मानता है कि उन्होंने केवल अपनी सहमति एवं सत्ता उस कार्य को प्रदान की थी जो फ्रैंक राजाओं की सामान्य सहमति एवं सत्ता से किया गया था। अतः वह इस बात को दृढ़ता पूर्वक कहता है कि ग्रेगोरी ने सारे मामले को यह कह कर कि पोप ने ही केवल मात्र अपनी सत्ता से चिलपेरिक को पदच्युत किया तथा फ्रैंको को निष्ठा की शपथ से मुक्त किया था, गलत रूप में प्रस्तुत किया है।[76] तदनन्तर लेखक ग्रेगोरी द्वारा उद्धृत धर्म-बहिष्कार के मामलों को लेता है, वह वास्तव में इसे अस्वीकार नहीं करता कि संत अंबरोस ने थियोडोसियस को धर्म-सभा से बाहर कर दिया था, किन्तु वह आग्रह पूर्वक कहता है जब संत अम्बरोस ने थियोडोसियस को इस प्रकार बहिष्कृत किया तब उसने उसकी राजनीतिक सत्ता या स्थिति में हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं किया, तथा उसने और पोपों ने सम्राट वेलेन्टीनियन तथा उसकी माता जस्टिना तथा दूसरे विधर्मियों के विषय में भी वैसा नहीं किया।[77] दूसरी ओर, वह पोप इन्नोसेण्ट प्रथम द्वारा सम्राट आर्केडियस के तथाकथित धर्म-बहिष्कार की सच्चाई में भी संदेह करता है, तथा तर्क देता है कि ऐतिहासिक लेखों में इसका कोई वर्णन नहीं मिलता, तथा इसका कोई पर्याप्त कारण नहीं मिलता कि वैसा क्यों किया गया होगा, तथा जैसा कि उसके कानूनों से विदित होता है,[78] आर्केडियस एवं चर्च के सम्बन्ध मित्रतापूर्ण थे।

इन तथाकथित ऐतिहासिक दृष्टान्तों की आलोचनात्मक परीक्षा रोचक एवं प्रभावशाली है, क्योंकि निस्सदेह उसने हिल्डेब्राण्ड की स्थिति में एक दुर्बल सूत्र पकड़ लिया; किन्तु इस ग्रन्थ में केवल यही महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। वास्तव में इसका सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष दोनों शक्तियों के विभिन्न कर्तव्यों का तथा उनके समान दैवी सत्ता में सिद्धान्त का सुविचारित वर्णन और विवेचन है। वह पोप जिलेसियस प्रथम के लेखों से कुछ महत्त्वपूर्ण वाक्यसमूहों को उद्धृत करता है ताकि वह यह सिद्ध कर सके कि ईश्वर ने ही स्वयं दोनों सत्ताओं अर्थात् लौकिक एवं धार्मिक को दुनियां का शासन करने की आज्ञा दी थी, तथा ईसा ने ही दोनों को एक दूसरे से पृथक् किया था। लौकिक सत्ता का कार्य बुरों को दंड देना तथा अच्छों को पुरस्कार देना है। यह स्पष्ट है कि ईश्वर ने यह आदेश नहीं दिया कि सभी अपराधों का दण्ड चर्च के अध्यक्ष द्वारा ही दिया जाए, इनमें से अनेक का निर्णय लौकिक सत्ता द्वारा किया जाना चाहिए। पुरोहित के पास केवल एक तलवार है, वह आध्यात्मिक है। वह यह भी आग्रह करता है कि पुराने जमाने में प्रायः ऐसा रहा है कि राजा एवं सम्राट धर्मद्रोहियों के मित्र एवं संरक्षक रहे हैं, किन्तु उस दशा में भी बिशपों एवं पोपों ने उनसे आदरपूर्ण एवं शान्तिपूर्ण शब्दों में सम्बोधित किया है, ताकि वे चर्च में शान्ति बनाये रख सकें, तथा इसके दृष्टान्त-स्वरूप वह पोप जिलेसियस तथा एनेस्टेसियस के पत्रों से अनेक वाक्यों को उद्धृत करता है। यह कभी भी इन पोपों के विचार में नहीं आया कि उनको सम्राटों को

Scanned by CamScanner

पदच्युत करने का प्रयत्न करना चाहिए, इसके बजाय उन्होंने उनको ईश्वर के न्याय पर छोड़ दिया।[79] लेखक ग्रन्थ के एक परवर्त्ती खण्ड में इस पर पुनः विचार करता हैं, तथा दोनों सत्ताओं की पृथकता एवं स्वतंत्र दिव्य आधार के सिद्धान्त को पुनः पुष्टि करता हुआ यह तर्क देता है कि हिल्डेब्राण्ड तथा उसके बिशपों ने वास्तव में दैवी व्यवस्था को उन्मूलित करने तथा एक ऐसी सत्ता के अपहार का प्रयत्न किया जो उनकी न होकर राजा की थी।[80]

इस प्रकार यह ग्रन्थ इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है कि यह ग्रेगोरी सप्तम के दावों के महत्त्व के सम्पूर्ण प्रश्न को इतनी अधिक स्पष्टता से उठाता है जितना कि अभी तक कभी भी नहीं किया गया था। वह वास्तव में इनके अधिक सुस्पस्ट एवं अत्यधिक विकसित स्वरूपों का उल्लेख नहीं करता जो ग्रेगोरी के बाद के कथनों में उपलब्ध हैं,[81] किन्तु वह ग्रेगोरी के सम्पूर्ण कार्यों का जो महत्त्व समझता है वह उसे बहुत बलपूर्वक प्रकट करता है, तथा यह मानता है कि दोनों सत्ताओं के बीच इस भ्रान्ति से दोनों का विनाश ही हो सकता है। हमने पिछले खण्ड में इस ग्रन्थ को किसी सीमा तक ग्रेगोरी महान की इस परम्परा के अवशेष का कुछ सीमा तक उदाहरण माना है कि राजकीय सत्ता इस अर्थ में ईश्वर प्रदत्त तथा दैवी थी, उसका किसी रूप में भी विरोध अन्याय पूर्ण तथा अपावन था,[82] किन्तु इसके इस सिद्धान्त से उसकी उस मान्यता का भ्रम नहीं होना चाहिए जिसके अनुसार हिल्डेब्राण्ड के दावों ने दैवी व लौकिक सत्ताओं के ईश्वरीय निर्धारित विभेद को समाप्त कर दिया था।

अंत में हम उस शब्दावली पर ध्यान दे सकते हैं जिसके अन्तर्गत लेखक ने विरोधी पोप ग्यूबर्ट के निर्वाचन के प्रश्न तथा कम से कम ग्रेगोरी सप्तम की मृत्यु के पश्चात् उसके पोप रूप में स्वीकार किये जाने के दावे का वर्णन किया है। वह हेनरी को इस इच्छा से रोम आता हुआ प्रदर्शित करता है कि या तो ग्रेगोरी से समझौता कर ले, या, यदि यह संभव न हो सके तो दूसरे पोप का निर्वाचन कर लें। जब ग्रेगोरी ने उससे तब तक मिलना अस्वीकार कर दिया जब तक कि वह उसके हाथों में साम्राज्य को न सौंप दे, तो उसे विवश होकर बल-प्रयोग करना पड़ा। जब उसने शहर पर कब्जा कर लिया तो रोम के चर्च ने ग्यूबर्ट को पोप चुन लिया, तथा उसने हेनरी का सम्राट के रूप में अभिषेक कर दिया।[83] लेखक इस तथ्य को छिपा जाता है कि ग्यूबर्ट को हेनरी तथा उसके पक्ष के बिशपों ने जून 1080 ई० में ब्रिक्सन में ही पोप चुन लिया था, स्पष्टतया वह उसके पोप पद पर दावे को रोमन चर्च द्वारा 1084 ई० में उसके स्वागत अथवा निर्वाचन पर आधारित करना चाहता है। तथापि, एक बाद के अध्याय में वह सुझाव देता है कि चाहे मूल निर्वाचन में कुछ अनियमितता भी रही हो, तो भी यह इसका पर्याप्त कारण नहीं है कि ग्रेगोरी की मृत्यु के बाद भी उसे पोप न चुना जाए, तथा उन मामलों के उदाहरण देता है जहाँ पोप का निर्वाचन अनियमित रहा है, किन्तु बाद में चर्च ने उनको मान्यता दे दी अथवा स्वीकार कर लिया।[84] विषय का वर्णन बहुत कुछ फेरेरा के विडो से मिलता-जुलता है।[85]

यदि अब हम हमारे द्वारा विचार किए गए साहित्य के मुख्य सूत्रों को समाहित करने का प्रयास करें, तो हम इन विवादास्पद प्रश्नों के विवेचन में अत्यन्त सावधानी बरतने की

Scanned by CamScanner

ग्रावश्यकता को स्वीकार करेंगे। इन लेखकों में हमें धार्मिक एवं लौकिक सत्ताग्रों की पृथक् पृथक् शक्तियों के बारे में व्यवस्थित सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होते हैं, हमें उनको उन सिद्धान्तों के साथ जोड़ने का प्रयत्न भी नहीं करना चाहिए जो हमें उनके विचार से तर्क संगत रूप से सम्बद्ध प्रतीत हो; वास्तव में यह सभी के ग्रथवा लगभग सभी के विषय में कहा जा सकता है कि वे उस क्षण की तात्कालिक स्थिति के बारे में जितने व्यग्र हैं, उतने दोनों सत्ताग्रों के सम्बन्धों के विषय में किसी सामान्य सिद्धान्त के बारे में नहीं।

दोनों पक्षों में तात्कालिक रूप से दो प्रश्न विवादास्पद थे—जर्मन सम्राट् तथा चर्च के बिशपों द्वारा पोप को नियुक्त या पदच्युत करने के ग्रधिकार, या सत्ता का प्रश्न, तथा पोप द्वारा राजा को धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत करने के ग्रधिकार का प्रश्न। हेनरी चतुर्थ के समर्थक यह मानते थे कि कोई पोप राजा या सम्राट् की सहमति के बिना निर्वाचित नहीं हो सकता, तथा निस्संदेह इस मान्यता के समर्थन में उनके द्वारा बहुत ग्रधिक मात्रा में ऐतिहासिक प्रमाण उपस्थित किए गए, तथा उनमें से कुछ यह मानते थे कि ग्रेगोरी सप्तम ने यह सहमति कभी भी प्राप्त नहीं की। उनमें से कुछ यह मानते थे कि कुछ परिस्थितियों में पोप का न्याय करना तथा उसे पदच्युत करना वैधानिक था, तथा यह भी उनकी मान्यता थी कि ग्रेगोरी सप्तम का ग्राचरण इस प्रकार का था जो हेनरी के कार्य तथा उसके द्वारा उसकी पदच्युति के ग्रौचित्य को सिद्ध करता था।

ग्रेगोरी के समर्थकों ने ग्रधिकांशतः पोप के निर्वाचन में राय लिए जाने के सम्राट् के ग्रधिकार के प्रश्न का विवेचन ही नहीं किया। यद्यपि मेनेगोल्ड ने इसका खण्डन किया है। हम देख चुके हैं कि संभवतः उनके मन में इसके बारे में कुछ संशय था कि क्या पोप का न्याय कोई कर सकता है, किन्तु सामान्यतः उन्होंने इस मान्यता का खण्डन किया।

हिल्डेब्राण्ड का दल संघर्ष का उदय ग्रंततः चर्च के सुधार की ग्रत्यावश्यकता तथा हेनरी द्वारा उसके ग्रसहमति से मानता है। न केवल मेनेगोल्ड द्वारा ही, परन्तु ग्रेगोरी के पक्ष का समर्थन करते हुए फेरेरा के विडो द्वारा भी इसे बहुत बल पूर्वक व्यक्त किया गया है। ग्रौर 1076 ई० की महान् तथा क्रांतिकारी घटनाग्रों के विषय में उल्लेखनीय है कि ग्रेगोरी के समर्थकों की यह मान्यता है उसने हेनरी को तभी धर्म-बहिष्कृत एवं पदच्युत किया जबकि उसने पहले पोप को पदच्युत किया। यह बहुत उल्लेखनीय है कि साल्ज़बर्ग का गेबहार्ट इस प्रश्न को बहुत बल पूर्वक प्रस्तुत करता है तथा ग्राग्रह करता है कि हेनरी एवं उसके ग्रनुयायी बिशप ही इस सारे उपद्रव के मूल कारण थे। इसे न केवल मेनेगोल्ड तथा बोनीजो ने ही न कहा है, किन्तु फेरेरा के विडो ने भी यही माना है। प्रतीयमानतः यह कहना सही है कि, जहाँ तक इन लेखकों का प्रश्न है, ग्रेगोरी के समर्थक इसके बारे में मन में स्पष्ट नहीं थे कि क्या उसका कार्य पूर्णतया बुद्धिमत्तापूर्ण था। गेबहार्ट स्वीकार करता प्रतीत होता है कि इसे ग्रति कठोर कहा जा सकता है, ग्रौर बर्नार्ड पहले तो उसकी कार्य प्रणाली के बारे में स्पष्ट नहीं था, किन्तु वे इस बारे में पूर्णतया स्पष्ट हैं कि उसका कार्य न्याय संगत था।

वे यह निश्चित रूप से घोषित करते हैं कि कोई भी, यहाँ तक कि राजा भी, चर्च एवं पोप के धार्मिक ग्रधिकार-क्षेत्र से मुक्त नहीं है, तथा वे उसके लिए ग्रनेक तथाकथित

Scanned by CamScanner

दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। वे अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में यह तर्क प्रस्तुत नहीं करते कि धर्म बहिष्कृत करने के अधिकार में पदच्युत करने का अधिकार अनिवार्य रूप से निहित था, किन्तु इसे कतिपय तथाकथित दृष्टान्तों पर आधारित मानते प्रतीत होते हैं, विशेषतः पोप जैकरियास द्वारा अंतिम मेरोविन्जियन सम्राट् चिलपेरिक को पदच्युत करने के अभिकथित कार्य पर। यह सम्भव है कि हम इन मतों के मूल आधार के निकट बर्नाड के ग्रन्थ 'Liber Canonum contra Heinricum Quartum' के इस तर्क द्वारा पहुँच सकें कि एक धर्म-बहिष्कृत व्यक्ति के प्रति की गई निष्ठा की शपथ मान्य नहीं हो सकती। वास्तव में यह स्पष्ट है कि सामान्यतः स्वीकृत यह सिद्धान्त भी कि निष्ठावान व्यक्तियों को धर्म बहिष्कृत लोगों से कोई व्यवहार नहीं रखना चाहिए, धर्म-बहिष्कृत राजा की स्थिति को बहुत कठिन बना देता है।

हेनरी चतुर्थ के समर्थकों ने इन मान्यताओं का उत्तर अनेक प्रकार से दिया। पहले बेनरिच ने यह माना कि धर्म-बहिष्कार का दण्ड अनिवार्य रूप से न्याय संगत नहीं था, तथा एक अन्याय पूर्ण दण्ड अपने आप में अवैध था। दूसरे इस आलोचना को और भी आगे ले गए, तथा अधिकाधिक मामलों की परीक्षा की। ओसनाबर्ग के विडो ने यद्यपि यह नहीं कहा कि पोपों को राजा को धर्म-बहिष्कृत करने का अधिकार नहीं है, किन्तु वह इसे अस्वीकार करता है कि वैसा पहले कभी किया गया है, तथा यह किसी मनुष्य के भय के कारण नहीं अपितु इसलिए कि उन्होंने देखा था कि इससे मनुष्य की आत्मोन्नति नहीं होगी तथा गंभीर दोष उत्पन्न हो जायेंगे। "डी यूनीटेट" (De Unitate) का लेखक यद्यपि इसे अस्वीकार नहीं करता कि संत अम्बरोस द्वारा थियोडोसियेस को चर्च की धर्म सभा से बहिष्कृत कर दिया गया था, किन्तु वह पर्याप्त ऐतिहासिक तीक्ष्ण बुद्धि से इस वक्तव्य की परीक्षा करता है कि पोप इन्नोसेण्ट द्वारा सम्राट् आर्कोडियस को धर्म-बहिष्कृत किया गया। वास्तव में धर्म-बहिष्कार में पदच्युति के अधिकार को निहित मानने वाली मान्यता के विरुद्ध तथा उसके समर्थन में विद्यमान अधिकाधिक दृष्टान्तों के विरुद्ध की जाने वाली आलोचना सबसे महत्त्वपूर्ण है। बेनेरिच यह कहता है कि यदि मान भी लिया जाए कि हेनरी वैसा ही था जैसा ग्रेगोरी ने उस पर आरोप लगाया है, तो भी पोप को उसकी प्रजा को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने का कोई अधिकार नहीं था, तथा यह बात पहले नहीं सुनी गयी कि पोप एक राजा को अपने पूर्वजों की गद्दी से उतरने की आज्ञा दे। ओसनाबर्ग के विडो की मान्यता है कि, हेनरी का धर्म-बहिष्कार न्यायसंगत एवं वैधानिक भी हो, तो भी इससे ग्रेगोरी को हेनरी की प्रजा को शपथ से मुक्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। "डी यूनीटेट" का लेखक इस विषय पर विचार पोपों द्वारा चिलपेरिक की अभिकथित पदच्युति की सावधानी से आलोचना करते हुए तथा महत्त्वपूर्ण उदाहरण देकर इस तथ्य पर बल देते हुए करता है कि एक सम्राट् चर्च से पृथक् कर दिया जाए, इस को इसका पर्याप्त कारण नहीं माना गया था कि उसकी राजनीतिक सत्ता पर भी आक्रमण किया जाए।

जैसा हम कह चुके हैं कि, इसी ग्रन्थ में हमें उन प्रश्नों के स्वरूप की व्यापकतम परिकल्पना मिलती है जिन्हें इस महान् संघर्ष ने जन्म दिया था। लेखक के दृष्टिकोण से है,

Scanned by CamScanner

विवादास्पद प्रश्न वास्तव में दोनों सत्ताओं की स्वतंत्रता का प्रश्न था। यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वह बहुत जोर देकर तथा अन्तर्दृष्टि के साथ, ईसा द्वारा स्वयं दोनों सत्ताओं की विभिन्नता के जिलेशियन सिद्धान्त को दोहराता है, तथा बलपूर्वक कहता है कि इस प्रकार के दोष एवं अपराध हो सकते हैं जिनका कि निर्णय चर्च नहीं कर सकता क्योंकि चर्च के पास एक ही अर्थात् आत्मा की ही तलवार है। तथापि यह ध्यान रखना चाहिए कि वह ग्रेगोरी के समर्थकों की इस मान्यता का उत्तर नहीं दे सका, कि संघर्ष प्राथमिक रूप से हेनरी तथा उसके बिशपों के द्वारा रोम के धर्मपीठ की स्वतंत्रता में, अतः सम्पूर्ण चर्च की स्वतंत्रता में, हस्तक्षेप करने से उत्पन्न हुआ।

अंत में, यह उल्लेखनीय है कि ग्रेगोरी के पक्ष का प्रतिपादन करने वाले किसी भी लेखक ने यह दावा नहीं किया कि चर्च या रोम के पोप को लौकिक विषयों में सामान्य अधिकार प्राप्त है। पसाऊ के बिशप अल्तमान को ग्रेगोरी सप्तम द्वारा लिखे गए पत्र में प्रयुक्त कुछ वाक्यांशों के, तथा 1080 ई० में रोम की परिषद् में उसकी घोषणा के भी अनुरूप इनमें कुछ नहीं है।[86]

सन्दर्भ

1 Bernald, 'Demanatione Schismaticorum', p. II (p. 29).
2. Id. id., Ep. III. (p. 50).
3. Id. id. (p. 52).
4. Gebehardi Salisburgensis Archiepiscopi, 'Epistola ad Herrimanum Mettensem Episcopum'.
5. Id. id., 9–11.
6. Id. id. 15, 16.
7. Id. id., 17–23.
8 Id. id., 31.
9. Id. id., 32.
10. Id. id. id.,
11. Id. id., 34–36.
12. Wenrich of Trier, 'Epistola', 1, 9.
13. Id. id., 1–3.
14. Id. id., 3.
15. Id. id., 4.
16. Cf. pp. 81, 82.
17. Id. id., 8.
18. Petri Crassi, 'Defensio Heinrici Regis,' 1.
19. Id. id , 3.
20. Id. id., 4.
21. Id. id., 7.
22. Id. id., 4.
23. Id. id., 7, 8,
24. Cf. vol. ii., Part I., c. 7.
25. 'Dicta cuiusdam de discordia Papae et Regis' (p. 456).
26. Id. (458).
27. Id.
28. Wido Osnaburgensis, 'Liber de Coniroversia Hildebrandi et Heinrici' (p. 462).
29. Id. id. (p. 463).
30. Id. id., pp. 464–466.
31. Id. id. (p. 466).
32. Id. id. (p. 467).
33. Id. id., p. 468.
34. Id. id. (p.469).
35. Id. id. (p. 470).
36. Cf. p. 212.
37. 'Liber Canonum contra Heinricum Quartum', i.–vi.
38. Id., x., xii.
39. Id., xxi. Cf. vol. iii. p. 122.
40. Id., xxii. xxv.
41. Id., xxvi.–xxix.
42. Id., xxxvii.
43. Cf. vol. iii. pp. 160–169.

Scanned by CamScanner

44. Manegold, 'Ad Gebehardum', 1–14.
45. Id. id., 15–23. 67–77.
46. Id. id., 25–28.
47. Id. id., 29–45, 47–49,
48. Id. id., 57, 58.
49. Id. id.. 50–66.
50. Cf. pp. 86–90.
51. Id. id,, 25–28.
52. Id. id., 29.
53. Id. id., 29–30.
54. Id. id., 31–41.
55. Id. id,, 47–49. Cf. vol. iii. pp, 163–166.
56. Bonizo, 'Ad Amicum', vii. (p. 608).
57. Id. id., viii. (p. 611).
58. Anselmus Lucensis, 'Liber Contra Wibertum' (p. 522.)
59. See p. 212.
60. Bernald, 'Apologeticae Rationes', 'Libulles', v. pp. 95–99. Cf. 'Lib',, vi. and vii.
61. Bernald, 'Libellus', xii., "De Solutione juramentorum".
62. Wido of Ferrara, 'De Seimate Hildebrandii', i. 1, 2.
63. Id. id., 1. 3.
64. Id. id., l, 4–6.
65. Id. id., i. 7.
66. Id. id., 18, 15, 16.
67. Id. id,, i. 9, 10–14, 17, 18.
68. Id. id., i. 19.
69. Id. id., i. 20.
70. Id. id., i. 20.
71. Id. id.. ii. (pp. 551–553).
72. Id. id., ii. (pp. 554–563).
73. Id. id., ii. (p. 563).
74. भाग 2, अध्याय 3 ।
75. Id. id., ii. (p. 566).
76. 'De Unitate Ecciessiae Conservanda', i. 2.
77. Id., i. 8.
78. Id., i. 9.
79. Id., i. 3.
80. Id., ii. 15.
81. Cf. pp. 201–209.
82. Cf vol. iii. p. 120.
83. Id. ii. 7.
84. Id., ii. 21.
85. Cf. p. 241.
86. Cf. pp. 201, 208.

Scanned by CamScanner

तृतीय अध्याय

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों तथा दावों का विवेचन (2)

हम ग्रेगोरी सप्तम के देहावसान के पश्चात् ऐतिहासिक घटनाओं की परम्परा का विस्तार पूर्वक अनुसरण नहीं करना चाहते। हम उसके पोप-पद से कार्यकाल के विषय में वैसा करने को इसलिए विवश हो गए थे क्योंकि उसके राजनीतिक सत्ता के दावे का विकास उस युग की वास्तविक परिस्थितियों से बहुत अधिक जुडा हुआ था। ग्रेगोरी का देहावसान 25 मई 1085 ई० को सालेरनो में हुआ तथा अगले वर्ष 24 मई को मौन्टेकेसीनो (Monte Casino) का मठाधीश डेसीडेरियस (Desiderius) उसके स्थान पर विक्टर तृतीय के रूप में चुना गया। यह सुझाव दिया गया है कि वह हेनरी चतुर्थ से किसी प्रकार का समझौता करने को उत्सुक था।[1] हमें इसमें संदेह है कि इसके लिए पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि, जब उसने अगस्त 1087 ई० में बेनेवेन्टम (Beneventum) की परिषद् में विरोधी पोप ग्यूबर्ट के, तथा किसी भी बिशप या मठाधीश जिसने लौकिक सत्ता से "प्रतिष्ठापन" प्राप्त किया हो और उन सभी सम्राटों, राजाओं और ड्यूकों के जिन्होंने "प्रतिष्ठापन" देने की धृष्टता की हो, हेनरी चतुर्थ का कोई प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है, तथा उसको पदच्युत करने का भी कोई वर्णन नहीं है। विक्टर के चाहे जो भी मध्यस्थतावादी प्रवृत्तियाँ अथवा अभिप्राय रहे हों, उनका कोई परिणाम निकलने से पूर्व ही सितम्बर 1087 ई० में उसका देहावसान हो गया।

पुनः पर्याप्त समय के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी का निर्णय हुआ। मार्च 1088 ई० तक ओस्टिया (Ostia) का बिशप ऑटो अर्बन द्वितीय के रूप में निर्वाचित एवं अभिषिक्त नहीं हुआ। वह क्लूनी के मठ का भिक्षु, तथा एक फ्रांसीसी था, जिसे ग्रेगोरी सप्तम द्वारा रोम लाकर कार्डीनल पद पर नियुक्त किया गया था, तथा वह उसका सबसे कट्टर समर्थक रहा था। अपनी नीति सम्बन्धी पहली घोषणा में ही वह सम्पूर्ण रूप से ग्रेगोरी सप्तम की नीति को ही बनाए रखने को कृतनिश्चय प्रतीत हुआ। उसके निर्वाचन के एक दिन बाद

Scanned by CamScanner

ही 13 मार्च 1888 ई० को उसने जर्मनी के पोप समर्थक बिशपों एवं अन्य व्यक्तियों को पत्र लिखा, उसने अपने निर्वाचन की घोषणा की, तथा उन्हें विश्वास दिलाया कि उसकी इच्छा सभी बातों में ग्रेगोरी के पद-चिह्नों पर चलने की थी·····जिसकी ग्रेगोरी निन्दा करता था उसकी निन्दा, जिसे वह समर्थन देता था उसका समर्थन, जिसकी वह अनुमति देता था उसको अनुमति तथा इस प्रकार सभी विषयों में वह वैसे ही सोचता था जैसे ग्रेगोरी सोचता था। अतः उसने उनको पौरुषपूर्वक ईश्वर के युद्ध में उसके योद्धा के समान दृढ़ता से डट जाने को प्रोत्साहित किया।[2] अप्रैल 1084 ई० में उसने कॉन्सटेन्ट के गेबहार्ट को जर्मनी में अपना प्रतिनिधि नियुक्त करते हुए पत्र लिखा, तथा उसे सूचित किया कि धर्म-बहिष्कार के प्रश्न पर अपने सहयोगियों से विचार-विनिमय से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा, कि पहले विरोधी पोप तथा हेनरी चतुर्थ धर्म-बहिष्कृत ही रहें।[3] उसी वर्ष सितम्बर में उसने लौकिक "प्रतिष्ठापन" के निषेध का पुनर्नवीकरण कर दिया।[4]

जर्मनी की राजनीतिक परिस्थितियाँ फिर बदल गईं। 1088 ई० में थूरिन्जिया का हर्मन (Herman of Thuringia) मर गया, तथा सिंहासन का कोई भी दावेदार गद्दी पर नहीं बैठा था, तथा जनता का मन शांतिमय विचारों की ओर उन्मुख हुआ। 1089 ई० में पोप के पक्ष के राजा एकत्रित होकर हेनरी के पास गए तथा यह प्रस्तावित किया कि यदि वह विरोधी पोप ग्यूबर्ट का समर्थन त्याग दे तो वे उसकी अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। बर्नार्ड ने हेनरी को, अपने "क्रानिकल" में व्यक्तिगत रूप से इसे स्वीकार करने को उन्मुख प्रदर्शित किया है, किन्तु ग्यूबर्ट के समर्थक बिशपों द्वारा उसे इससे विमुख कर दिया गया। समझौता वार्ता 1091 ई० में पुनः प्रारम्भ की गई, किन्तु पुनः विफल हो गई।[5] अवसर समाप्त हो चुका था, तथा 1093 ई० में कोन्राड, जिसे एक्सला शैपल में 1087 ई० में अभिषिक्त किया गया था, अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर बैठा, तथा जर्मनी एवं लम्बार्डी की सम्पूर्ण राजनीतिक परिस्थिति बदल गई। कई बड़े-बड़े लम्बार्ड नगरों ने·····बर्नाल्ड के अनुसार मिलन, क्रेमोना, लीडी तथा पियासैन्जा····· हेनरी के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा बनाया। मिलन के आर्चबिशप ने कोन्राड का अभिषेक किया, तथा दो वर्षों के बाद 1095 ई० में उसने क्रेमोना में अरबन द्वितीय के प्रति निष्ठा की शपथ ली, जिसने कि उसका रोमन चर्च के पुत्र के रूप में अभिनन्दन किया। अरबन ने साम्राज्य तथा राजमुकुट प्राप्ति के लिए उसकी सहायता करने का वचन दिया, किन्तु सदैव रोमन चर्च तथा लौकिक "प्रतिष्ठापन" के निषेध के अधिकार को सुरक्षित रखा।[6]

अरबन अब सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर था। लम्बार्डी से वह फ्रांस को गया, तथा क्लेरमोण्ट की परिषद् में जो नवम्बर 1095 ई० में हुई, उसने धर्मयुद्ध की घोषणा की, लौकिक "प्रतिष्ठापन" के निषेध का पुनर्नवीकरण किया, तथा फ्रांस के राजा फिलिप को अपनी पत्नी का परित्याग करने एवं व्यभिचार करने के आरोप में धर्म-बहिष्कृत कर दिया।[7] 1099 ई० में जब उसकी मृत्यु हुई तो पोप का पक्ष जर्मनी एवं इटली दोनों स्थानों पर पुनः प्रबल हो गया था।

उसी वर्ष 13 अगस्त को पैस्कल द्वितीय का निर्वाचन हुआ तथा 18 जनवरी 1100 ई० को कॉन्सटेन्स के गेबहार्ट को, जिसे अभी भी जर्मनी में पोप का प्रतिनिधि

Scanned by CamScanner

बनाए रखा गया था, लिखते हुए उसने विश्वास दिलाया कि यह अफवाह कि वह हेनरी चतुर्थ तथा उसके अनुयायियों को कोई छूट देने वाला है, झूठी है।[8] सितम्बर 1100 ई० में रेवेन्ना के ग्यूबर्ट की जो कि विरोधी पोप था, मृत्यु हो गई, तथा हेनरी चतुर्थ एवं पोप में समझौते की ओर प्रगति हुई, किन्तु उसका कोई परिणाम नहीं निकला, तथा जनवरी 1102 ई० में हम पैस्कल द्वितीय को फ्लेण्डर्स के काउण्ट को हेनरी पर तथा जो उसका प्रत्येक प्रकार से समर्थन करते हैं उन पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए, और उन्हें यह विश्वास दिलाते हुए पाते हैं कि ईश्वर की इससे बढ़कर श्रेष्ठ कोई भी सेवा नहीं है।[9] मार्च 1102 ई० में रोम की परिषद् में पैस्कल ने हेनरी चतुर्थ के धर्म-बहिष्कार का पुनर्नवीकरण किया। उसने दृढ़ता से लौकिक "प्रतिष्ठापन" के निषेध का प्रतिपादन किया जैसा कि हम एन्सलम तथा इंग्लैंड के हेनरी प्रथम से उसके पत्र-व्यवहार में पाते हैं।[10] तथा एक पत्र में उसने पादरियों द्वारा अयाजकों को सम्मान प्रदान करने का निषेध किया।[11] 1104 ई० में उसने बेवेरिया तथा स्वालिया के कैथोलिकों से पुनः आग्रहपूर्वक कहा कि हेनरी चतुर्थ धर्म-बहिष्कृत था।

1104 ई० के उत्तरार्द्ध तथा 1105 ई० के पूर्वार्द्ध में हेनरी चतुर्थ के विरुद्ध एक नया विद्रोह फूट पड़ा। उसके ज्येष्ठ पुत्र कोन्राड की 1100 ई० में मृत्यु हो गई थी, किन्तु अब उसके छोटे पुत्र हेनरी ने उसके विरुद्ध एक अधिक खतरनाक विद्रोह को संगठित किया। पैस्कल से उसने अपने पिता के प्रति निष्ठा की शपथ से अपने को मुक्त करने का अनुरोध किया। पैस्कल ने उसे आशीर्वाद देकर इस शर्त पर शपथ से मुक्त कर दिया कि वह चर्च से व्यवहार में न्याय का आश्रय लेने की प्रतिज्ञा करे।[12] मई में हेनरी ने नार्डहौसेन (Nordhausen) में एक परिषद् बुलाई जिसमें रोम के प्रति पूर्ण सम्मान की घोषणा की, किन्तु जैसा एकहार्ड के विवरण से स्पष्ट है कोई निश्चित प्रतिज्ञा नहीं की गई।[14] उसी वर्ष नवम्बर में पैस्कल ने मेन्ज़ के आर्चबिशप को लिखे गए पत्र में पुनः नई परिस्थितियों के संदर्भ में अपने द्वारा समर्थित सिद्धान्तों को दोहराया। उसने यह कहने की सावधानी रखी कि उसकी इच्छा है कि राजा उन सभी अधिकारों का उपभोग करे जो न्यायसंगत रूप से उसके हैं, तथा इसको अस्वीकार किया कि उसकी किसी भी प्रकार से इन्हें कम करने की इच्छा है; किन्तु दूसरी ओर, चर्च भी अपनी स्वतन्त्रता का उपभोग करने को स्वतन्त्र होना चाहिए। उसने चर्च के 'रक्षक' के रूप में राजा के स्थान को तथा चर्च से 'परिदान' प्राप्त करने के उसके अधिकार को मान्यता दी, किन्तु मुद्रा एवं दण्ड अर्थात् 'प्रतिष्ठापन' से उसके किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को स्वीकार नहीं किया, तथा इस शर्त पर शांति स्थापित करने के लिए अपनी व्यग्रता व्यक्त की कि राजा और पादरी एक दूसरे के अधिकारों को मान्यता दें।[15]

31 दिसम्बर 1105 ई० को हेनरी चतुर्थ, उसके पुत्र तथा लौकिक एवं धार्मिक राजाओं द्वारा राज्य एवं साम्राज्य से त्यागपत्र देने को विवश कर दिया गया। परन्तु अगले वर्ष ही उसने अपने त्याग का खण्डन किया तथा उसे पर्याप्त समर्थन भी मिला, किन्तु 7 अगस्त को उसकी मृत्यु हो गई। हम 1122 ई० में वॉर्म्स के समझौते में पोप-पद एवं साम्राज्य के सम्बन्धों पर इस खण्ड के पहले भाग में विचार कर चुके हैं तथा उसे

Scanned by CamScanner

दोहराने की यहां कोई आवश्यकता नहीं है।

पिछले अध्याय में हमने विवाद के प्रमुख लक्षणों को निश्चित करने का प्रयास किया था जो कि ग्रेगोरी सप्तम तथा हेनरी चतुर्थ के महान् संघर्ष के कारण, तत्काल उदय हुए थे। अब हमें इस विवाद के उत्तरकालीन विकास का उन लेखों में विचार करना है जो इस संघर्ष से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं, और साथ ही ग्रेगोरी के मृत्योपरान्त वर्षों के इतिहास में भी जिनका हम अभी संक्षेप में वर्णन कर चुके हैं। निस्सन्देह इन लेखों तथा पहले के लेखों के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना असम्भव है, किन्तु हम सोचते हैं कि इनमें कुछ अन्तर अवश्य है। अब तक जिस साहित्य का हम विचार कर चुके हैं वह 1076 ई० से 1093 ई० तक का है, जिस पर अब हम विचार करेंगे वह 1097 ई० से लेकर 1125 ई० तक का है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस काल में भी संघर्ष अत्यन्त तीव्र था, साम्राज्य तथा पोप-पद में जबतक हेनरी चतुर्थ जीवित था कोई समझौता नहीं हो सका था, तथा 1106 ई० में उसकी मृत्यु के बाद भी कुछ वर्षों की तुलनात्मक शांति के बाद संघर्ष पुनः छिड़ गया। तथापि हमारे विचार से यह कहना उचित होगा कि इन ग्रन्थों के स्वरूप में कुछ अन्तर है, यह आवश्यक नहीं कि दोनों पक्षों में से किसी के दावों में कोई कमी हो—जिस पर अभी हमें विचार करना पड़ेगा—किन्तु यह संघर्ष वास्तविक परिस्थिति के बारे में ही नहीं वरन् सामान्य सिद्धान्तों के बारे में भी है, तथा जब कि कभी-कभी विवादकर्ता अत्यन्त चरम स्थिति का आग्रह करते हैं, कभी-कभी उनमें दूसरे पक्ष की मान्यताओं के महत्त्व को स्वीकार करने तथा उसके मूल्यांकन करने का भी प्रयत्न देखा जा सकता है।

इनमें से पहली रचना जिस पर हम विचार करेंगे कार्डिनल ब्यूसडेडिट की लाइबेलस कोन्ट्रा इन्वेसोरेस एट साइमोनियेकोस (Libellus contra Invasores et Symoniacos) है, जिसका समय 1097 ई० से पूर्व नहीं है। वह ग्रेगोरी सप्तम का उसके सर्व प्रथम 1098 ई० में उल्लेख से ही प्रबल एवं निरन्तर समर्थक था। हम "प्रतिष्ठापन" विवाद के सम्बन्ध में उसकी इस रचना का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, इस समय हम लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के स्वरूप एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों को प्रदर्शित करने के लिए ही ब्यूसडेडिट की स्थिति का वर्णन करेंगे।

अपने ग्रन्थ की भूमिका में, मुख्य विषयों की अवतारणा करने के पश्चात् वह कहता है कि उसका उद्देश्य राजकीय सत्ता के गौरव को कम करना नहीं है, क्योंकि उसका भी वैसा ही स्थान है जैसा कि धार्मिक सत्ता का। पुरोहित 'शब्द' की तलवार का उपयोग करता है, जबकि राजा के हाथ में भौतिक तलवार है: दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता है तथा दोनों में से किसी को भी दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।[16] ये शब्द उल्लेखनीय हैं, विशेषतया यह मान्यता कि चर्च केवल एक ही तलवार का उपयोग करता है, तथा लौकिक सत्ता के विशिष्ट स्थान की निस्संकोच स्वीकृति। 1087 ई० में अपने द्वारा प्रस्तुत धर्म-विधानों के संग्रह में, ब्यूसडेडिट ने अनेक प्रामाणिक मतों को उद्धृत किया है जो लौकिक सत्ता की दैवी उत्पत्ति तथा ईश्वरीय न्याय के अधिकारी के रूप में उसके कार्यों का समर्थन करते हैं।[17]

Scanned by CamScanner

तथापि ग्रन्थ के तीसरे भाग में ब्यू सडेडिट ने जो मान्यता प्रकट की है उसकी इससे संगति बैठाना अत्यन्त कठिन है। वह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न अर्थात्, पादरी के लौकिक न्यायालय के कार्यक्षेत्र से मुक्ति, पर विचार कर रहा है। हमने एक दूसरे खण्ड में इस प्रश्न के शास्त्रीय विवाद पर विचार किया है।[18] यहाँ हमारा प्रयोजन केवल उन कुछ निरीक्षणों से है जो कि इस विषय पर धार्मिक एवं लौकिक कानूनों के संघर्ष के बारे ब्यू सडेडिट ने व्यक्त किए हैं। वह मानता है कि विवाद की दशा में लौकिक कानून परित्याज्य हैं, तथा घोषित करता है कि "धार्मिक सत्ता" (Sacredotium) को कानून निर्माण में प्राथमिकता प्राप्त है, क्योंकि ईश्वर ने राजाओं के द्वारा पादरियों को कानून प्रदान नहीं किए अपितु पादरियों द्वारा राजाओं को कानून प्रदान किए हैं, तथा वह इसके दृष्टान्त मूसा तथा ऑरेन एवं प्रेरितों से उद्धृत करता है। वह कहता है कि धार्मिक सत्ता राजकीय सत्ता से बढ़कर है, क्योंकि उसे ईश्वर ने बनाया जबकि राजकीय सत्ता को मनुष्यों ने ईश्वर की स्वीकृति से न कि उसके संकल्प से बनाया है तथा वह सौल (Saul) की नियुक्ति की परिस्थितियों को उद्धृत करके इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है।[19] हम तीसरे खण्ड में इस लेखांश के अन्तिम भाग का उसी प्रकार के अन्य वाक्यांशों से सम्बन्ध का अध्ययन कर आए हैं, अतः हमें उसे दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है।[20]

तथापि हमें यह ध्यान रखना चाहिए, कि सम्पूर्ण वाक्यांश एक दूसरे ही प्रश्न को उठाता है—अर्थात्, इस प्रश्न को कि क्या धार्मिक एवं लौकिक कानूनों में विरोध होने पर सभी दशाओं में लौकिक कानून त्याज्य होगा।[21] शास्त्रीय साहित्य में जहाँ तक इस प्रश्न का विमर्श किया गया है उस पर हम एक अन्य खण्ड में विचार कर चुके हैं, अतः हम इसके सामान्य महत्त्व पर पुनः विचार नहीं करेंगे। ब्यू सडेडिट की स्थिति के अर्थ के विषय में हम क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं? जैसा कि हम अभी देख चुके हैं, ब्यू सडेडिट अपने ग्रन्थ में स्पष्टतया लौकिक तथा धार्मिक, प्रत्येक सत्ता के विशिष्ट स्थान एवं महत्त्व को स्वीकार करता है तथा "सिद्धान्तों के संग्रह" (Collectio Cononum) में उसने उन अधिकारियों का मत प्रस्तुत किया है जो कि यह मानते हैं कि लौकिक सत्ता का उदय तथा अधिकार दैवी हैं। क्या हम यह मान लें कि अंतिम वाक्यांश द्वारा वह इन सिद्धान्तों का खण्डन करना चाहता है, और यह सिद्ध करना चाहता है कि लौकिक सत्ता का कोई दिव्य स्वरूप नहीं है, तथा धार्मिक सत्ता को उसके अपने क्षेत्र में भी तथा उसके वास्तविक कार्यों के विषय में भी उसकी अवहेलना का अन्तिम अधिकार प्राप्त है। यह हमें पूर्णतया असंभावनीय प्रतीत होता है, तथा हम यह सुझाव देंगे कि इस प्रकार के मध्ययुगीन लेखकों के पृथक्-पृथक् वाक्यों की व्याख्या करते समय अभिन्न सावधानी बरतने की आवश्यकता का यह एक श्रेष्ठ उदाहरण है। ब्यू सडेडिट का अन्य स्थलों की भाँति यहाँ भी प्रयोजन धार्मिक सत्ता एवं उसके कानूनों की पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रतिपादन है,[22] तथा वह इस पर बल देता है कि लौकिक सत्ता की तुलना में उसे एक प्रकार की "प्राथमिकता" प्राप्त है, किन्तु इसका अर्थ यह कहना नहीं है कि धार्मिक कानून लौकिक कानूनों के क्षेत्रान्तर्गत भी उनका अतिलंघन कर सकता है।

जनवरी 1103 ई० में पोप पैस्कल द्वितीय ने फ्लेण्डर्स के काउण्ट को लीज के पादरियों

Scanned by CamScanner

पर, जिन्हें उसने हेनरी चतुर्थ से सम्बन्धों के कारण धर्म-बहिष्कृत किया था, आक्रमण करने के लिए प्रेरित करते हुए पत्र लिखा, तथा केम्बराई के विरुद्ध उसके जोरदार उदय की सराहना की। लीज के पादरियों की प्रेरणा से गेम्बलों (Gembloux) के एक भिक्षु सीजबर्ट ने लीज के चर्च के नाम से सभी शुभ-संकल्पों वाले व्यक्तियों को सम्बोधित करते हुए एक पत्र लिखा, जिसमें पोप के इस पत्र का विरोध किया।[23]

सीजबर्ट का पत्र अधिकांशतः किसी भी नए सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व नहीं करता, किन्तु वह उन व्यक्तियों की स्थिति को अद्वितीय बलपूर्वक प्रस्तुत करता है जिन्होंने हेनरी चतुर्थ के प्रति निष्ठा का त्याग करना अस्वीकार कर दिया था, और यह विवादित प्रश्नों के सैद्धान्तिक पक्ष पर ही निर्णय अभिव्यक्त नहीं करता, किन्तु संघर्ष के वास्तविक परिणामों के स्पष्ट बोध की भी अभिव्यक्ति करता है। वास्तव में यही तथ्य इस रचना को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। सीजबर्ट इस संदेह को दोहराता है कि क्या राजा को धर्म-बहिष्कृत किया जा सकता है, वह कहता है कि मामला अभी भी न्यायाधीन है,[24] किन्तु वह इसके विषय में निश्चित है कि चाहे राजा का धर्म-बहिष्कार हो अथवा नहीं, उसके प्रति निष्ठा की शपथ अवश्य पालनीय है, तथा वह कटु अभियोग लगाता है कि पोप द्वारा लीज की जनता को इसी कारण धर्म-बहिष्कृत माना गया है कि वे उस बिशप के अनुयायी हैं जो हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ का सम्मान कर रहा है।[25] वह प्रतिपादन करता है कि राजा चाहे कितना ही बुरा हो, उसकी आज्ञा पालनीय है; चाहे हेनरी वैसा ही हो जैसा कि उसके शत्रुओं ने बताया है, तो भी ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए न कि उसके विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करना चाहिए तथा उसने बल पूर्वक कहा कि वे शासक जिनकी आज्ञा पालन करने की संत पाल ने मनुष्यों को आज्ञा दी थी ईसाई भी नहीं थे। पोप को इस उदाहरण का अनुकरण करना चाहिए. तथा चाहे राज्य कितना ही बड़ा पापी हो, उनके लिए प्रार्थना करनी चाहिए ताकि मनुष्य शांतिपूर्वक एवं स्थिर जीवन बिता सकें, उसे उसके विरुद्ध युद्ध छेड़कर मनुष्यों को शांति एवं स्थिरता का उपभोग करने में बाधा नहीं डालनी चाहिए।[26]

पुनः सीजबर्ट इसमें गम्भीर सन्देह व्यक्त करता है कि हेनरी को न्यायोचित कारणों से धर्म-बहिष्कृत किया गया है : वह पोप के उसके प्रति दृष्टिकोण में अतर्कसंगत भावना के अंश पाता है, तथा पोप को ग्रेगोरी महान् की चेतावनी का स्मरण दिलाता है, कि जो व्यक्ति अकारण ही तथा स्वेच्छया बांधने व मुक्त करने की सत्ता का उपयोग करता है वह उससे वंचित हो जाता है। धर्म-बहिष्कार के अन्याय पूर्ण दण्ड को ईश्वर स्वयं समाप्त कर सकता है।[27] वह पैस्कल को यह स्मरण दिलाता है कि पोप सिल्वेस्टर से लेकर हिल्डेब्राण्ड तक किन अनुचित उपायों का अवलम्बन लेकर बहुधा मनुष्य पोप-पद तक पहुँचे हैं; वह उसे यह भी याद दिलाता है कि प्रायः सम्राटों का ही यह कार्य रहा है कि वे इसका प्रतिकार करें, तथा झूँठे पोपों की निन्दा एवं उनकी पदच्युति करें। पोपों को गम्भीर तथा प्रकट दोषों के कारण भर्त्सना एवं संशोधन के लिए उसी प्रकार प्रस्तुत रहना चाहिए जैसे कि पीटर ने पॉल के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। जो भर्त्सना एवं संशोधन के लिए अपने को प्रस्तुत नहीं करता है वह झूठा बिशप है।[28] ये मान्यताएँ बल पूर्वक प्रकट

Scanned by CamScanner

की गई हैं, तथा यह उल्लेखनीय है कि ये ऐसे व्यक्ति के द्वारा व्यक्त की गई हैं जो पैस्कल द्वितीय को पोप मानता है, तथा रोमन धर्मासन के सर्वोच्च स्थान एवं सत्ता को स्वीकार करता है।[29]

तथापि, उसके ग्रन्थ का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष, पोप द्वारा बल प्रयोग के आग्रह की नीति का सशक्त विरोध है। वह पैस्कल द्वितीय के फ्लेन्डर्स के काउण्ट को सम्बोधित पत्र के शब्दों को उद्धृत करता है, जिसमें उसने केम्ब्राई पर आक्रमण करने के लिए दी गई उसकी आज्ञा के पालन की प्रशंसा की है तथा उससे लीज के धर्म में फूट डालने वाले पादरी तथा हेनरी के सभी समर्थकों पर आक्रमण करने का अनुरोध किया है। सीजबर्ट अपना भय प्रकट करता है कि पोप केम्ब्राई के विनाश का दायित्व अपने पर ले रहा है, जिसमें दोषी एवं निरपराध व्यक्तियों की एक ही साथ हत्या हुई है; यदि पैस्कल स्वयं यह स्वीकार नहीं करता तो उसे कभी विश्वास नहीं होता कि ऐसी बातों को पोप के धर्मासन की सत्ता से किया गया है। वह टूर्स के मार्टिन के आचरण से इसका विरोध दिखलाता है, जिसने बिशप इटेचियस (Itachius) से पत्र-व्यवहार बन्द कर दिया था, क्योंकि वह धर्मद्रोह के लिए प्रिस्कीलियन (Priscillian) की हत्या का दोषी था।[30] टूर्स के मार्टिन का यह उल्लेख तथा उसके द्वारा धर्म-द्रोहियों के वध की निन्दा बहुत रोचक है। आंशिक रूप से इसका कारण यह हो सकता है लीज के बिशप बजो के भी वही विचार बताए जाते हैं; उसने भी धर्म-द्रोहियों के विरुद्ध हिंसा के प्रयोग की निन्दा की है।[31] वास्तव में हमें यह नहीं मानना चाहिए कि सीजबर्ट के निष्कर्ष वही थे जो कि हम उसकी मान्यताओं में निहित मानते हैं; सम्भवतः उसका एक सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करने का विचार नहीं था, किन्तु वास्तव में पोप के मनुष्यों और स्त्रियों की हत्या के प्रत्यक्ष कारण के रूप में वह अपनी व दूसरों की वास्तविक प्रतिक्रिया का वर्णन कर रहा है। किन्तु वह एक बाद के अध्याय में मूल प्रश्न पर जाता है, कि पोप को अपनी ही प्रजाओं के विरुद्ध तलवार खींचने का अधिकार कहाँ से प्राप्त हुआ। डेविड को ईश्वर का मन्दिर बनाने योग्य इसीलिए नहीं समझा गया था कि वह एक रक्तपान करने वाला मनुष्य था; अब उच्च पादरी (पोप) पवित्रों के पवित्र स्थान (रोमन चर्च) में ईसा के रक्त को अपने आप को तथा दूसरों को समर्पित करने के लिए रक्त रंजित वस्त्रों से कैसे प्रवेश कर सकेगा? ग्रेगोरी महान् से लेकर हिल्डेब्राण्ड तक किसी पोप ने आध्यात्मिक तलवार से भिन्न दूसरी तलवार का उपयोग नहीं किया था, और न ही युद्ध की तलवार का प्रयोग सम्राट् के विरुद्ध किया था।[32]

सीजबर्ट के तर्कों में अनेक नवीन नहीं है, किन्तु उसके पत्र में हमें लम्बे संघर्ष तथा परिणामस्वरूप रक्तपात एवं विनाश के प्रति उसकी बढ़ती हुई भय की भावना की अनुभूति प्रतीत होती है।

लगभग उसी समय जबकि सीजबर्ट ने शुभ संकल्पों वाले सभी व्यक्तियों को सम्बोधित अपना पत्र लिखा था फ्ल्यूरी के ह्यूज ने राजकीय सत्ता एवं पौरोहित्य की गरिमा पर एक ग्रन्थ इंग्लैंड के हेनरी प्रथम को समर्पित किया।[33] उस यथार्थ कारण को ढूंढ़ सकना संभव नहीं प्रतीत होता जिसने इस समर्पण को निश्चित किया। निस्संदेह इंगलैंड भी "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर संघर्ष से अछूता नहीं था, किन्तु यद्यपि यह ग्रन्थ इसका वर्णन करता है, तथापि

Scanned by CamScanner

यह रचना अभी तक वर्णन किए गए ग्रन्थों की तुलना में एक औपचारिक राजनीतिक कृति के रूप में अधिक प्रतीत होती है।

लेखक ग्रन्थ की भूमिका में अपना उद्देश्य बताता है; उसका प्रयोजन राजकीय एवं धार्मिक अधिकारियों के सम्बन्धों के विषय में भयंकर संघर्ष का कोई समाधान करना, उन व्यक्तियों की गलती का संशोधन करना जो कि दोनों सत्ताओं को एक दूसरे के विरुद्ध मानते हैं और यह प्रतिपादित करते हैं कि राजकीय सत्ता ईश्वर द्वारा नहीं मनुष्य द्वारा स्थापित है—यह सम्मति उसके अनुसार व्यापक रूप से अति प्रचलित है।

अतः वह ग्रेगोरी सप्तम द्वारा मेट्ज़ के हर्मन को लौकिक सत्ता के उदय के विषय में 1080 ई० में लिखे गए पत्र के विधिवत् खण्डन से प्रारम्भ करता है,[34] तथा तर्क देता है कि उसमें अभिव्यक्त मान्यताएँ पूर्णतया असत्य हैं। वह इसे न केवल संत पाल के इन शब्दों से ही सिद्ध करता है, कि "ईश्वर के अतिरिक्त कोई शक्ति नहीं तथा जो भी शक्तियाँ हैं वे ईश्वर द्वारा आज्ञप्त हैं," वरन् संसार में मनुष्यों के तथा शरीर के ऊपर मस्तिष्क के शासन के दृष्टान्त से भी इसे सिद्ध करता है; तथा वह प्रतिपादित करता है कि ईश्वर ने धरती एवं स्वर्ग दोनों ही स्थानों पर सत्ताओं की एक श्रेणी बनायी है।[35] दो सत्ताएँ हैं, अर्थात्, राजकीय एवं धार्मिक, जिनके द्वारा चर्च का वर्तमान जीवन नियंत्रित होता है: वे दोनों पावन हैं तथा उनको एक दूसरे के विरुद्ध नहीं करना चाहिए।[36]

तथापि, इस ग्रन्थ का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष दोनों सत्ताओं के पारस्परिक सम्बन्धों की तुलनात्मक स्थितियों के तथा प्रत्येक की दूसरे पक्ष के अधिकारियों पर अधिकार के विवरणों में हैं। वह प्रारम्भ में ही उनकी सापेक्ष स्थितियों का वर्णन ईश्वरत्व के अन्तर्गत पिता व पुत्र के सम्बन्धों की तुलना की शब्दावली में प्रस्तुत करता है। वह कहता है कि राजा अपने राज्य के शरीर में पिता के प्रतिरूप को धारण करता है, तथा बिशप ईसा के प्रतिरूप को। ह्यूज ने इस तुलना से वास्तव में क्या समझा था स्पष्ट नहीं है, यह कल्पना की जा सकती है कि यह चतुर्थ शताब्दी के एम्ब्रोसियेस्टर (Ambrosiaster) अथवा आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के केथलफश (Cathulfus) की शब्दावली की साहित्यिक संस्कृति है। जैसा हम अभी देखेंगे, कि यह अज्ञातनामा लेखक के ग्रन्थ "ट्रेक्टेटश इबोरेसेन्सेस (Tractatus Eboracenses) में प्रयुक्त कुछ वाक्यांशों के समानान्तर हैं। सम्पूर्ण वाक्यांश का अर्थ तो स्पष्ट नहीं है, किन्तु ह्यूज उससे अपने निष्कर्ष पर्याप्त निश्चितता पूर्वक निकाल लेता है। सभी साम्राज्य के बिशप राजा के अधीन हैं, जैसे ईसा (Son) ईश्वर (Father) के अधीन स्वभाव से नहीं किन्तु व्यवस्थान्तर्गत (Ordine) है, जिससे की सम्पूर्ण साम्राज्य की एक ही उत्पत्ति मानी जा सकती है; इसके उदाहरण स्वरूप वह मूसा (Moses) की स्थिति का दृष्टान्त देता है, जो कि हिब्रू राष्ट्र में राजा की 'प्रतिकृति' था, जबकि आरोन पुरोहित की। उसने साम्राज्य में पुरोहितों के सम्राट के अधीन होने के सिद्धान्त का वर्णन आमुख में पहले से ही दे दिया था, तथा एक बाद के अध्याय में वह पुनः उसी का वर्णन करता है।[37]

अस्तु, राजा एवं पुरोहित के सम्बन्धों का यह एक पक्ष है, किन्तु इसका एक दूसरा पक्ष भी है। अन्यत्र, जब वह बिशप द्वारा सम्राट् के विरुद्ध हथियार उठाने का विरोध करता

Scanned by CamScanner

है, ह्यूज यह भी कहता है कि बिशप अपने पद के गौरव में राजा की तुलना में कहीं बढ़चढ़ कर है, जैसे कि धार्मिक पद केवल मात्र लौकिक विषयों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है, इसलिए यदि बिशप को दोषी पाया जाए तो उस पर अभियोग लौकिक न्यायालय में नहीं सामान्य धर्मसभा में चलाया जाए।[38] यदि राजा को बिशप पर अधिकार प्राप्त है, तो बिशप को भी राजा पर अधिकार है। राजा पर धर्म के अनुशासन का अंकुश है, उसे बिशप की प्रताडना पर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि उनको मनुष्य के लिए स्वर्ग खोलने एवं बंद करने का अधिकार है, और इसीलिए, यदि आवश्यकता हो तो, वे राजाओं को भी धर्म-बहिष्कृत कर सकते हैं तथा ह्यूज इस प्रकार के धर्म-बहिष्कारों के अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है।[39] यह स्पष्ट है कि वे हेनरी चतुर्थ के उन समर्थकों से सहमत नहीं जो पोप द्वारा सम्राटों या राजाओं को धर्म-बहिष्कृत करने के अधिकार पर संदेह करते थे, अथवा उसे अस्वीकार करते थे; वह बहुत स्पष्टता से यह सिद्ध करता है कि बिशप या पोप समस्त लौकिक शासकों पर धार्मिक सत्ता से सम्पन्न हैं ठीक वैसे ही जैसे कि उनको सभी बिशपों पर लौकिक अधिकार प्राप्त हैं।

तथापि, वह न केवल सामान्य शब्दों में ही लौकिक शासकों पर धार्मिक शासकों की सत्ता के सिद्धान्त को प्रस्तुत करता है, वह यह भी स्पष्ट कर देता है कि उसके मत में उस सत्ता की प्रकृति एवं सीमाएँ क्या थीं। बिशप को राजा पर धार्मिक अधिकार प्राप्त हैं, किन्तु इन अधिकारों का दुरुपयोग हो सकता है, तथा धर्म-बहिष्कार के अधिकार में प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करने का अधिकार निहित नहीं है—अर्थात् बिशप का राजा को पदच्युत करने का कोई अधिकार नहीं है। कभी-कभी ऐसा हुआ है कि बिशपों ने अपनी सत्ता का प्रयोग वास्तविक परिस्थितियों की न्यायपूर्ण समीक्षा करके नहीं अपितु भावना के वशीभूत होकर किया है, तथा इस प्रकार धर्म-बहिष्कार का दुरुपयोग केवल कानून की सत्ता के प्रति घृणा को ही जन्म देता है। कुछ बिशपों ने राजा की प्रजाओं को निष्ठा की शपथ से मुक्त करना प्रारम्भ कर दिया है, किन्तु यह मूर्खता है तथा ईश्वर के विरुद्ध अपमान का कार्य है जिसके नाम पर उनको शपथ दिलाई गई है। यह सत्य है कि कुछ शपथें अन्यायपूर्ण हो सकती हैं जिनका पालन नहीं करना चाहिए, किन्तु यह स्पष्ट है कि ह्यूज इनमें किसी मनुष्य द्वारा एक शासक के प्रति ली गई निष्ठा की शपथ को सम्मिलित नहीं करता, चाहे वह शासक धर्म-बहिष्कृत ही क्यों न हो।[40]

यदि ह्यूज इस मामले में स्पष्ट है कि बिशप की सत्ता राजा को पदच्युत करने तक विस्तृत नहीं, वह इस पर भी बल देता है कि चाहे वह कितना भी क्रूर एवं अन्यायी क्यों न हो, उसे उसके विरुद्ध हथियार नहीं उठाने चाहिए।[41] बिशप का कार्य राजा एवं जनता के बीच मध्यस्थ होना, राजाओं एवं राजकुमारों का उनकी जनता के प्रति क्रोध दूर करना, तथा दोनों के कल्याण के लिए रात और दिन प्रार्थना करना है।[42] अतः बिशप को राजाओं पर भी धार्मिक सत्ता प्राप्त है, किन्तु यह सत्ता धार्मिक मामलों तक ही सीमित है, तथा केवल धार्मिक दण्डों द्वारा ही क्रियान्वित की जानी चाहिए। दूसरी ओर जैसा कि हम देख चुके हैं, सभी बिशप राजा के राज्य में उसके अधीन हैं, किन्तु वे लौकिक न्यायालयों के अधीन नहीं, यदि उन पर कोई अभियोग लगाया गया है, तो उन पर विचार एक

Scanned by CamScanner

"सामान्य धर्म सभा" में किया जाना चाहिए।

अपने ग्रंथ के दूसरे भाग में ह्यूज बिशप पदों पर नियुक्ति का प्रश्न उठाता है, तथा उस पक्ष का जिसे वह लौकिक सत्ता का उचित स्थान बताता है, समर्थन करता है, किन्तु इस विषय का पहले ही विवेचन किया जा चुका है।[43] दो विषय जिनका अभी हमने उल्लेख नहीं किया महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम तो उसके द्वारा इस मान्यता की निन्दा है कि पोप की कोई प्रताड़ना नहीं कर सकता, तथा वह यह बताता है कि संत पीटर की त्रुटि करने पर संत पाल ने भर्त्सना की थी।[44] द्वितीय उसके द्वारा पोप की नियुक्ति में विशेषतया विवादास्पद निर्वाचनों के मामलों में सम्राट् के स्थान का विस्तृत वर्णन है तथा वह पोप निकोलस द्वितीय के घोषणा के पक्ष में आग्रह करता है।[45]

फ्लयूरी के ह्यूज की स्थिति महत्त्वपूर्ण तथा रोचक है : वह हिल्डेब्राण्ड के कार्यों तथा जिन्हें वह उसके सिद्धान्त कहता है, कि बहुत स्वच्छन्दता से तथा बलपूर्वक आलोचना करता है, किन्तु वह धार्मिक पद के गौरव तथा उसकी राजाओं पर भी सत्ता का समर्थन करने में भी स्पष्ट है।

यहीं पर उस ग्रन्थ के लेखक की विचित्र मान्यताओं पर विचार करना सर्वोत्तम होगा, जिसका शीर्षक 'ट्रेक्टेटस इबोरेसेन्सेस' है।[46] वास्तव में यह कहना कठिन है कि हमें उसको क्या महत्त्व प्रदान करना चाहिए, किन्तु यह मानना तर्क संगत होगा कि फ्लयूरी के ह्यूज के कुछ वाक्य समूहों में तथा उनकी कुछ मान्यताओं में महत्त्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय समानता है। हम अभी देख चुके हैं कि ह्यूज कहता है कि राजा ईश्वर की प्रतिमूर्ति है, तथा बिशप ईसा की, तथा इसलिए यह ठीक है कि बिशप सम्राट् के साम्राज्य में उसके अधीन रहे। जैसा हम कह चुके हैं, कि यह ठीक निर्धारण करना संभव नहीं प्रतीत होता कि ह्यूज इन वाक्यांशों को क्या स्पष्ट महत्त्व प्रदान करता था, तथा कहाँ तक वे नवीं शताब्दी के केथलफस तथा चौथी शताब्दी के एम्ब्रासियेस्टर के शब्दों के साहित्यिक संस्मरण हैं।[47] इन्हीं वाक्य-समूहों से हमें राजा तथा बिशपों की सापेक्ष स्थिति एवं सत्ता के वर्णन की तुलना करनी चाहिए जो ट्रेक्टेटस इबोरेसेन्सेस के चौथे अंश के लेखक द्वारा किया गया। यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि ग्रन्थ एन्सलम तथा इंगलैंड के राजाओं के बीच प्रतिष्ठापन विवाद के काल की रचना है।

उसकी मान्यता है कि राजा एवं पुरोहित दोनों ही ईश्वर द्वारा अभिषिक्त हैं, किन्तु पुरोहित ईसा के मानवीय स्वभाव का प्रतिनिधि है, जिसके कारण वह पिता (ईश्वर) से निकृष्ट है, जबकि राजा दिव्य स्वभाव का प्रतिनिधि है, जिसमें वह ईश्वर के तुल्य है; पुरोहित मरणासन्न ईसा का प्रतिनिधि है, तथा अपने आपको ईश्वर की बलि के रूप में समर्पित करता है, राजा यश तथा सम्मान से अभिषिक्त होने वाले तथा अपने स्वर्गीय सिंहासन से सभी सत्ताओं एवं अधिकारों के ऊपर शासन करने वाले ईसा का प्रतिनिधित्व करता है। संदेश वाहक देवदूत (Angel of Annunciation) ने मेरी से कहा "ईश्वर उसे उसके पिता डेविड का सिंहासन प्रदान करेगा", उसके पिता आरोन का नहीं, क्योंकि ईश्वर ने डेविड को पुरोहितों पर भी सत्ता प्रदान की है। अतः यह न्याय संगत है कि राजा को पुरोहित पर भी अधिकार एवं सत्ता प्राप्त हो।[48]

Scanned by CamScanner

लेखक यह प्रतिपादित करता है कि मूसा और जोशुआ तथा इजरायल के पाँच राजा इसी प्रकार पुरोहितों से श्रेष्ठ थे,[49] तथा वह इस मत को पुनः दोहराता है कि राजकीय सत्ता पुरोहित की सत्ता से अधिक बड़ी है, क्योंकि वह ईसा के देवत्व की प्रतिनिधि है, जो उसकी मानवता से श्रेष्ठतर है, अतः उचित ही है कि राजा पुरोहितों पर शासन करे तथा वह उनको पद स्थापित करे।[50] एक प्रकार से राजा का अभिषेक वैसा ही है जैसे कि पुरोहित का, दूसरे प्रकार से वह अधिक बड़ा है, क्योंकि पुरोहित का अभिषेक आरोन या प्रेरितों के अनुकरण पर है, जबकि राजा का अभिषेक ईसा के अनुसरण पर है, जिसे ईश्वर ने उसके अनुयायियों से ऊपर अभिषिक्त किया है,[51] इस प्रकार सम्राट से उच्चतर है तथा उसका शासन करता है तथा लेखक ग्रेगोरी महान् के पत्र से कुछ वाक्यांश उद्धृत करता है जो सम्राट के प्रति उसके आज्ञापालन तथा सम्मान को प्रदर्शित करते हैं।[52]

दूसरे वाक्य-समूहों में वह दावा करता है कि राजा को चाबियों (Keys) का अधिकार है, यद्यपि इससे उसका क्या वास्तविक अभिप्राय था यह कहना बहुत कठिन है,[53] तथा वह चर्च की परिषदों को बुलाने तथा उनकी अध्यक्षता करने वाला प्रधान अधिकारी है।[54] वह प्रतिपादित करता है कि राजा को साधारण जनता में से एक नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वह ईश्वर का ईसा (Lords Christ) है[55] तथा, दूसरे स्थान पर वह लिखता है कि उसे अपराधों को क्षमा करने तथा क्रीस्त-याग (Man) में रोटी तथा मदिरा की हवि समर्पित करने का अधिकार है, जैसा वास्तव में वह अपने अभिषेक के दिन करता भी है।[56]

इन सब बातों के बाद यह एक तुच्छ बात प्रतीत होती है कि राजा बिशप को उसके पद के दण्ड से प्रतिष्ठापित करने के अधिकार का दावा करे, तथा वास्तव में यह उल्लेख है कि वह इसको विशेष रूप से स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है कि वैसा करते समय बिशप को उसका पद या धार्मिक अधिकार प्रदान नहीं करता, अपितु केवल लौकिक सम्पदा एवं चर्च की संरक्षकता तथा ईश्वर के बन्दों को शासन करने की सत्ता प्रदान करता है।[57]

ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दियों में ये मान्यताएँ पर्याप्त रूप से विस्मयजनक हैं, किन्तु लेखक के दृष्टिकोण को सम्पूर्णतया समझने के लिए, हमें राजा एवं बिशप के सम्बन्धों के इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त तीसरे और पांचवे ट्रेक्टस में किए गए पोप की सत्ता और स्थिति के उल्लेखनीय विवरण का भी अध्ययन करना होगा। रोम की धार्मिक सत्ता के इतिहास का वर्णन इस पुस्तक के क्षेत्र में नहीं आता, यहाँ इस विषय का विवेचन हम केवल इसीलिए करेंगे कि इन उपर्युक्त ग्रन्थों के सम्पूर्ण महत्त्व का निर्णय करने में समर्थ हो सकें।

तृतीय ट्रैक्ट में, लेखक सम्भवतः 1096 ई० के लगभग पोप द्वारा राऊन, सेन्स तथा टूर्स के आर्चबिशपों पर लियोन्स के आर्चबिशप का एक प्रकार का धर्माधिपत्य स्वीकार कर लेने के कारण उत्थित विवाद में व्यस्त है। राऊन के आर्चबिशप विलियम की इस सत्ता को मान्यता देने में अवहेलना तथा रोमन पोप पद की अवमानना के कारण गम्भीर भर्त्सना की गई। ट्रेक्ट का लेखक इसके प्रत्युत्तर में जो तर्क देता है वह दूरगामी है। सर्व-प्रथम वह कहता है, कि आर्चबिशप तथा दूसरे बिशप रोमन पोप की गद्दी के प्रति उतने

Scanned by CamScanner

ही आज्ञापालन के भागी है, जितना कि दूसरे प्रेरित पीटर के प्रति थे, क्योंकि वे न केवल प्रेरितों के अनुयायी हैं अपितु वे उनके प्रतिनिधि भी हैं।[58] दूसरे, वह यह तर्क देता है कि आर्चबिशप भी पीटर का प्रतिनिधि है, तथा ईसा ने बाँधने एवं मुक्त करने की जो सत्ता पीटर को दी थी, वह उसके पास भी है। अस्तु, राऊन के आर्चबिशप तथा रोमन पोप-पद के बीच बड़प्पन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, तथा दोनों में से कोई भी किसी का न्याय नहीं कर सकता। बिशप का न्याय ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी नहीं कर सकता।[59] ये मान्यताएँ अपने स्वरूप में अत्यन्त कठोर हैं, किन्तु लेखक इनसे भी आगे बढ़ जाता है।

वह इस प्रश्न का विवेचन करता है कि क्या राऊन के आर्चबिशप से लियोन्स के आर्चबिशप की सत्ता मानने की अपेक्षा न्यायोचित है, तथा उसकी मान्यता है कि इसका कोई औचित्य नहीं है। वह सुझाव देता है कि रोम के समर्थक यह कह सकते हैं कि उसे रोम की आज्ञा का पालन करना चाहिए, क्योंकि यह घोषणा की गई है कि रोमन चर्च सभी चर्चों की जननी तथा स्वामी है। वह स्वीकार करता है कि रोम के बिशपों तथा उनके अनुयायियों द्वारा यह घोषणा की गई है, किन्तु वह प्रतिपादित करता है कि यह ईसा या उसके प्रेरितों द्वारा नहीं किया गया है। यदि कोई चर्च सभी चर्चों की जननी हो सकती है, तो वह यरूशलम का चर्च है। वास्तविकता तो यह है कि रोम को सभी चर्चों से ऊपर, ईसा या उसके प्रेरितों की सत्ता द्वारा नहीं, किन्तु मनुष्यों की सत्ता द्वारा बनाया गया है, तथा इसका कारण सम्राट् के नगर की गरिमा तथा सत्ता है। रोम की स्थिति न्याय संगत सत्ता पर आधारित नहीं वरन् अनधिकार चेष्टा पर आधारित है, यद्यपि उसका उदय विभेद से बचने की आवश्यकता के कारण हुआ है। मूल रूप में चर्च का शासन पुरोहितों की परिषद् द्वारा संचालित होता था, केवल फूट पड़ने की आशंका से ही यह नियम बनाया गया है कि एक पुरोहित को अन्य के ऊपर रखा जाए, तथा वह सम्पूर्ण चर्च की देख-भाल के लिए उत्तरदायी हो।[60]

पाँचवें ट्रेक्ट में, जो कि ब्वीहमर के अनुसार चौथे की भाँति ही इंग्लैंड के प्रतिष्ठापन के विवादकाल का है, अत्यन्त कठोर शब्दों में पोप पर पुनः आक्रमण करता है। लेखक तर्क देता है कि पोप अनेक ऐसी आज्ञाएँ देता है जैसी ईसा भी नहीं देता था। उदाहरणार्थ, पोप द्वारा बिशपों को रोम में अनेक बार उपस्थिति के लिए विवश करने से उन पर असह्य भार डाल दिया गया है। वह शिकायत करता है कि बिशपगण पोप के अधिकारियों के लोभ को सन्तुष्ट करने के लिए चर्च की सम्पत्ति को बेचने के लिए विवश हो गए। वह प्रतिपादित करता है कि यदि पोप इस कारण बिशपों को धर्म-बहिष्कृत करता है कि ऊपर वर्णित इन मामलों में वे उसकी आज्ञापालन नहीं करते थे, तो वह धर्म-बहिष्कार अवैध है तथा उसका कोई प्रभाव नहीं है।[61] वह पोप द्वारा अनेक मठों को पादरियों के अधिकार-क्षेत्र से मुक्त करने के कार्य की कठोर भर्त्सना करता है, तथा यह प्रतिपादित करता है कि ऐसी मुक्ति को मान्यता नहीं मिलनी चाहिए, क्योंकि वह ईश्वर के आदेश के विरुद्ध है, तथा पोप को उसे बदलने का कोई अधिकार नहीं है।[62] वह पोप द्वारा चर्च के शासन में राजाओं के अधिकार को नष्ट करने के प्रयत्नों की निन्दा करता है कि यह पोप जिलेसियस द्वारा स्थापित सिद्धान्तों का खण्डन है कि संसार, यहाँ इससे अभिप्राय

Scanned by CamScanner

चर्च से ही है, दो सत्ताधारियों से शासित है-पुरोहित तथा राजा। चर्च की राजकीय सत्ता से उसका स्पष्ट अभिप्राय "प्रतिष्ठापन" का अधिकार है, तथा वह पुनः इस बात पर बल देता है कि राजा एक साधारण नागरिक नहीं है।[63]

यह कहना अत्यन्त कठिन है कि इन अति-असाधारण मान्यताओं को हम क्या महत्त्व प्रदान करें, तथा किस प्रकार यह निर्धारण करें कि कहाँ तक ये कुछ क्षेत्रों में पायी जाने वाली सामान्य विचार प्रणाली का प्रतिनिधित्व करती हैं, या केवल व्यक्तिगत सम्मतियाँ मात्र हैं। फ्ल्यूरी के ह्यूज के कुछ शब्दों से इनकी समानता स्पष्ट है, तथा इन धारणाओं का अन्तिम साहित्यिक स्रोत एक ही हो सकता है, किन्तु ह्यूज इन वाक्य-समूहों का प्रयोग करते समय इनकी गलत व्याख्या न होने देने की सावधानी भी बरतता है, तथा धार्मिक पद के उच्चतर गौरव पर बल देता है, इन ट्रेक्टों का लेखक अपने तर्क को राजकीय "प्रतिष्ठापन" के अधिकार या लौकिक सत्ता की दिव्यता को प्रतिपादित करने के लिए आवश्यकता से कहीं अधिक दूर तक ले जाता है।

उसके ग्रन्थ ऑर्थोडोक्सा डिफेन्सियो इम्पीरियलिस (Orthodoxa Defensio Imperialis) में जो सम्भवतः 1111 ई० में लिखा गया है, अभिव्यक्त केटीनो के ग्रेगोरी के दृष्टिकोण का हम पहले ही विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं, जिसमें लौकिक सत्ता के विरुद्ध विद्रोह की अपावनता तथा राजा या सम्राट् द्वारा बिशप के "प्रतिष्ठापन" के अधिकार के प्रयोग का प्रतिपादन किया गया है।[64] तथापि वह कुछ महत्त्वपूर्ण वाक्यों का प्रयोग करता है, जिन पर हमको ध्यान देना चाहिए। एक स्थान पर वह कहता है कि ईश्वर ने ही चर्च में राजाओं तथा उच्च अधिकारियों को स्थापित किया है, जिनके लिए सदा प्रार्थना करने का उपदेश प्रेरितों ने दिया है, तथा हमें राजा को चर्च का अध्यक्ष मानना चाहिए। यह असंगत नहीं कि चर्च के अधिकारी सम्राट् द्वारा मुद्रा एवं दण्ड से "प्रतिष्ठापित" किए जाएँ, क्योंकि यदि राजा चर्च का अध्यक्ष है तो उसे उसके पदों अथवा पदाधिकारियों को "नियुक्त" करने से वंचित नहीं किया जा सकता।[65] लौकिक शासक के लिए चर्च के अध्यक्ष की उपाधि उपयोग करना विचित्र एवं अस्वाभाविक है, तथा यह जानना कठिन है कि ग्रेगोरी उसे क्या सुनिश्चित महत्त्व प्रदान करता है। सम्भवतः राजाओं एवं सम्राटों के अभिषेक पर उसके द्वारा दिए गए बल से इसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है,[66] किन्तु ग्रेगोरी स्वयं यह सम्बन्ध नहीं जोड़ता।

नोनानतुला का प्लेसीडस (Placidus of Nonantula) अपने ग्रन्थ "लीबर दे होनेरे एक्लेसियैइ" (Liber de Honore Eaclesiae), में जो सम्भवतः 1112 ई० में लिखा गया, प्रमुखतया "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न तथा चर्च की सम्पदा की पवित्र प्रकृति का वर्णन करता है, तथा इस विषय पर उसके ग्रन्थ की परीक्षा हम पहले ही कुछ विस्तार से कर चुके हैं।[67] तथापि हमारे वर्ण्य विषय, अर्थात्, धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं के सम्बन्धों के सिद्धान्तों के विषय में इस ग्रन्थ का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि इसमें पहली बार उस अर्थ में "कॉन्सटेन्टाइन के दान" की व्याख्या का उदाहरण पाते हैं जिस अर्थ में उसे बाद में समझा गया। जैसा हमने दिखलाने का प्रयास किया है, यह स्पष्ट है कि मूल रूप में उसका सम्बन्ध पोप द्वारा पूर्वी ईसाई चर्च में बिशपों पर पूर्वी सम्राटों की

Scanned by CamScanner

सत्ता के तथा इटली में उन सम्पदाओं के जो आठवीं शताब्दी में भी उनके (पूर्वी सम्राटों के) अधिकार में थीं, उत्तराधिकार के दावे से था।[68]

प्लैसीडस "दान" का अर्थ यह समझता है कि कान्सटेण्टाइन ने पोप सिल्वेस्टर को पश्चिम में उसकी सम्पूर्ण सत्ता सौंप दी, यहाँ तक प्लैसीडस की स्थिति पूर्णतया स्पष्ट प्रतीत होती है, किन्तु इसके आगे उसकी व्याख्या आसान नहीं है। वह कहता है क्योंकि कॉन्सटेन्टाइन द्वारा प्रेरित (पीटर) के प्रति सम्मान प्रदान किया गया था तथा पश्चिमी साम्राज्य पीटर के उत्तराधिकारी के लिए छोड़ दिया गया था, अतः ईश्वर ने उसे सम्पूर्ण रोमन साम्राज्य का अधिकार दिया है, क्योंकि पोप सिल्वेस्टर ने, यद्यपि उसे कॉन्सटेन्टाइन ने प्रदान कर दिया था, तो भी ईसा का अनुकरण किया तथा राजमुकुट को अपने सिर पर रख कर हानि न होने दी तथा इसके लिए अभिलाषा प्रकट की कि कॉन्सटेन्टाइन चर्च की निष्ठापूर्ण सेवा के लिए साम्राज्य का भार संभाले रहे।[69] इससे प्लैसीडस का वास्तविक तात्पर्य क्या था कहना कठिन है। सम्भवतः उसका अभिप्राय यह हो सकता कि सिल्वेस्टर ने पश्चिम पर राजनीतिक सत्ता स्वीकार करना नहीं चाहा अथवा यह भी हो सकता है कि स्वयं वैयक्तिक रूप से उसे स्वीकार करने के बजाय उसने चर्च के प्रतिनिधि या सेवक के रूप में कॉन्सटेन्टाइन को प्रयोग करने को दिया। बाद वाली सम्भावना का बोध सम्भवतः इसके सन्दर्भ से होता है, क्योंकि वह पोप सिल्वेस्टर के कार्य का चर्च द्वारा ड्यूक पद तथा अन्य लौकिक सम्पदाओं पर धारण-अधिकार के दृष्टान्त स्वरूप उपयोग करता है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इस विषय का उल्लेख प्लैसीडस ने केवल संयोगवश किया है, किन्तु इसका विवेचन हम अभी तब करेंगे जबकि हम ऑग्सबर्ग के हॉनोरियस का वर्णन करेंगे।

इस पुस्तक के प्रारम्भिक भाग में हम वेन्डोम के एवट ज्यौफ्री का अपने अनुक्रमिक ग्रन्थों में "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विकास का अध्ययन कर चुके हैं।[70] इनमें से एक में, जो सम्भवतः 1119 ई० में लिखा गया था, एक पर्याप्त महत्त्व वाला वाक्यांश है जो कि हमारे वर्तमान विषय की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।[71] यह ग्रन्थ "प्रतिष्ठापन" विवाद के अन्तिम वर्षों में लिखा गया था, जबकि ज्यौफ्री अत्यन्त दृढ़ता-पूर्वक मुद्रा एवं दण्ड से "प्रतिष्ठापन" की छूट का विरोध कर रहा था, यद्यपि वह यह मानने को तैयार था कि सम्राट् बिशप को उसके पद की लौकिक सम्पदा प्रदान कर सकता है। इस वाक्य में ज्यौफ्री घोषणा करता है कि दैवी कानूनों के अन्तर्गत ही राजा व सम्राट् हम पर शासन करते हैं, तथा उसी कानून के अन्तर्गत ही वे "हमारे" आदर एवं सम्मान के पात्र हैं, तथा उसका स्पष्टतया यह अभिप्राय पादरी एवं अयाजक दोनों से ही प्रतीत होता है। वह उन बड़ी हानियों का उल्लेख करता है जो तब होती हैं जबकि "राज-सत्ता" एवं "धार्मिक-सत्ता" एक दूसरे के विरुद्ध हो जाती हैं। ईसा की अभिलाषा थी कि धार्मिक एवं लौकिक दोनों प्रकार की तलवारों का प्रयोग उसके चर्च की सुरक्षा के लिए होना चाहिए। अन्ततः यह सबसे महत्त्वपूर्ण है कि, वह धर्म-बहिष्कार की शक्ति के बुद्धि-रहित उपयोग के महान खतरे की ओर ध्यान आकर्षित करता है, तथा कहता है

Scanned by CamScanner

कि यह बहुत संदिग्ध है कि किसी ऐसे व्यक्ति को धर्म-बहिष्कृत करना बुद्धिमत्तापूर्ण होगा जिसके अनेक अनुयायी हों, जिससे इस प्रकार के कठोर न्याय के प्रयोग से अच्छाई के स्थान पर अधिक अपकीर्ति हो।[71]

यह स्पष्ट है कि ज्यौफ्री को लौकिक सत्ता के दिव्य उदय के बारे में कोई सन्देह नहीं था, तथा धर्म-बहिष्कार के अनियन्त्रित उपयोग की बुद्धिमत्ता के विषय में एक ऐसे व्यक्ति के सन्देह, जो पोप की गद्दी का दृढ़ समर्थक रहा है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

इस पुस्तक के इस भाग में जिस अन्तिम ग्रन्थ का हम विवेचन करेंगे वह है सुम्मा ग्लोरिया (Summa Glorea) जो ऑग्सबर्ग के होनोरियस[72] द्वारा लिखा गया था। यह ग्रन्थ सम्भवतः वॉर्म्स के समझौते के बहुत अधिक समय बाद नहीं लिखा गया, तथा पोपवादी परम्परा के एक कट्टर समर्थक के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है, किन्तु होनोरियस 1076 ई० से 1122 ई० तक के संघर्ष की परिस्थितियों के निरूपण के लिए उतना व्यग्र नहीं जितना दोनों महान सत्ताओं के उदय तथा स्वरूप के विश्लेषण एवं तुलना के प्रयत्न में संलग्न है। उसकी स्थिति बड़ी विचित्र है, क्योंकि उसके सिद्धान्त लगभग कई विषयों में अत्यन्त उग्र हैं, जबकि उसके व्यावहारिक निष्कर्ष किसी सीमा तक मध्यस्थतावादी तथा उदारतापूर्ण हैं।

वह अपने ग्रन्थ का आदि व अन्त "धार्मिक सत्ता" की उत्कृष्ट गरिमा के प्रबल समर्थन से करता है, तथा उसको अनेक प्रकार से प्रदर्शित करता है। वह एबल (Abel) को पुरोहित के पद का तथा केन (Cain) को राजकीय पद का प्रतीक मानता है, शेम (Shem) का जो प्रथम यथार्थ पुरोहित है वह पूर्वाचार्य परम्परा के अनुसार मेलचीजेडेक (Melchi Jedek) से तादात्म्य स्थापित करता है, जबकि रोमन साम्राज्य जाफेठ (Jophet) का उत्तराधिकारी है, तथा वह इसी प्रकार की दो सत्ताएँ आइजक तथा इश्मायल (Issac and Ishmael) तथा जेकब व इसाउ (Jacob and Esau) को मानता है। जैसे किसान उपयाजक (Deacon) के अधीन हैं, सिपाही पादरी के अधीन हैं, राजकुमार बिशप के अधीन हैं, उसी प्रकार राजा पोप के अधीन हैं।[73] तथापि उसका यह प्रत्युत्तर दिया जाता है कि राजा एक साधारण व्यक्ति नहीं, क्योंकि पुरोहितों के तेल से उसका अभिषेक होता है; किन्तु वह इस तर्क की घृणापूर्वक अवहेलना करता है, और कहता है कि इसे सभी व्यक्ति स्वीकार करते हैं कि राजा का पद धार्मिक नहीं है, किन्तु वह एक साधारण व्यक्ति है जो किसी भी पादरी से सम्बद्ध कार्य को नहीं कर सकता, और वह एक शास्त्रीय अन्तर भी प्रदर्शित करता है कि राजा का अभिषेक केवल तेल से होता है, जबकि पुरोहित का अभिषेक पवित्र द्विलेपन से होता है, तथा यह भी बतलाता है कि राजा का अभिषेक दूसरे राजा द्वारा न होकर पुरोहितों द्वारा होता है।[74]

इस प्रकार होनोरियस का दृष्टिकोण स्पष्ट है कि पुराहित का गौरव राजकीय गौरव से श्रेष्ठ है। किन्तु वह इससे भी आगे बढ़ जाता है, तथा लौकिक सत्ता के उदय एवं स्वरूप के विषय में एक सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, जो हमारे विचार में पूर्णतया नवीन ही नहीं सामान्य परम्पराओं से भी भिन्न है। जैसा हम अनेक बार दिखला चुके हैं, धर्माचार्यों का सामान्य सिद्धान्त यह था कि लौकिक सत्ता ईश्वर के द्वारा स्थापित है।

Scanned by CamScanner

पाँचवीं शताब्दी में जिलेशियस ने यह प्रतिपादित किया था कि ईसा ने स्वयं इन दोनों सत्ताओं को बनाया तथा पृथक् किया है जो कि संसार का शासन चलाने वाली हैं, नवीं शताब्दी से इस सिद्धान्त में यह परिवर्तन आ गया कि ईसा ने अपने चर्च में यह दो सत्ताएँ बनायी हैं।[75] होनोरियस एक पूर्णतया विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। वह पहले यह सिद्ध करता है कि मूसा से सेम्यूएल के समय तक इजराइलियों पर राजाओं का न होकर पुरोहितों तथा पैगम्बरों का शासन था, वह सेमुएल ही था जिसने राजपद को स्थापित किया, पुरोहित तथा पैगम्बर ही राजाओं का निर्वाचन तथा अभिषेक करते रहे तथा निर्वाचन के बाद पुनः पुरोहित इजरायल पर राज्य करने लगे।[76] जब सच्चा राजा तथा पुरोहित ईसा आया, तो उसने अपने चर्च को कानून प्रदान किए, तथा उसने चर्च पर शासन करने के लिए "धार्मिक सत्ता" की स्थापना की न कि राज-सत्ता की तथा धार्मिक सत्ता का अधिकार उसने पीटर को प्रदान किया, जिसने यह अधिकार अपने उत्तराधिकारियों को दे दिया। इस प्रकार ईसा के समय से लेकर सिल्वेस्टर के समय तक चर्च का शासन केवल पुरोहितों के हाथों रहा।[77]

वास्तव में यह एक दूरगामी तथा मूलभूत धारणा है, एक ऐसी धारणा जो पारम्परिक धार्मिक सिद्धान्तों से मेल नहीं खाती। इस कथन के बाद 'कॉन्सटेन्टाइन के दान" का प्रयोग एवं व्याख्या दी गयी है, जिसका, जहाँ तक हम जानते हैं, कोई प्राचीन प्रतिरूप उपलब्ध नहीं होता। होनोरियस कहता है कि अंततः वह समय आ गया, जब कि ईश्वर ने अत्याचार के युग को शांति के युग में, तथा मूर्तिपूजकों के विद्रोहपूर्ण साम्राज्य को ईसाइयों के शासन में बदल दिया। कान्सटेन्टाइन का सिल्वेस्टर ने जो चर्च के पुरोहितों का राजा था, धर्म-परिवर्तन किया था, उसने साम्राज्य का मुकुट रोमन पोप के मस्तक पर रख दिया, तथा घोषणा की कि कोई भी उसकी सहमति के बिना रोमन साम्राज्य को नहीं पा सकता। तथापि सिल्वेस्टर ने अनुभव किया कि जो पुरोहित के विरुद्ध विद्रोह करते हैं, उनको ईश्वर के शब्दों की तलवार से ही शान्त नहीं किया जा सकता है, परन्तु लौकिक तलवार से, तथा उसी कान्सटेन्टाइन को ईश्वर के कार्य में सहकर्मी के रूप में सम्मिलित कर लिया, जो मूर्तिपूजकों, यहूदियों तथा धर्मद्रोहियों के विरुद्ध चर्च का संरक्षक बना, उसे दुष्कर्म करने वालों को दण्डित करने के लिए तलवार प्रदान की तथा कल्याण के उत्कर्ष के लिए उस पर साम्राज्य का राजमुकट रख दिया। अतः उस समय से यह परम्परा बनी कि लौकिक न्याय के लिए चर्च को राजा तथा न्यायाधीश चाहिए। तथापि केवल लौकिक न्याय ही राजाओं के अधिकार में है, तथा कान्सटेन्टाइन ने बिशपों के कार्यों का निर्णय करने में भाग लेना अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार जैसे शरीर की तुलना में आत्मा का गौरव अधिक होता है, लौकिक की तुलना में धार्मिक का, उसी प्रकार "धार्मिक सत्ता" का गौरव "राजकीय सत्ता" से कहीं अधिक है, जिसको वह स्थापित करती है तथा आज्ञा देती है।[78]

वास्तव में होनोरियस की स्थिति नवीन एवं विस्मयजनक है। "कान्सटेन्टाइन" के दान की ऐसी व्याख्या जहाँ तक हमें विदित है, पहले नहीं की गई। जैसा हम देख चुके हैं प्लैसीडस ने "दान" का अर्थ यह लिया है कि कान्सटेन्टाइन ने अपने साम्राज्य का पश्चिमी

Scanned by CamScanner

भाग पोप को हस्तांतरित कर दिया, तथा उसका अर्थ यह भी हो सकता है कि सिल्वेस्टर ने चर्च के सेवक के रूप में उसका शासन चलाने के लिए उसे कान्सटेन्टाइन को प्रदान कर दिया, किन्तु होनोरियस "दान" की व्याख्या सम्पूर्ण राजनीतिक सत्ता के पोप को समग्र हस्तांतरण से करता है, तथा यह प्रतिपादित करता प्रतीत होता है कि इस समय से लेकर इस प्रकार की सम्पूर्ण सत्ता वास्तव में लौकिक शासकों द्वारा "धार्मिक सत्ता" से ही प्राप्त की गई। किन्तु यहीं कथा समाप्त नहीं हो जाती, क्योंकि होनोरियस का यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि कान्सटेन्टाइन का कार्य केवल सामान्य दैवी व्यवस्था की स्वीकृति मात्र है, वह प्रतिपादित करता है कि ईसा ने दो सत्ताओं को चर्च का शासक नियुक्त नहीं किया है किन्तु केवल "धार्मिक सत्ता" को ही बनाया है, तथा दैवी व्यवस्था के अन्तर्गत ही वास्तव में सभी सत्ताएँ निहित हैं। अतः यह प्रतीत होगा कि कम से कम होनोरियस कुछ उत्तर-कालीन लेखकों द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त का सुझाव दे रहा है कि सम्पूर्ण सत्ता चाहे वह धार्मिक हो अथवा लौकिक चर्च एवं उसके अध्यक्ष पोप में निहित है तथा सभी लौकिक शासक जिस सत्ता को धारण करते हैं वह उनको धार्मिक सत्ता द्वारा प्रदान की गई है।[79] यह कभी क्या मध्यकाल में स्वीकृत सामान्य सिद्धान्त बन पाया इस पर हम बाद में विचार करेंगे, किन्तु निश्चय ही यह सत्य है कि यह इसकी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति है। वास्तव में यह भी कहा जा सकता है कि इसे ग्रेगोरी सप्तम ने प्रस्तुत किया था, किन्तु चाहे यह सिद्ध किया जा सके कि यह उसके दावों में निहित है,[80] यह निश्चित है कि इसका स्पष्ट अभिकथन उसमें नहीं है।

सम्भवतः इसी धारणा से हमें होनोरियस की घोषणा को सम्बद्ध करना होगा कि सम्राट् का निर्वाचन पोप द्वारा, राजाओं की सहमति तथा जनता की स्वीकृति से होना चाहिए। वास्तव में, अन्यत्र वह दावा करता है कि वे लौकिक राजा नहीं बल्कि बिशप वास्तविक निर्वाचक थे, किन्तु होनोरियस के तर्क का प्रधान बल उसकी इस मान्यता में प्रतीत होता है कि नियुक्ति का अधिकार पोप तथा आध्यात्मिक राजाओं में निहित है, तथा वह यह प्रतिपादित करते हुए समापन करता है कि "राजकीय सत्ता" वैधानिक रूप से "धार्मिक सत्ता" के अधीन है, तथा इसका कारण यह है कि "धार्मिक सत्ता" ने ही "राजकीय सत्ता" को स्थापित किया है।[81]

इन दूरगामी प्रभाववाली धारणाओं की तुलना में यह सापेक्ष रूप से तुच्छ विषय प्रतीत होता है कि होनोरियस यह भी मानता है कि पोप का निर्वाचन कार्डीनलों द्वारा रोम के बिशपों तथा पादरियों की सहमति से तथा जनता के अनुमोदन से होना चाहिए। वह सम्राट् को सहमति या स्वीकृति का उल्लेख नहीं करता, और वह यह भी जानता है कि प्रत्येक नगर के बिशप का निर्वाचन बिशप-क्षेत्रों के पादरियों द्वारा, जनता के अनुमोदन से होना चाहिए, एवं उसको मुद्रा एवं दण्ड से प्रतिष्ठापित पोप द्वारा किया जाना चाहिए।[82]

तथापि अब हमें ध्यान रखना चाहिए कि धार्मिक एवं लौकिक सत्ता के सम्बधों में होनोरियस के सिद्धान्तों का एक अन्य पक्ष भी है, जो वास्तव में औपचारिक रूप से हमारे द्वारा अभी निरूपित सिद्धान्तों से असंगत नहीं, किन्तु इस पर आधारित कुछ निष्कर्षों को

Scanned by CamScanner

संशोधित करने की दृष्टि से पर्याप्त रूप से महत्त्वपूर्ण है।

वह सुस्पष्ट रूप से मानता है कि एक अयाजक के रूप में राजा दैवी विषयों में "धार्मिक अध्यक्ष" अर्थात् चर्च के अध्यक्ष पोप के अधीन है, इसी प्रकार पोप एवं सभी पादरी लौकिक मामलों में राजा के अधीन हैं एवं वह यह भी मानता है कि प्राचीन विधान में भी यही सत्य था। राजा की नियुक्ति पुरोहित अथवा पैगम्बर करते थे, दैवी कानून से सम्बन्धित विषयों में उनकी आज्ञा का पालन करते थे, किन्तु पैगम्बर एवं पुरोहित भी सभी लौकिक मामलों में राजाओं की आज्ञा का पालन करते थे।[83]

दूसरे कुछ वाक्यांशों में वह लौकिक सत्ता के उदय तथा स्वरूप के सिद्धान्तों का कुछ विस्तार से एवं निश्चितता पूर्वक विवेचन करता है। वह स्टोइक तथा पूर्वाचार्यों की परम्परा का अनुकरण करता है कि मूल रूप में ईश्वर ने अपने मनुष्य को अपने सह-मनुष्यों पर अधिपति नहीं बनाया, किन्तु मनुष्यों के पापों तथा बुद्धिहीन आचरण के कारण ही ईश्वर ने कुछ लोगों को दूसरों पर अधिकारों से सम्पन्न किया ताकि मनुष्य वास्तविक मानवीय जीवन व्यतीत करने के लिए भय द्वारा नियंत्रित किए जा सके। चर्च के शासन के लिए संसार में दो तलवारों की आवश्यकता है.....धार्मिक जो कि "धार्मिक सत्ता" के हाथों में है तथा भौतिक जो कि "राजकीय सत्ता" के हाथों में है, जिससे वह उनको दण्ड देता है जो दुष्टता में रत हैं।[84] इस प्रकार लौकिक सत्ता स्वयं ईश्वर की संस्था है तथा लौकिक विषयों में उसका आज्ञा पालन केवल जनता ही नहीं पादरियों द्वारा भी किया जाना चाहिए। प्राचीन काल के ईसाई लौकिक विषयों में मूर्ति-पूजक राजाओं की आज्ञा का पालन करते थे, जबकि धार्मिक विषयों में वे केवल ईश्वर के अनुयायी थे, क्योंकि केवल अच्छे ही नहीं बुरे शासकों का भी आज्ञा पालन करना चाहिए। संत पाल एवं संत पीटर ने सीधी सादी शिक्षा दी है कि लौकिक सत्ता ईश्वर द्वारा आदिष्ट है।[82] अंततः यह प्रतीत होगा कि होनोरियस का मत था कि चाहे राजा रोमन धर्म-पीठ पद के विरुद्ध विद्रोह भी करे अथवा धर्म-द्रोह, धर्म-त्याग अथवा धर्म में फूट डालने में संलग्न भी हो तो निष्ठावानों को यद्यपि उससे सभी सम्पर्क को त्याग देना चाहिए तथापि धैर्यपूर्वक उसे सहन करना चाहिए।[86]

यदि अब हम इन ग्रन्थों में जिनकी इस अध्याय में हमने परीक्षा की है कहे गए तथा व्याख्या किए गए सिद्धान्तों के सामान्य स्वरूप को संक्षिप्त करने का प्रयास करें, तो हम पायेंगे कि यह संदिग्ध है कि कहाँ तक इन लेखकों के समक्ष सम्पूर्ण विषय की तर्कसंगत धारणा थी और जब कि उनमें स्पष्ट और दूरगामी मतभेद भी हैं, यह भी निश्चित है कि कुछ स्थलों पर उनमें पर्याप्त सहमति है।

सर्व प्रथम, उनको इसमें कोई सदेह नहीं था कि लौकिक सत्ता एक दिव्य संस्था है जैसी कि धार्मिक सत्ता है। ड्यूसडेडिट तथा होनोरियस सुस्पष्ट रूप से इस पर बल देते हैं, यद्यपि वे इसका मूल उदय पापों के कारण मानते हैं। इसलिए, जब फ्लूरी के ह्यू तथा केटीनो के ग्रेगोरी ने इस दिव्य सत्ता पर बल दिया तथा जब ह्यू ने लौकिक शासन के उदय के बारे में हिल्डेब्राण्ड के वाक्यों के उस अभिप्राय का जैसा वह समझता था निराकरण किया, वे वास्तव में उस सिद्धान्त से भिन्न किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं कर रहे थे जिसे

Scanned by CamScanner

ड्यू सडेडिट तथा होनोरियस सच्चा मानते ।

पुनः जैसा हम देख चुके हैं ड्यू सडेडिट बहुत उत्सुक था कि यह समझा जाए कि यह निसंदिग्ध है कि प्रत्येक सत्ता का अपना उचित क्षेत्र है जिसमें दूसरी सत्ता को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, ज्यौफ्री तथा होनोरियस सुस्पष्ट रूप से इस पर बल देते हैं, कि सभी पादरी तथा होनोरियस इसमें विशेष रूप से पोप को भी सम्मिलित करता है, लौकिक विषयों में लौकिक सत्ता के अधीन हैं ।

उनमें महान संघर्ष द्वारा उठाए गए कुछ व्यावहारिक प्रश्नों के प्रति लगभग एक-सी ही प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है यदि गेम्बलाउ के सीजबर्ट को राजा को धर्म-बहिष्कृत करने के विषय में संदेह था, तथा उसने यह सुझाया कि हेनरी चतुर्थ का धर्म-बहिष्कार अन्यायपूर्ण था, तो फ्लूरी का ह्यू भी यद्यपि वह पोप की नीतियों का प्रबल आलोचक था, यह स्पष्ट कर देता है कि बिशप राजा को धर्म-बहिष्कृत कर सकता है; जबकि ज्यौफ्री जो यद्यपि पोप के मत का प्रबल समर्थक था सम्भवतः राजाओं के धर्म-बहिष्कार की न्याय-संगतता पर नहीं किन्तु निश्चित रूप से बुद्धिमत्ता पर संदेह व्यक्त करता है । पुनः जब कि सीजबर्ट, फ्लूरी का ह्यू तथा केटीनो का ग्रेगोरी इस मान्यता का प्रबल खण्डन करते हैं कि पोप राजा को पदच्युत कर सकता है, अथवा उनकी प्रजा को निष्ठा से मुक्त कर सकता है, होनोरियस का यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि निष्ठावान व्यक्तियों को धर्मद्रोही तथा धर्म में फूट डालने वाले राजा के सम्पर्क से बचना चाहिए, परन्तु उसकी राजनीतिक सत्ता को धैर्य पूर्वक स्वीकार करना चाहिए ।

अतः यह कहा जा सकता है कि हम इन लेखकों में लौकिक सत्ता की दैवी उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक वास्तविक सहमति पाते हैं, तथा अपने युग के व्यावहारिक प्रश्नों पर उनके दृष्टिकोण में निकटता की प्रवृत्ति पाते हैं । हमने इस पुस्तक के प्रारंभिक खण्ड में उन विभिन्न स्थितियों को खोजने का प्रयास किया, जिनमें कि "प्रतिष्ठापन" के प्रश्न पर अंतिम रूप से समझौता हो सका और कुछ पोप के पक्ष के लेखकों के बारे में यह कहना सत्य होगा कि वे प्रारंभिक रूप से चर्च की धार्मिक स्वतंत्रता के समर्थन में लीन थे, तथा उनको यह प्रतिपादन करने की इच्छा नहीं थी कि चर्च या पोप को लौकिक सत्ता के ऊपर कोई सामान्य प्रभुत्व का अधिकार है ।

दूसरी ओर, यह कहा जा सकता है कि कुछ लेखकों में हम दोनों सत्ताओं के सम्बन्धों के सिद्धान्त का अतिरिक्त विकास खोज सकते हैं । फ्लूरी के ह्यू ने इस पर बल दिया कि ईश्वर की जो पिता है राजा प्रतिमूर्ति है तथा बिशप ईसा की, और इसीलिए साम्राज्य के सभी बिशप ठीक ही राजा के अधीन थे, जिस प्रकार कि ईसा पिता ईश्वर के अधीन है, प्रकृति में नहीं अपितु "आदेश से" तथा 'Universitas regni' को 'ad unum principiun' में बदला जा सकता है ।

"ट्रेक्टेखस इवोरेसेन्सेस" के लेखक ने, जैसा कि हम देख चुके हैं, इसी प्रकार के वाक्यों का प्रयोग किया है, किन्तु विषय को और आगे बढाया है, तथा वह यह मानता प्रतीत होता है कि राजकीय सत्ता अपनी प्रकृति की दृष्टि से पुरोहित की सत्ता से अधिक बड़ी है, तथा राजा जो कि साधारण अयाजक नहीं है धार्मिक मामलों में भी महान सत्ता से सम्पन्न

Scanned by CamScanner

है। केंटीनो के ग्रेगोरी ने कहा है कि राजा चर्च का अध्यक्ष था, तथा इसीलिए यह उचित था कि बिशप राजा से मुद्रा एवं दण्ड द्वारा "प्रतिष्ठापन" प्राप्त करे, क्योंकि वह चर्च का अध्यक्ष था, अतः उसे चर्च के सदस्यों के पद या पुरोहिताई की सृष्टि से वंचित नहीं रखा जा सकता। वास्तव में इन वाक्यों की व्याख्या सुगम नहीं है, किन्तु हम संभवतः बहुत अधिक गलती पर नहीं होंगे यदि हम इनको धार्मिक दावों के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में लें। तथापि हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि वही फ्लूरी का ह्यू जो आग्रहपूर्वक यह प्रतिपादित करता था बिशप अपने पद की गरिमा में राजा से उतना ही श्रेष्ठ है जितना कि "दिव्य पद" अपनी पवित्रता में लौकिक मामलों में श्रेष्ठ है, तथा वह लौकिक न्यायालयों के निर्णय के अधीन नहीं। तथापि ह्यू तथा सीजबर्ट यह दिखलाते हैं कि किस प्रकार अनेक बार सम्राटों ने ही पोप-पद की भ्रष्टाचार भरी परिस्थितियों को सुधारा है, तथा वे यह मानना अस्वीकार कर देते है कि पोप मानवीय न्याय से परे है, तथा यह प्रतिपादित करते हैं कि उसे भर्त्सना एवं दंड को स्वीकार करना चाहिए।

यदि इन लेखकों को लौकिक सत्ता के समर्थकों की स्थिति के उच्चतम पहलू का प्रतिनिधित्व करने वालों में माना जाए, तो प्लैसीडस तथा होनोरियस पोपवादी दल की स्थिति में एक नए विकास का प्रतिनिधित्व करते हैं। हम उनके द्वारा "कॉन्सटेन्टाइन" के दान के विवरण तथा व्याख्या का विवेचन कर चुके हैं, किन्तु चाहे वह महत्त्वपूर्ण हो, होनोरियस के द्वारा प्रतिपादित लौकिक सत्ता के धार्मिक सत्ता के अधीन होने के सिद्धान्तों की तुलना में उसका महत्त्व बहुत थोड़ा है। होनोरियस की मान्यता बहुत रोचक है, तथा उसका उल्लेख करने का अवसर हमें बाद में भी मिलेगा, यहाँ हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यदि इसका कोई सम्बन्ध हिल्डेब्राण्ड के कुछ दावों से हो, तथा यह तर्क दिया जा सके कि ये उन दावों में अन्तर्निहित हैं, तो यह स्पष्टतया समझ लेना चाहिए कि इसकी कोई समानता उस साहित्य में नहीं मिलती जिसका विवेचन हम इन दो अध्यायों में कर रहे थे।

सन्दर्भ

1. Cf. Hauck, 'Kirchengeschichte Deutschlands', vol. iii. p. 852.
2. Jaffe, 'Monumenta Bambergensia', p. 503.
3. Mansi 'Concilia', xx. p. 715.
4. Id. id., xx. p. 723, 'Concillium Melfitanum', 8.
5. Bernald, 'Chronicon', 1089, 1091.
6. Id. id., a. 1095.
7. Mansi, 'Concilia', xx. p. 815 ff
8. Bernald, 'Chronicon', 1095.
9. Jaffe-Wattenbach, 'Regesta', 5817,
10. Sigebert of Gembloux, 'Leodicensium Epistola adversus paschalem Papam.
11. Jaffe-Wattenbach, 'Regesta', 5868, 5908, 5928, 5956, 5960.
12. Id. id., 5909.
13. 'Annales Hildeseimenses', 1105.
14. Ekkehard, 'Chroicon', 1105.
15. Jaffe, 'Monumenta Moguntina', p. 379.
16. Deusdedit, 'Libellus contra invasores et symoniaces', Prologue.

Scanned by CamScanner

17. Cf. vol. ii. p. 147.
18. Cf. vol. ii, pp. 233–235.
19. Deusdedit, 'Libellus contra Invasores et Symoniacos', iii. 12.
20. Cf. vol. iii. p. 99.
21. Cf. vol. ii. pp. 80 and 227–233.
22. उसने इसका दृढ़ता से खण्डन किया है कि पोप के चुनाव पर साम्राज्य की पुष्टि वांछित है, पृ० 92–93।
23. Cf. the admirable work of A Cauchie 'La Querelle des Investitures dans les dioceses de Liege et de Cambrai'. Paris, 1890.
24. Sigebert of Gembloux, 'Leodicensium Epistola adversus Paschalem Papam', 7.
25. Id. id., 6,
26. Id. id,, 9.
27. Id. id., 11.
28. Id. id., 8.
29. Id. id., 1, 2, 4, 10, 13,
30. Id. id., 4.
31. Anselm, 'Gesta Episcoporum Leodicensium', 62–64.
32. Id. id., 10.
33. Cf. Editor in 'Lib. de Lite', vol. ii.
34. Cf. p. 204.
35. Hugh of Fleury, 'Tractatus de Regia Potestate et Sacerdotali Dignitati', 1.1.
36. Id. id., i. 2.
37. Id. id., Prologue : cf. ii. 4.
38. Id. id., i. 10.
39. Id. id., i. 7.
40. Id. id., i. 12.
41. Id. id., i. 4.
42. Id. id., i. 10.
43. Cf. p. 102.
44. Id. id., ii. 4.
45. Id. id., ii. 3, 4, 5.
46. ग्रन्थ के पूर्ण विवरण के लिए देखें—H. Bohmer 'Kirche and Staat in England and in der Normandie', इससे मुझे बहुत सहायता मिली है।
47. Cf. Vol. i. pp. 149, 215.
48. 'Tractatus Eboracenses', iv. (p. 665).
49. Id. id., (p. 666).
50. Id. id., (p. 667).
51. Id. id,, (p. 669).
52. Id. id., (p. 670).
53. Id. id., (p. 672).
54. Id. id., (p. 675).
55. Id. id., (p. 679).
56. Id. id., (p. 678).
57. Id. id.. (p. 667–668).
58. Id. id., iii. (p. 656).
59. Id. id., (p. 657).
60. Id. id., (p. 659).
61. Id. v. (p. 680).
62. Id. id., (p. 681),
63. Id. id., (p. 684).
64. देखें खण्ड 3 तथा इस खण्ड में भाग 2, अध्याय 3।
65. Gregory of Catino, 'Orthodoxa Defensio Imperialis', 2.
66. Id. id., 6.
67. भाग 2, अध्याय 6।
68. देखें खण्ड 1।
69. Placidus of Nonantula, 'Liber de Honore Ecclesiae', 57,
70. देखें, भाग 2 अध्याय 7।
71. लगता है यह गद्यांश बाद में जोड़ा होगा, Cf. 'Lib. De Lite', vol, ii. p. 678.
72 Geoggrey, About of Vendome, 'Libellus', iv., "Augustodunensis". का यही तात्पर्य प्रतीत होता है।
73. Honorius Augustodunensis, 'Summa Gloria', 1.
74. Id. id., 9.
75. देखें खण्ड 1।
76. Id. id., 18–14.
77. Id. id., 15.
78. Id. id., 16, 17. 18.
79. Cf. Gierke, 'Political Theories of the Middle Ages', p. 11, and Notes 9 to 20.
80. Cf. especially pp. 200–209.
81. Honorius, 'Summa Gloria', 21.
82. Id. id., 19.
83. Id. id., 9.
84. Id. id., 26.
85. Id, id,, 24.
86. Id. id., 27.

Scanned by CamScanner

चतुर्थ अध्याय

पोप-पद की सामन्ती सत्ता का विकास

हमें संक्षेप से ग्रेगोरी सप्तम की नीति के दूसरे पक्ष का विचार करना चाहिए, यह उसका सतत प्रयत्न प्रतीत होता है कि पोप के विभिन्न देशों एवं प्रान्तों पर सामन्ती प्रभुत्व के दावे को सिद्ध कर सके। वास्तव में, हम नहीं कह सकते कि इस नीति के ग्रेगोरी के पोप-पद के कार्यकाल से पूर्व कोई उदाहरण नहीं थे, वस्तुतः यह सत्य है कि उसके विकास के कुछ सबसे महत्त्वपूर्ण कदम उसके ठीक पूर्वाधिकारियों द्वारा उठाये गए थे, किन्तु यह माना जा सकता है कि तब भी हिल्डेब्राण्ड ने ही इस नीति को प्रेरित किया था।

इस विषय का कम से कम एक संकेत सिल्वेस्टर द्वितीय के पोप-पद जितना प्राचीन है। यह एक पत्र में विद्यमान है जिसमें कहा गया है कि हंगरी के राजा स्टीफेन ने अपने आपको पोप की निष्ठा के लिए समर्पित कर दिया है।[1] यद्यपि इस पत्र की प्रामाणिकता पर कुछ आलोचकों ने सन्देह किया है, तथापि अन्य ने इसका समर्थन किया है। यद्यपि यह स्पष्ट है कि, चाहे विभिन्न राज्यों पर पोप के सामन्ती प्रभुत्व की स्थापना को नीति प्राचीन काल से ही विद्यमान है, तथापि ग्रेगोरी सप्तम के ठीक पहले के पूर्वाधिकारियों के काल से ही यह महत्त्वपूर्ण हो गई है। यह कहना तर्कसंगत प्रतीत होगा कि यह नीति एक ऐसी व्यवस्था को संगठित करने के प्रयास का प्रतिनिधित्व करती है जिसके द्वारा साम्राज्य तथा रोम नगर दोनों के ही साथ सम्बन्ध में पोप के पद की राजनीतिक स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रखी जा सके। बारहवीं तथा तेरहवीं शताब्दियों के इतिहास में हमें इस नीति के महत्त्वपूर्ण परिणाम देखने का अवसर उपलब्ध होगा।

इस नीति का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विकास पोप एवं दक्षिण इटली के नॉरमनों के बीच सामन्ती सम्बन्धों की स्थापना में पाया जाता है। कार्डीनल ड्यूसडेडिट ने अपने ग्रन्थ "कलेक्टियो केनोनम" (Collectio Cenonum) नामक ग्रन्थ में रॉबर्ट ग्यूसकार्ड (Robert Guiscord) द्वारा 1059 ई० में पोप निकोलस द्वितीय के प्रति की गई निष्ठा की प्रतिज्ञाओं को सुरक्षित रखा है। वह अपने को ईश्वर तथा संत पीटर की कृपा से एपूलिया तथा केलेब्रिया (Apulia and Calabria) का ड्यूक घोषित करता

Scanned by CamScanner

है, तथा उनकी सहायता से सिसली का ड्यूक होने वाला बताता है, तथा इस दान की पुष्टि एवं उसके लिए देय निष्ठा को मान्यता देते हुए वह संत पीटर, पोप निकोलस तथा उसके उत्तराधिकारियों को वार्षिक नजराना देने की प्रतिज्ञा करता है। वह प्रतिज्ञा करता है कि वह पवित्र रोमन चर्च के प्रति निष्ठावान बना रहेगा, तथा पोप निकोलस तथा रोमन चर्च की निष्ठा को छोड़कर किसी के प्रति निष्ठा की शपथ नहीं लेगा।[2] ड्यूसडेडिट उस निष्ठा की शपथ को भी उद्धृत करता है जो कि कापुआ के राजा रिचर्ड द्वारा तथा कापुआ के राजा जोर्डेनस (Jordanus) द्वारा पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय के प्रति ली गई थी।[3]

इस नीति के विकास की महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय ने विजेता विलियम को लिखा तथा घोषणा की कि ईसाई धर्म के अंगीकार करने के काल से ही अंग्रेजी राज्य पोप के धर्मासन के संरक्षण में (Sub apostolorum Principe manu et tutela) रहा है, तथा पोप की गद्दी को एक वार्षिक रकम अदा करता है, जिसका एक भाग पोप को मिलता था, तथा एक भाग संत मेरी के चर्च को जिसे "स्कोला एंग्लोरम" (Schola Anglorum) कहा जाता था।[4] तथापि सामन्ती प्रभुत्व के इस दावे का विलियम द्वारा जोरदार खण्डन किया गया, उसने इस आधार पर निष्ठा रखने से अस्वीकार कर दिया कि उसने वैसा करने की प्रतिज्ञा नहीं की थी, तथा उसके पूर्वाधिकारियों ने कभी ऐसा नहीं किया था, परन्तु उसने प्रतिज्ञा की कि धन दिया जाएगा।[5]

अतः यह स्पष्ट है कि ग्रेगोरी सप्तम के पोप की गद्दी पर पदारोहण के पूर्व पोप की गद्दी के सामन्ती प्रभुत्व के विस्तार की नीति सुविकसित थी, किन्तु यह भी स्पष्ट है कि अपने पोप-पद के कार्यकाल में उसने इसके विस्तार का कोई भी अवसर नहीं खोया। वह सर्वप्रथम दक्षिण इटली में नॉरमनों के साथ इस सम्बन्ध को बनाए रखने में सावधान रहा। कापुआ के रिचर्ड द्वारा सितम्बर 1073 ई० में ग्रेगोरी सप्तम के प्रति ली गई निष्ठा की शपथ में महत्त्वपूर्ण व्यवस्थाएँ हैं। रिचर्ड अपने को ईश्वर तथा संत पीटर की कृपा से कापुआ का सामन्त घोषित करता है तथा प्रतिज्ञा करता है कि वह पवित्र रोमन चर्च तथा "विश्वव्यापक" पोप ग्रेगोरी के प्रति निष्ठावान रहेगा। वह प्रतिज्ञा करता है कि वह उसको तथा रोमन चर्च के "राजचिह्नों" को प्राप्त करने तथा सुरक्षित रखने, तथा संत पीटर की सम्पत्ति को सभी मनुष्यों से बचाने में सहायता करेगा, तथा रोमन पोप-पद की सुरक्षा एवं सम्मान को बनाए रखने में ग्रेगोरी की मदद करेगा। वह ग्रेगोरी तथा उसके उत्तराधिकारियों द्वारा अनुबोधित होने पर राजा हेनरी के प्रति निष्ठा की शपथ ले लेगा, किन्तु सदैव रोमन चर्च के प्रति अपनी निष्ठा बनाए रखेगा। पोप की गद्दी रिक्त होने की दशा में, सर्वश्रेष्ठ कार्डीनलों, रोमन पादरियों एवं जनता के प्रबोधनानुसार पोप के निर्वाचन में सहायता देगा।[6] रॉबर्ट ग्यूसकार्ड द्वारा जून 1080 ई० में ग्रेगोरी सप्तम के प्रति ली गई शपथ भी व्यावहारिक रूप से वही है।[7] यह उल्लेखनीय है कि इन शपथों में, जबकि नॉरमनों ने जर्मन राजा के प्रति निष्ठा की शपथ लेने की अपनी सहमति तो व्यक्त की, किन्तु वे पोप की स्वीकृति से वैसा करने को तैयार हैं, तथा रोमन चर्च के प्रति अपनी निष्ठा को भी सुरक्षित रखते हैं। ये वाक्यांश पूर्णतः एक अधिप्रभु (Overlord) के प्रति

Scanned by CamScanner

कर्तव्यों को सुरक्षित रखते हुए प्रभु (Lord) के प्रति ली गई शपथ के समान हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि ग्रेगोरी नॉरमनों के साथ पोप की गद्दी के सम्बन्धों का वास्तविक वर्णन करता है जब 1076 ई० के एक पत्र में वह कहता है कि वे ईश्वर के बाद केवल संत पीटर को ही अपना स्वामी तथा सम्राट् बनाना चाहते हैं।[8]

1073 ई० तथा 1077 ई० में ग्रेगोरी सप्तम द्वारा लिखे गए पत्रों में स्पेन पर भी वैसा ही दावा प्रदर्शित किया गया है। पहला स्पेन के कुछ भागों को अरबों (Saracens) से वापस लाने के लिए प्रस्तावित प्रयत्नों के विषय में लिखा गया है, तथा ग्रेगोरी दावा करता है कि स्पेन के साम्राज्य पर प्राचीन काल से ही संत पीटर का स्वामित्व था, तथा अब भी, यद्यपि मूर्ति-पूजकों ने उस पर अधिकार कर रखा है, वह किसी मरणधर्मा मनुष्य के स्वामित्व में न होकर पोप की गद्दी के स्वामित्व में है, अतः उसने उसे काउन्ट इवुलुस डिरोसियो (Count Evulus de Roceio) को प्रदान कर दिया है जो इस भूमि को मूर्तिपूजकों से मुक्त करना चाहता है, तथा वह जिस भूमि से उनको हटा देगा वह संत पीटर की सत्ता से उसके अधिकार में रहेगी।[9] 1077 ई० का पत्र भी इसी दावे को दोहराता है कि स्पेन प्राचीन संविधानों के अनुसार संत पीटर तथा रोमन चर्च के अधीन है।[10]

दूसरा दावा जो अत्यन्त उत्साहपूर्वक ग्रेगोरी सप्तम द्वारा किया गया था यह था कि हंगरी का साम्राज्य रोमन पोप-पद के स्वामित्व में है। अक्टूबर 1074 ई० में हंगरी के राजा सोलोमन को लिखे गए पत्र में इस दावे के समर्थन में यह तर्क दिए, पहला, यह कि राजा स्टीफेन द्वारा सभी अधिकारों एवं शक्तियों सहित साम्राज्य को संत पीटर को सौंप देने का अभिकथित कार्य, दूसरा, यह कि सम्राट् हेनरी तृतीय ने हंगरी के राजा पर अपनी विजय के बाद भाले तथा मुकुट को संत पीटर की समाधि पर भेज दिया था, तथा इस प्रकार उसके स्वामित्व के अधिकार को मान्यता दी थी। उसने जर्मनी के राजा से एक अधीन सामन्त के रूप में राज्य स्वीकार करने के लिए सोलोमन की भर्त्सना की, तथा धमकी दी कि वह उसे पुनः खो देगा यदि वह स्वीकार नहीं करेगा कि उसका राज्य रोमन पोप-पद के अधीन है, जर्मन राजा के अधीन नहीं।[11] अगले वर्ष, दो पत्रों में ग्रेगोरी ने हंगरी के राजसिंहासन पर ग्यूसा (Geusa) के दावे का इसी आधार पर समर्थन किया कि जर्मन राजा से एक सामन्त के रूप में उसे प्राप्त करके सोलोमन ने अपना अधिकार खो दिया है। यहाँ ग्रेगोरी का कार्य अधिक उल्लेखनीय है क्योंकि इसमें हंगरी पर जर्मन सम्राट् के सामन्ती प्रभुत्व के दावों से संघर्ष निहित था।

1075 ई० में रूसियों के राजा डिमेट्रियस (Demetrius) को लिखे गए एक पत्र में, ग्रगोरी सप्तम कहता है कि डिमेट्रियस का पुत्र रोम आया था तथा अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक प्रार्थना की थी कि वह उस राज्य को संत पीटर के अनुदान-रूप पोप के हाथों से प्राप्त कर सके। ग्रेगोरी ने यह समझकर कि यह अनुरोध डिमेट्रियस की सहमति से किया गया है, इसकी अनुमति दे दी तथा संत पीटर के नाम पर वह साम्राज्य उसके पुत्र को प्रदान कर दिया, तथा यह प्रतिज्ञा भी की कि सभी न्यायसंगत मामलों में वह उसे पवित्र धर्मासन का समर्थन प्रदान करेगा।[12] उसी वर्ष के एक दूसरे पत्र में ग्रेगोरी ने डेनों

Scanned by CamScanner

(Danes) के राजा स्वेयन (Sweyn) को लिखा कि रोमन पोप के कानून सम्राट् के कानूनों से अधिक दूर तक फैले हैं, तथा जहाँ तक ऑगस्टस का शासन था वहीं तक ईसा का भी शासन था। स्वेयन ने पोप एलेक्जेण्डर द्वितीय का "संरक्षण" माँगा था, तथा ग्रेगोरी जानना चाहता है कि क्या अब भी उसकी वही इच्छा है।[13] 1077 ई० के कार्सिकनों (Corsicans) को सम्बोधित एक पत्र में वह उनको बतलाता है कि उनका द्वीप वैधानिक रूप से रोमन चर्च के अतिरिक्त किसी भी दूसरी सत्ता के अधिकार में नहीं है : जो यह मानने से अस्वीकार करते हैं वे देवद्रोह के दोषी हैं; तथा उसे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि वे संत पीटर के अधिकारों को मान्यता देने को प्रस्तुत हैं, तथा वह उनको सैनिक सहायता भेजने को तैयार है।[14] 1079 ई० में वेजेलिन (Wezelin) को लिखे गए एक पत्र में वह उसको चेतावनी देता है कि वह उसके विरुद्ध हथियार न उठाये जिसे पोप-पद की सत्ता द्वारा डालमेशिया (Dalmatia) में राजा बनाया गया है, तथा उसे यह बतलाता है कि वह इस राजा के विरुद्ध जो भी कार्य करेगा रोमन पोप के विरुद्ध होगा।[15] ड्यूसडेडिट ने निष्ठा की उस शपथ को सुरक्षित रखा है जो कि डालमेशिया के साम्राज्य को प्राप्त करने के बाद डेमिट्रयस ने ग्रेगोरी सप्तम के प्रति ली थी। वह स्वीकार करता है कि उसका राजत्व का प्रतिष्ठापन पोप के अधिकारों के अन्तर्गत ध्वजा, खड्ग, दण्ड एवं मुकुट द्वारा हुआ है तथा सामन्ती कर्तव्यों की सुनिश्चित शब्दावली में आज्ञापालन तथा निष्ठा की तथा नियमित रूप से वार्षिक कर प्रदान की प्रतिज्ञा करता है।[16] एक पत्र में ग्रेगोरी ने यहाँ तक दावा किया है कि चार्ल्स महान ने संत पीटर को सेक्सनी का प्रान्त प्रदान किया था, तथा सेक्सनों के अधिकार में इसके लिखित प्रमाण हैं।[17] अतः ग्रेगोरी के रजिस्टर में 1081 ई० में प्रोवेन्स (Provence) के काउन्ट बर्ट्रेण्ड (Bertrand) की एक घोषणा है, कि वह अपनी सारी वंश-परम्परागत गरिमा को ईश्वर, संत पीटर, संत पाल, ग्रेगोरी तथा उसके उत्तराधिकारियों को समर्पित करता है।[18]

रोमन पोप-पद की सामन्ती सत्ता को विस्तार करने की इस अत्यन्त विकसित नीति की तुलना ग्रेगोरी सप्तम द्वारा पसाऊ के अल्तमान को सम्बोधित, 1081 ई० के एक पत्र के पदों से करना न्यायोचित होगा, तथा हमारा यह सोचना अयुक्तिसंगत नहीं होगा कि यह पत्र जर्मन साम्राज्य पर भी पोप-पद के सामन्ती प्रभुत्व के विस्तार की नीति की अभिलाषा का द्योतक है।

संदर्भ

1. Sylvester II., 'Ep'., v.
2. Deusdedit, 'Collectio Canonum', iii. 156.
3. Id. id., 159.
4. Alexander II., 'Ep'., 139.
5. William the Conqueror, 'Epistles' (Greg. VII).
6. Gregory vii., Reg. i. 21 (a).
7. Id. id., viii., 1 (a).
8. Id. id., iii, 15.

Scanned by CamScanner

9, Id. id., i, 7.
10. Id. id., ii. 13.
11. Id. id., ii. 63.
12. Id. id., ii. 74.
13. Id. id., ii. 75.
14. Id. id., v. 21.
15. Id. id., vii. 21.
16. Deusdedit, 'Collectio Canonum', iii. 150.
17. Id, id., viii. 23.
18. Id. id., viii. 35.

Scanned by CamScanner

चतुर्थ खण्ड

चर्च एवं साम्राज्य 1122 ई० से 1177 ई० तक

प्रथम अध्याय

फ्रेडरिक प्रथम तथा पोप-पद

वार्म्स के समझौते ने साम्राज्य तथा चर्च के बीच तीस वर्षों से अधिक समय तक शांति बनाए रखी, तथा जब एक नया संघर्ष प्रारम्भ हुआ तो उसकी परिस्थितियाँ और कारण भिन्न थे। यह कहना अधिक कठिन है कि इस शान्ति की प्रवृत्ति कैसी थी; कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जो यह मानते हैं कि इस काल में पोप-पद की साम्राज्य पर विजय हो गई थी, किन्तु यह बहुत संदिग्ध है कि इस मत का गंभीर समर्थन किया जा सकता है। सत्य यह प्रतीत होता है कि मनुष्य हार्दिक रूप से संघर्ष से ऊब चुके थे, तथा किसी भी पक्ष में उसे पुनः सुलगाने की बहुत थोड़ी इच्छा रह गई थी। निस्संदेह यह तर्क करना बहुत आसान है कि वार्म्स के समझौते ने मामले को अंतिम रूप से निश्चित नहीं किया, तथा वास्तव में यह भी सत्य है कि बिशप पदों या मठों की नियुक्तियों के प्रश्न पर कोई पूर्ण या अंतिम समझौता नहीं हुआ था, किन्तु यथार्थतः समग्र रूप से इस समझौते का कोई गंभीर खण्डन नहीं हुआ, तथा जो परिवर्तन आए वे धीरे-धीरे तथा बिना किसी गंभीर संघर्ष के आए।

बर्नहीम का एक उत्कृष्ट प्रबन्ध बहुत स्पष्टता पूर्वक समझौते की शर्तों के प्रयोग एवं व्याख्या के सम्बन्ध में विभेदों की सीमाओं तथा विस्तार को प्रस्तुत करता है।[1] एक ओर तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि समझौते के सम्पादन के एक ही वर्ष के अन्दर उसकी शर्तों का एक संस्करण विद्यमान था जो कि सम्राट की सत्ता को बहुत अधिक बढ़ा देता था—यह उसे विवादास्पद निर्वाचन की दशा में अधिधर्माध्यक्ष तथा सम्प्रान्तीय बिशपों की सम्मति तथा निर्णय के बिना अपनी बुद्धि से ही मामले के निर्णय का अधिकार प्रदान करता था।[2] वार्म्स के बाद, 1122 या 1123 ई० में, हेनरी पंचम ने, संत पाल के मठ के विवादास्पद निर्वाचन में, अपने न्यायालय से यह निर्णय प्राप्त किया कि विवाद के कारण यह उस की इच्छा पर ही निर्भर है कि वह चाहे जिसे नियुक्त करे।[3] यह प्रतीत होगा कि यही वह परम्परा थी जिसकी ओर फ्राइजिंग (Freising) के ऑटो ने 'गेष्टा फ्रीडेरिकी' (Gesta Friderici) में एक स्थान पर संकेत किया है, जिस पर हम बाद में

Scanned by CamScanner

विचार करेंगे,[4] किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता कि हेनरी पंचम के तत्काल उत्तराधिकारी लोथेयर तृतीय तथा कोनार्ड तृतीय में से किसी ने भी ऐसे अधिकार पर बल देने का कोई प्रयास किया हो।

दूसरी ओर, यह प्रतीत होगा कि उनमें से कुछ जो 1125 ई० में लोथेयर का सम्राट रूप में निर्वाचन करवाने वाले थे, यह चाहते थे कि समझौते की शर्त चर्च के पक्ष में परिवर्तित कर दी जाए। इस निर्वाचन के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवरण के लेखक के अनुसार, मेन्ज में यह निश्चय किया गया था कि बिशप का निर्वाचन स्वतंत्र होना चाहिए, तथा वह राजा की उपस्थिति एवं भय से नियंत्रित नहीं होना चाहिए, तथा सम्राट स्वतन्त्र रूप से निर्वाचित तथा अभिषिक्त बिशप का प्रतिष्ठापन दण्ड द्वारा राज-चिह्नों से करें तथा उस समय बिशप यह शपथ लें "Salvo quidem or dinis sui proposito"[5] इसका यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि यह समझौता हुआ था कि वॉर्म्स की शर्तों में दो महत्त्वपूर्ण विषयों में परिवर्तन किया जाए—प्रथम, यह कि निर्वाचन सम्राट की उपस्थिति में न हो, तथा दूसरा, यह कि अभिषेक के बाद न कि पहले लौकिक सम्पदाओं से प्रतिष्ठापन हो।

क्या इस वक्तव्य से यह सिद्ध किया जा सकता है कि इस आधार पर कोई समझौता हुआ था, तथा लोथेयर भी इसमें एक पक्ष था, बहुत संदिग्ध है, बर्नहीम ने दूसरे ग्रन्थ में इसको स्पष्ट कर दिया है कि लोथेयर के वास्तविक शासन ने किसी ऐसे समझौते की पुष्टि नहीं की, किन्तु उसने वार्म्स के समझौते की शर्तों को सामान्यतः माना।[6]

यदि हम संत बर्नाड के जीवन चरित्र के एक वक्तव्य पर विश्वास करें तो, लोथेयर ने, जब उसने 1131 ई० में लीज नामक स्थान पर पोप इन्नोसेन्ट द्वितीय से भेंट की, तो निस्संदेह पोप-पद के विवादास्पद निर्वाचन का लाभ उठाते हुए उसने पहले की भाँति ही प्रतिष्ठापन को पुनः प्रारम्भ करने का आग्रह किया, किन्तु इन्नोसेन्ट के पोप की गद्दी पर दावे का सबसे प्रबल समर्थक संत बर्नार्ड वहाँ उपस्थित था तथा उसके प्रभाव के कारण पोप की अस्वीकृति में बहुत अधिक प्रेरणा मिली।[7] इस वक्तव्य की पुष्टि कुछ दूसरे उद्धरणों से भी होती है।[8] यह संभव है कि इसी घटना से कुछ सम्बद्ध रूप में हमें इन्नोसेन्ट द्वारा रोम की पुनः प्राप्ति तथा जून 1133 ई० में लोथेयर के सम्राट रूप में अभिषेक के बाद जारी किए गए उसके घोषणा-पत्र को रखना चाहिए, जिसमें दृढ़ता पूर्वक जर्मन साम्राज्य के बिशपों एवं मठाधीशों को, जब तक वे उन्हें सम्राट से प्राप्त न कर लें तब तक 'राज-चिह्नों' के धारण का निषेध किया गया है।[9] यह सम्भव प्रतीत होता है कि राजकीय माँग को किसी सीमा तक संतुष्ट करने के लिए ही पोप द्वारा इसे जारी किया गया था, तथा यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण था क्योंकि बिशप या एबट की लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के इसी विभेद पर ही वॉर्म्स का समझौता आधारित था।

लोथेयर के उत्तराधिकारी कोनार्ड तृतीय की स्थिति की परीक्षा विट्टे (Witte) ने बड़ी सावधानी से उसके राज्यकाल के पादरियों के निर्वाचनों पर लिखे गए प्रबन्ध में की है, तथा यह प्रतीत होगा कि कोनार्ड वॉर्म्स की शर्तों के कठोर पालन का न तो आग्रह करने में समर्थ था न उसकी वैसा करने की कोई इच्छा ही थी। कभी-कभी, तथा विशेषतया अपने व्यक्तिगत प्रदेशों में उसने उन पर बल दिया, किन्तु दूसरे समय, तथा उसके साम्राज्य

Scanned by CamScanner

के दूसरे स्थानों पर, वह उनको क्रियान्वित नहीं कर सका था, या कम से कम उसने उनको क्रियान्वित नहीं किया। वह प्रायः निर्वाचनों में उपस्थित नहीं रहता था, तथा लौकिक सम्पदाओं से प्रतिष्ठापन अभिषेक से पूर्व न होकर बाद में होने लगा। एक मामले में एक विवादास्पद निर्वाचन को राजा के लिए न छोड़कर पोप ने, अधिधर्माध्यक्ष तथा प्रान्त के बिशपों की राय एवं निर्णय से करके, अपने निर्णय करने के अधिकार का दावा किया प्रतीत होता है।[10]

तथापि समग्र रूप से, यह कहना सत्य होगा कि वार्म्स के समझौते के मूल सिद्धान्तों को पूर्णतया मान लिया गया था—अर्थात्, बिशप की धार्मिक स्थिति तथा उसकी लौकिक सम्पत्ति एवं स्वामित्व का अन्तर, और इसीलिए जबकि पहली वस्तु प्रदान करना चर्च की सत्ता के अधिकार में था, तो दूसरी वस्तु प्रदान करने का अधिकार लौकिक सत्ता को था, तथा इस समझौते ने कुछ समय के लिए साम्राज्य तथा पोप के सम्बन्धों में शान्ति ला दी।

अब हमें फ्रेडरिक बारबरोसा (Frederick Barbarossa) तथा उसके समकालीन पोपों के बीच, संघर्ष के आधारभूत सिद्धान्तों तथा परिस्थितियों का अध्ययन करना है।

फ्रेडरिक प्रथम, मार्च 1152 ई० में राजाओं द्वारा फ्रैंकफर्ट नामक स्थान पर निर्वाचित हुआ, तथा उसके प्रथम वर्षों में चर्च से सम्बन्धों में शान्ति बनी रही। वास्तव में उसने वार्म्स के समझौते द्वारा लौकिक सत्ता को प्रदत्त अधिकारों को बनाए रखा, तथा कम से कम एक मामले में उसने उनकी व्याख्या इस ढंग से की जो मूल शब्दों से संगत नहीं थी, किन्तु संभवतः उस संस्करण पर आधारित थी जो कोडेक्स उदालरिकी (Codex Udairici) में सुरक्षित है। फ्राइजिंग के ऑटो का 'गेस्टा फीडरिकी' नामक ग्रन्थ में कथन है कि "क्यूरिया" अर्थात् राजसभा की परम्परा यह थी कि विवादास्पद निर्वाचन के विषय में राजा चाहे जिसे, अपने 'सभासदों' (optimates) की राय से बिशप नियुक्त कर देता था।[11] स्पष्टतः इसी दावे के कारण ही फ्रेडरिक ने 1152 ई0 में वाइडमेन (Weidmann) को जो ज़ाइत्स (Zeitz) का बिशप था, मेग्डेबर्ग का आर्चबिशप नियुक्त कर दिया। पोप यूजीनियस तृतीय (Eugenius III) ने जर्मनी के बिशपों को लिखे गए पत्र में नियुक्ति को अस्वीकार कर दिया, किन्तु वह इस आधार पर नहीं था कि वार्म्स के समझौते की व्यवस्था के अनुसार राजा को सम्राट के रूप में ऐसे विषय का निर्णय केवल अधिधर्माध्यक्ष तथा सम्प्रान्तीय बिशपों की सम्मति से करना है, अपितु इस आधार पर कि फ्रेडरिक ने निर्वाचकों के अधिकारों का अतिक्रमण किया है।[12]

दूसरी ओर फ्रेडरिक ने अपने पक्ष में अपने को पोप की माँगों को पूरा करने का इच्छुक प्रदर्शित किया। फ्रेडरिक तथा उसके युग के पोपों के सम्बन्ध कान्सटेन्स की संधि के शब्दों में सबसे अधिक अच्छी तरह से सुरक्षित हैं, जो कि 1153 ई० में की गई थी। इस संधि के द्वारा फ्रेडरिक ने यूनानियों, नारमनों, तथा रोम के विद्रोहियों के विरुद्ध पोप की सहायता करने की प्रतिज्ञा की जबकि पोप ने उसे सम्राट के रूप में अभिषिक्त करने, तथा उसके साम्राज्य के 'न्याय तथा गरिमा' पर आक्रमण करने वाले किसी भी व्यक्ति को धर्म-बहिष्कृत करके उसका समर्थन करने तथा यूनानियों का मुकाबला करने की प्रतिज्ञा की।[13]

Scanned by CamScanner

1155 ई० में रोम में फ्रेडरिक का सम्राट के रूप में अभिषेक हुआ। तथापि 1156 ई० में पोप की नीति परिवर्तित प्रतीत होती है। जब कान्सटेन्स की संधि हुई थी, पोप के सम्बन्ध नारमनों के साथ खराब थे, तथा वह उनके विरुद्ध फ्रेडरिक से समर्थन की अपेक्षा करता था, किन्तु 1156 ई० में हैड्रियन चतुर्थ ने नारमनों से समझौता कर लिया, तथा नए सम्बन्धों को बेनेवन्टम की संधि का रूप दिया गया। इस संधि की सबसे महत्त्वपूर्ण राजनैतिक व्यवस्थाएँ हैं : हैड्रियन ने विलियम, उसके पुत्र रोजर तथा उनके उत्तराधिकारियों को सिसली का राजा, एपूलिया का ड्यूक, तथा नेपल्स, सालेरनो अमलफी तथा उनके क्षेत्रों सहित कापुआ का राजा मान लिया, जबकि उनके द्वारा पोप हैड्रियन, उसके उत्तराधिकारियों तथा रोमन चर्च के प्रति निष्ठा की शपथ ली गई तथा उनके प्रति स्वामिभक्ति प्रदर्शित की गई।[14]

तथापि, 1157 ई० तक फ्रेडरिक एवं हैड्रियन चतुर्थ में कोई गंभीर विवाद उपस्थित नहीं हुआ, तथा तब भी वह किसी नीति के वास्तविक प्रश्न पर नहीं, अपितु पोप द्वारा प्रयुक्त एक वाक्य पर हुआ जिसमें यह निहित प्रतीत होता था कि फ्रेडरिक ने इस साम्राज्य को पोप के अधीनस्थ सामंत के रूप में प्राप्त किया है। उसकी परिस्थितियाँ इस प्रकार थीं : स्वीडन में स्थित लुण्ड (Lund) के आर्चबिशप एस्कील को रोम में लौटते समय,बर्गन्डी के कुछ विद्रोहियों द्वारा बन्दी बना लिया गया तथा बन्धक के रूप में रख लिया गया। कुछ कारणों से फ्रेडरिक ने उसे मुक्त कराने या अपराधियों को दण्ड देने के लिए सक्रिय कदम नहीं उठाए, तथा हैड्रियन चतुर्थ ने उसे सितम्बर में प्रतिवाद स्वरूप लिखा। उसे हस्तक्षेप करने के कर्त्तव्य का ध्यान दिलाते हुए, वह उस प्रसन्नता एवं स्नेह का स्मरण दिलाता है, जिससे कि रोमन चर्च ने उसका स्वागत किया था, उस पर साम्राज्यिक मुकुट के साथ पूर्ण प्रतिष्ठा तथा गरिमा प्रतिष्ठित की थी, तथा वह उसे और भी अधिक "जागीर" (Beneficia) प्रसन्नता से देने को प्रस्तुत रहेगा.

यह पत्र फ्रेडरिक के पास तब पहुँचा जबकि वह बेसेंसों में एक सभा का संचालन कर रहा था, तथा फ्राइजिंग के ऑटो की सूचना के अनुसार राजाओं में इसने अत्यन्त रोष उत्पन्न किया, क्योंकि इसका अर्थ उनके द्वारा यह समझा गया कि जर्मन सम्राट् साम्राज्य एवं इटली के राजत्व को पोप के प्रदान करने के कारण धारण कर रहे थे। ऑटो के अनुसार वे इसे स्मरण करके बहुत विचलित हुए कि लेटेनि के महल में सम्राट् लोथेयर तृतीय के चित्र के नीचे एक लेख इन शब्दों में लिखा है।

"Rex venit ante foras, iurans prius urbis honores, Post homo fit papae, sumit quo dante coronam."[15]

हैड्रियन के पत्र के पठन से उत्पन्न क्षोभ उन अविवेकपूर्ण शब्दों के प्रयोग से और भी बढ़ गया जो एक पोप के प्रतिनिधि द्वारा प्रयुक्त कहे गए थे : "यदि पोप द्वारा उसे साम्राज्य नहीं दिया गया, तो, किसके द्वारा दिया गया ?" और उन प्रतिनिधियों की हत्या कर दी जाती यदि फ्रेडरिक हस्तक्षेप नहीं करता तथा उन्हें अपने निवास स्थान को भेजकर, बिना विलम्ब किए दूसरे ही दिन रोम जाने की आज्ञा नहीं देता।[16]

अक्टूबर में फ्रेडरिक ने एक परिपत्र जारी किया जिसमें पोप के प्रतिनिधिमंडल के

Scanned by CamScanner

साथ घटी घटनाओं तथा हैड्रियन के पत्र-वस्तु का विवरण दिया गया था। उसने शिकायत की कि चर्च का अध्यक्ष, जो कि ईसा की शांति तथा दयालुता का प्रतीक होना चाहिए, बुराई का साधन व झगड़े का कारण बन गया है, तथा उसने घोषणा की कि उसे साम्राज्य तथा राजत्व राजाओं के निर्वाचन द्वारा केवल ईश्वर से प्राप्त हुआ है, जिसने संसार को दो तलवारों के अधीन बनाया है, तथा जो भी यह प्रतिपादित करे कि उसने शाही मुकुट को सामन्त के रूप में पोप द्वारा प्राप्त किया है उस पर उसने संत पीटर के सिद्धान्तों की अवहेलना का आरोप लगाया, जिसने मनुष्यों को "ईश्वर से डरने तथा राजा का सम्मान करने की आज्ञा दी थी।"[17]

इस बीच अपने प्रतिनिधियों से किए गए व्यवहार से, तथा उन उपायों से जो उसके आरोप के अनुसार फ्रेडरिक ने जर्मनी से किसी को भी पोप के स्थान पर जाने से रोकने के लिए उठाए थे, पोप बहुत विक्षुब्ध हुआ, तथा उसने फ्रेडरिक के आचरण की शिकायत करते हुए जर्मनी के आर्चबिशप तथा बिशपों को पत्र लिखा, जिसमें उसके कार्यों को रोकने तथा उसे अधिक तर्क संगत नीति अपनाने के लिए राजी करने का आग्रह किया। यह उल्लेखनीय है कि उसने स्वीकार किया कि गड़बड़ का मूल कारण उसके द्वारा किया गया शब्द-प्रयोग है। "Insigne videlicet coronae tibi beneficium contulimus" किन्तु उसने अब तक इस वाक्य की कोई सफाई नहीं दी।[18] जर्मन बिशपों ने शिष्टता तथा आदर पूर्वक, किन्तु दृढता से उत्तर दिया, कि पहले पत्र में प्रयुक्त शब्द ही सभी झगड़े की जड़ थे, तथा वे इतने अस्वाभाविक, अपूर्व तथा दुर्भाग्यपूर्ण द्वयर्थक थे कि वे न तो उनका समर्थन कर सकते हैं न उनको स्वीकार कर सकते हैं। जैसी पोप ने इच्छा की थी वे सम्राट् से इस मामले में बातचीत कर चुके हैं, तथा वे उसका उत्तर सूचित कर रहे हैं। इसमें फ्रेडरिक ने यह स्पष्ट कर दिया कि, यद्यपि वह पोप के प्रति सभी उचित सम्मान प्रदर्शित करने का इच्छुक है, वह वैधानिक एवं परम्परागत शब्दावली के किसी परिवर्तन को सहन नहीं करेगा। उसने "दैवी अनुग्रह" (Beneficium divinum) के कारण प्राप्त राजमुकुट की स्वतंत्रता का दावा किया, तथा कुछ विस्तार से निर्वाचन तथा राज्यारोहण के क्रम का वर्णन किया। उसने इसे अस्वीकार किया कि कार्डीनलों के प्रति उसका व्यवहार पोप के प्रति घृणा से प्रभावित है, किन्तु वह उन्हें कोई ऐसा दस्तावेज ले जाने की अनुमति नहीं दे सकता जो साम्राज्य के लिए हानिप्रद हो। उसने किसी को भी उचित कार्य से इटली से आने या जाने को मना नहीं किया है, किन्तु वह उन दुरुपयोगों को रोकने के लिए कृतनिश्चय है जिनसे कि साम्राज्य के चर्च लदे हुए हैं और पुनः स्पष्टतः पहले उल्लिखित चित्र का उल्लेख करते हुए वह कहता है कि जो बात पहले एक चित्र से प्रारम्भ हुई थी वह लेख के रूप में आने लगी है, तथा अब इस लेख को अधिकार-पूर्ण बनाने का प्रयास किया जा रहा है। वह इसे सहन नहीं करेगा, तथा साम्राज्य का इतना अनादर होने देने की अपेक्षा अपना सम्राट् पद छोड़ देने को उचित समझेगा। यदि "राजकीय सत्ता" तथा "धार्मिक सत्ता" के बीच मित्रता स्थापित करनी है, तो इस प्रकार के चित्र नष्ट कर देने चाहिए तथा ऐसे पत्र वापस लिए जाने चाहिए।

बिशप आगे लिखते हैं कि उन्होंने सम्राट् से, जिन्हें वे स्पष्टतया अशांति उत्पन्न करने

Scanned by CamScanner

वाली सूचना समझते हैं, सिसली के विलियम तथा रोजर के साथ संधि के विषय में सुना है..... निस्संदेह यह उल्लेख बेनेवेण्टम की संधि के बारे में है जो हैड्रियन चतुर्थ तथा सिसली के विलियम प्रथम के बीच 1156 ई० में हुई थी; तथा उन्होंने दूसरी संधियों के बारे में भी सुना है।[19]

जून 1158 ई० में पोप के दूत ऑग्सबर्ग में स्थित फ्रेडरिक के पास हैड्रियन चतुर्थ के पत्र लेकर आए, जिसमें पोप ने बुरा लगने वाले वाक्यों का स्पष्टीकरण देने की सावधानी रखी थी, जिन्हें उसके अनुसार गलत समझा गया। उसने घोषणा की कि बेनेफीसीयम (Beneficium) शब्द का उस पत्र में वह तात्पर्य नहीं जैसा कि समझा गया है। उसका अर्थ "जागीर" नहीं किन्तु केवल लाभ है, तथा वह उन व्यक्तियों की सुविचारित ईर्ष्या है, जो चर्च तथा साम्राज्य की शांति नहीं चाहते हैं, जिनके द्वारा उसकी गलत व्याख्या की गई है।[20] फ्रेडरिक ने इस स्पष्टीकरण को मित्रतापूर्ण ढंग से ग्रहण किया तथा कुछ समय के लिए रोम से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गए।

इन परिस्थितियों के महत्त्व के बारे में स्पष्ट निर्णय पर पहुँचना सुगम नहीं। यह समझना अति कठिन है कि हैड्रियन ने सम्राट् से झगड़ा करने की इच्छा क्यों की होगी, तथा उसने यह ढंग क्यों चुना होगा। उसने इस शब्द का प्रयोग जानबूझकर किया, इस पक्ष में एक मात्र महत्त्वपूर्ण तर्क यही तथ्य है कि उसने जर्मन बिशपों के पत्र में इसका स्पष्टीकरण क्यों नहीं किया? सम्पूर्ण रूप से यह बहुत संदिग्ध प्रतीत होता है कि हैड्रियन के वाक्य-पद उसके इस निश्चय को बताने के लिए जानबूझ कर प्रयोग किए गए थे कि वह सम्राट् को पवित्र पोप-पद के अधीन एक जागीरदार समझता है; यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि असावधानी से ही उनका प्रयोग किया गया था। तथापि इस ओर ध्यान देना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि जर्मन बिशपों ने इस संभावित दावे का तत्काल सशक्त खण्डन किया, तथा पोप ने भी इसका स्पष्टीकरण देने की सावधानी दिखाई।

1159 ई० में हैड्रियन चतुर्थ की मृत्यु से कुछ समय पहले फ्रैडरिक तथा हैड्रियन चतुर्थ के बीच फिर झगड़ा उठ खड़ा हुआ। बैम्बर्ग के बिशप ने साल्जबर्ग को लिखे गए एक पत्र में, जिसे फ्राइजिंग के ऑटो ने "गेस्टा फ्रिडरिकी" में उद्धृत किया है सूचना दी कि पोप ने बहुत महत्त्वपूर्ण माँगें करते हुए फ्रेडरिक के पास दो कार्डीनलों को भेजा था तथा कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को निश्चित किया। उसने घोषणा की कि सम्राट् को पोप को बताए बिना रोम को कोई दूत नहीं भेजने चाहिए, क्योंकि नगर पर अधिकार और सभी "राज-चिह्नों" पर संत पीटर का स्वामित्व था। इटली के बिशपों को बिना सम्मान अर्पित किए सम्राट् के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी थी, तथा उनके द्वारा सम्राट् के दूतों का अपने महलों में स्वागत करने की आवश्यकता नहीं थी। उसने रोमन चर्च को टाइबर, फरेरा, मस्सा, काउन्टेस माटिल्डा का सम्पूर्ण क्षेत्र, एक्वापेन्डेन्टे से रोम तक का सम्पूर्ण क्षेत्र, स्पोलेटो का ड्यूक क्षेत्र, तथा सार्डीनिया और कार्सिका के टापू लौटाने की माँग की।[21]

उसके उत्तर में फ्रैडरिक ने पहले तो यह कहा कि ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों का उत्तर वह अपने सामन्तों से राय लिए बिना नहीं दे सकता तथापि अस्थायी रूप से उसने यह उत्तर दिया, यदि वे "राजचिह्नों" का त्याग करने को राजी हो तो वह इटली के बिशपों से कर

Scanned by CamScanner

नहीं माँगेगा। वह यह मानने को राजी था कि बिशपों को राजदूतों का स्वागत अपने महलों में करने की आवश्यकता नहीं थी, यदि वे उस भूमि पर बने हों जो बिशपों की अपनी है, किन्तु यदि वे सम्राट् की भूमि पर बने हों, तो वास्तव में वे सम्राट् के ही महल थे। पोप की इस माँग के बारे में कि उसे रोम को दूत नहीं भेजने चाहिए, क्योंकि यहाँ की सम्पूर्ण शांति तथा व्यवस्था पर संत पीटर का स्वामित्व है, उसने कहा कि यह एक गम्भीर मामला है जिस पर सावधानी से विचार की आवश्यकता है, क्योंकि यदि रोम के नगर पर सम्राट् का अधिकार नहीं है, तो इसका अर्थ यही होगा कि उसकी राजकीय सत्ता का केवल नाम तथा दिखावा मात्र है।[22]

ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग इसी समय हैड्रियन ने कॉन्सटेन्स में पोप यूजेनियस तृतीय के साथ 1153 ई० में हुई संधि के पुनर्नवीकरण की माँग की, किन्तु जैसा फ्रैडरिक द्वारा साल्जबर्ग के आर्चबिशप को लिखे गए पत्र से ज्ञात होता है, फ्रेडरिक ने इस आधार पर इसे अस्वीकार कर दिया कि हैड्रियन ने बेनेवेण्टम में सिसली के विलियम के साथ 1156 ई० में संधि करके उक्त संधि की शर्तों का उल्लंघन किया है। फ्रेडरिक की मान्यता थी की यह कॉन्सटेन्स के समझौते का उल्लंघन है कि पोप ने उससे राय लिए बिना ही सिसली के राजा से संधि कर ली।[23]

इस प्रकार उठाए गए प्रश्न निस्संदेह गम्भीर एवं दूरगामी थे, तथा एक गंभीर परिस्थिति उत्पन्न कर देते, किन्तु इसी समय दूसरे अधिक गम्भीर प्रश्न उठ खड़े हुए।

1159 ई० में हैड्रियन चतुर्थ का देहावसान हो गया, तथा उसकी मृत्यु के बाद पोप पद का दोहरा निर्वाचन हो गया। रोलेण्ड को एलेक्जेण्डर तृतीय के रूप में, तथा आक्टेवियन को विक्टर चतुर्थ के रूप में चुना गया। इस परिस्थिति का बहुत स्पष्ट वर्णन राइखर्सबर्ग के गेर्होह के एक ग्रन्थ में किया गया है। वह जर्मनी के सुधारवादी पादरियों में सर्वाधिक उत्साही था, किन्तु उसने कुछ समय के लिए प्रतिस्पर्धी दावेदारों की ओर अनिश्चित दृष्टिकोण अपनाए रखा। वह इस मामले में स्पष्ट था, कि जहाँ तक निर्वाचन का प्रश्न है, एलेक्जेण्डर को वैधानिक एवं सैद्धान्तिक रूप से कार्डीनलों के बहुमत द्वारा निर्वाचित किया गया है, किन्तु दूसरी ओर उसने गंभीरतापूर्वक तथा पूर्ण दायित्व से विक्टर के समर्थकों की इस मान्यता की सूचना दी है कि एलेक्जेण्डर तथा उसका निर्वाचन करने वाले कार्डीनल दोनों ही सम्राट् के विरुद्ध षडयंत्र में लीन थे। यह आरोप लगाया गया कि हैड्रियन चतुर्थ की मृत्यु से पहले ही उन सबने सिसली के राजा विलियम, मिलान के निवासियों तथा साम्राज्य के दूसरे शत्रुओं से समझौता कर लिया था, उन लोगों ने एक शपथ द्वारा अपने को बांध लिया था कि हैड्रियन की मृत्यु के बाद वे पोप-पद पर किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं चुनेंगे जो षडयंत्र में उनके साथ नहीं है, तथा उनको विलियम तथा मिलानवासियों द्वारा यह प्रतिज्ञा करने के लिए रिश्वत दी गई कि फ्रेडरिक को धर्म-बहिष्कृत किया जाएगा तथा उनकी स्वीकृति के बिना पुनः धर्म-बहिष्कार समाप्त नहीं होगा।[24]

इन परिस्थितियों में फ्रैडरिक ने दो सिद्धान्त प्रस्तुत किए। पहला यह कि चर्च की एक सामान्य-सभा द्वारा पोप-पद के दोनों अभिलाषियों के दावों का अध्ययन किया जाए तथा

Scanned by CamScanner

यह निर्णय किया जाए कि दोनों में वैधानिक पोप कौन है; तथा यह सम्राट् का कर्त्तव्य था कि इस प्रकार की परिषद् को बुलाने के लिए आवश्यक कदम उठाए जायें।

फ्रेडरिक की स्थिति पूर्णतया और स्पष्टतया जर्मन बिशपों को परिषद् में उपस्थित होने के लिए भेजे गए निमंत्रण पत्र में अभिव्यक्त होती है, जो कि इस मामले पर विचार करने के लिए पाविया में बुलाई गई थी। वह ईसा के दो तलवारों का उल्लेख करने वाले शब्दों का रोमन चर्च तथा रोमन साम्राज्य के अर्थ में लेता है, जिससे सारी दुनियाँ का दैवी तथा मानवीय मामलों में शासन किया जा सकता है। ईश्वर एक है, पोप एक है, सम्राट् एक है अतः चर्च भी एक ही होना चाहिए, किन्तु उसे यह बताते हुए खेद होता है कि रोमन चर्च के दो अध्यक्ष प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के चर्च के विभाजन के भय को दूर करने के लिए रोमन साम्राज्य को, जिसे इस प्रकार के भयोत्पादक अनिष्ट के निरोधक के रूप में ईश्वरीय व्यवस्था द्वारा स्थापित किया गया है, सब की सुरक्षा के लिए, चर्च और सम्पूर्ण मानवता को इन दोषों से मुक्त करने के लिए, कार्यवाही करनी चाहिए। अतः उसने पाविया में एक पवित्र तथा सामान्य परिषद् को एपीफेनी के आक्टेव (Octave of the Epiphany) में और उन दोनों को भी बुलाया है जो अपने को रोमन पोप कहते हैं, तथा साम्राज्य, फ्रांस, इंग्लैंड, स्पेन तथा हंगरी के सभी बिशपों का आवाहन किया है, ताकि उसकी उपस्थिति में, उनकी परीक्षा द्वारा यह घोषणा की जा सके कि दोनों दावेदारों में से किसे कानून के अनुसार विश्वव्यापी चर्च का शासक बनाया जाए।

फ्रैडरिक द्वारा प्रस्तुत किए गए दावों के यथार्थ स्वरूप पर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है। उसने दावा किया कि जिस प्रकार की यह परिस्थिति उत्पन्न हुई है इससे निपटना सम्राट् का कर्त्तव्य है, किन्तु उसने यह दावा नहीं किया कि उसे दावेदारों के बीच स्वयं निर्णय करने का अधिकार है। जैसा उसने बताया, उसका कार्य सभी देशों के चर्चों के बिशपों की एक सामान्य परिषद् बुलाना था, तथा यह उनका कार्य था कि प्रतिस्पर्द्धी दावे के औचित्य पर विचार करें तथा निर्णय करें·····उसकी इसमें केवल उपस्थिति आवश्यक थी। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ यह था कि, पोप-पद के विवादास्पद निर्वाचनों की दशा में मामले के औचित्य का विचार करना सम्पूर्ण चर्च का कार्य था, जबकि सम्राट् का कार्य चर्च के संगठन को गति-क्षमता प्रदान करना था।

इसकी तुलना हमें उस पत्र की शब्दावली से करनी चाहिए जिसके द्वारा फ्रेडरिक ने इंग्लैंड के हेनरी द्वितीय को जितने अधिक बिशप व मठाधीश संभव हो पाविया की परिषद् में भेजने का निमंत्रण दिया गया था, ताकि उनके तथा दूसरे धार्मिक व्यक्तियों के निर्णय से रोमन चर्च की एकता बनी रह सके।[25] एलेक्जेण्डर तृतीय तथा उसके कार्डीनलों को उनकी उपस्थिति की इच्छा करते हुए लिखे गए अपने पत्र में, जर्मन बिशपों के पत्र की ही स्थिति को दोहराया गया है, केवल उसे अधिक स्पष्टतापूर्वक कहा गया है। उसने दावा किया कि उसका कर्त्तव्य साम्राज्य के सभी चर्चों की रक्षा (Patrocinari) करना था, विशेषतया रोमन चर्च का ध्यान रखना, जिसकी "सुरक्षा तथा देख-भाल" उसे दैवी व्यवस्था के अन्तर्गत विशेष रूप से सौंपी गई थी; उसने निर्वाचन से उत्पन्न विवाद पर खेद प्रकट किया, तथा यह कहा कि इस बुराई का प्रतिकार करने के लिए उसने पाविया में एक सामान्य

Scanned by CamScanner

न्यायालय तथा परिषद् बुलाने का आदेश दिया है (Indiximus Celebrandum) जिसमें उसने आर्चबिशपों, बिशपों, मठाध्यक्षों तथा दूसरे धार्मिक व्यक्तियों को बुलाया है, ताकि लौकिक न्याय को सम्पूर्णतया दूर हटा कर चर्च के इस महत्त्वपूर्ण विषय का निर्णय केवल धार्मिक व्यक्तियों द्वारा इस रूप में हो कि ईश्वर का सम्मान हो सके तथा कोई भी रोमन चर्च को "पवित्रता" तथा न्याय से वंचित न कर सके तथा रोम नगर में शांति स्थापित हो सके। अतः यह ईश्वर तथा कैथोलिक चर्च के नाम पर उनको परिषद् में उपस्थित होने तथा धार्मिक पुरुषों के निर्णयों को सुनने तथा मानने की आज्ञा तथा समादेश करता है।[26] ये सिद्धान्त वही हैं जो जर्मन बिशपों के पत्र में हैं, किन्तु फ्रैडरिक रोमन चर्च की सुरक्षा तथा देखभाल के विशेष कर्त्तव्य पर बल देता है, तथा वह इस संदेह का बलपूर्वक खण्डन करता है कि विवादास्पद प्रश्न के निर्धारण में योगदान के अधिकार का लौकिक सत्ता द्वारा दावा किया गया है। तथापि वह एलेक्जेण्डर को परिषद् में उपस्थित होने के लिए बुलाने में अधिकारपूर्ण स्वर का प्रयोग करता है।

यह ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि एक दूसरे पत्र में फ्रैडरिक की स्थिति ठीक वही नहीं है। इसमें वह साल्ज़बर्ग के आर्चबिशप से प्रार्थना करता है कि वह उससे राय लिए बिना किसी भी पक्ष को समर्थन न दे, ताकि साम्राज्य में किसी भी प्रकार की फूट न पड़े; वह कहता है कि उसने फ्रान्स तथा इंगलैंड के राजाओं को केवल एक ऐसे प्रत्याशी का समर्थन करने को कहा है, जिस पर वे तीनों सहमत हो जाएँ। वह यह कह कर उपसंहार करता है कि वह किसी भी ऐसे व्यक्ति को पोप नहीं मानेगा जिसे निष्ठावानों ने एकमत से न चुना हो।[27] यहाँ फ्रैडरिक का स्वर कुछ भिन्न है। यद्यपि वह चर्च के सामान्य निर्णय को ही अधिकारी सत्ता मानता है जिसके द्वारा मामले का निर्णय अंतिम रूप से होगा, किन्तु साथ ही साथ वह इस प्रकार की भाषा का प्रयोग कर रहा है मानो उसे तथा फ्रांस और इंगलैंड के राजा को न्यायसम्मत प्रत्याशी को मान्यता देने की कुछ सत्ता का अधिकार हो। किन्तु यह कहा जा सकता है कि यह सम्पूर्ण चर्च के निर्णय की घोषणा से पूर्व के समय की ही ओर संकेत करती है।

एलेक्जेण्डर तृतीय ने उसको सम्बोधित इस चुनौती को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं किया, किन्तु तुरंत ही दृढ़ता से सम्राट् के कार्य तथा इस दावे का कि सम्पूर्ण चर्च इस मामले का निर्णय लेने का अधिकारी है, खण्डन एवं निन्दा की। उसके वक्तव्य का स्वर शिष्ट था, किन्तु उसका दृष्टिकोण समझौते से विमुख था।

उसने मान लिया कि अपनी विशेष स्थिति के कारण सम्राट् रोमन चर्च का समर्थक तथा विशेष संरक्षक था, तथा उसे विश्वास दिलाया कि वह उसका सभी राजाओं से अधिक सम्मान करता है, किन्तु उसको ईश्वर का अधिक सम्मान करना चाहिए, तथा उसे आश्चर्य है सम्राट् रोमन चर्च को वह सम्मान प्रदान करने को प्रस्तुत नहीं जो न्यायोचित रूप में उसका है। वह कहता है कि उसे सम्राट् के पत्र से विदित होता है, कि उसने पाँच राज्यों के धार्मिक पुरुषों की एक परिषद् बुलाई है, किन्तु ऐसा करने में उसने अपने पूर्वाधिकारियों की परम्परा का उल्लंघन किया है, क्योंकि उसने रोमन पोप की जानकारी के बिना वैसा किया है, तथा उसे उपस्थित होने को बुलाया है मानो वह उससे ऊपर

Scanned by CamScanner

अधिकार रखता हो, जबकि ईसा ने संत पीटर को तथा उसके माध्यम से रोमन चर्च को यह विशेषाधिकार दिया है कि वह सभी चर्चों के मामलों का विचार तथा निर्णय करेगा, तथा स्वयं किसी के भी निर्णय से परे होगा, तथा इस विशेषाधिकार की रक्षा वह प्राण देकर भी करेगा। अस्तु, सैद्धान्तिक परम्परा तथा पवित्र धर्माचार्यों की सत्ता उसे सम्राट् के न्यायालयों मे उपस्थित होने तथा उसके निर्णय को ग्रहण करने का निषेध करती है, तथा यदि वह अपने अज्ञान अथवा दुर्बलचित्तता के कारण चर्च को दासता के स्तर पर लाने का अपराध करेगा तो वह कठोरतम निन्दा का पात्र होगा।[28]

इसलिए जब 1160 ई० के पूर्वार्द्ध में परिषद् की सभा पाविया में हुई तो अलेक्जेण्डर तृतीय का कोई प्रतिनिधि नहीं था, किन्तु विक्टर का मामला सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। उसके प्रतिनिधि ने दावा किया कि उसका विधिवत् निर्वाचन व पदारोहण हुआ है तथा रोमन पादरियों द्वारा उसे मान्यता दी गई है, जबकि एलेक्जेण्डर के विरुद्ध में विशेषतया उसने कहा कि वह साम्राज्य को उच्छिन्न करने के प्रयत्न में भागीदार है, तथा षडयंत्रकारियों ने सिसली के राजा तथा मिलानवासियों से यह समझौता कर लिया था, कि हैड्रियन चतुर्थ की मृत्यु होने पर वे अपने में से एक को पोप चुन लेंगे।[29]

परिषद् का निर्णय हमारे सम्मुख दो रूपों में सुरक्षित है.....एक स्वयं परिषद् द्वारा प्रकाशित विश्व-पत्र के रूप में तथा दूसरा फ्रैडरिक के द्वारा परिषद् के निर्णय से सहमति व्यक्त करने वाले सार्वभौम पत्र के रूप में। परिषद् का पत्र पहले यह घोषित करता है कि मामले की उनके द्वारा सैद्धान्तिक तथा वैधानिक रूप से परीक्षा कर ली गई है (remoto omni seculari indicio) तथा यह सिद्ध हुआ कि विक्टर संत पीटर की समाधि पर कार्डीनलों के अधिक समझदार वर्ग द्वारा (Saniori parte) जनता की प्रार्थना पर, तथा रोमन पादरियों की अभिलाषा तथा सहमति से चुना गया था। वे मानते हैं कि बीस में से नौ कार्डीनलों ने उसके निर्वाचन की सहमति दी है, किन्तु वे इसे अस्वीकार नहीं करते कि वे अल्पमत में थे। वे इस बात पर अधिक बल देते हैं कि वह रोलेण्ड (एलेक्जेण्डर तृतीय) से बहुत दिनों पूर्व निर्वाचित हो गया था तथा इसके महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए वे एक ग्रन्थ का उल्लेख करते हैं जिसे वे (Liber de Ritu et ordinatione Romanorum Pontificum) कहते हैं तथा यह प्रदर्शित करते हैं कि इसे पोप इन्नोसेन्ट द्वितीय के निर्वाचन से संबंधित विवाद में महत्त्वपूर्ण माना गया था। वे इस पर बल देते हैं कि रोलेण्ड को परिषद् में निमंत्रित किया गया था,' (remoto omni seculari indicio), किन्तु उसने तथा उसके प्रधान पादरियों ने चर्च की किसी भी जाँच अथवा निर्णय को मान्यता देना अस्वीकार कर दिया। वे रोलेण्ड तथा उसके कार्डीनलों के षडयंत्र का भी विवरण देते हैं। अंत में, वे घोषणा करते हैं कि परिषद् ने यह निर्णय किया कि विक्टर का निर्वाचन, जो कि परिषद् में आया था, तथा चर्च के निर्णय को मानने को तैयार था, पुष्ट और स्वीकृत किया जाए, तथा रोलेण्ड का निर्वाचन अवैध घोषित हो। वे इतना और कहने का ध्यान रखते हैं कि यह सब किसी लौकिक हस्तक्षेप के बिना कर लेने के बाद, परिषद् की राय तथा प्रार्थना पर तथा सभी बिशपों एवं पादरियों के पश्चात् सम्राट् ने अन्त में विक्टर के निर्वाचन को स्वीकार किया, तथा उसके बाद उपस्थित राजाओं एवं

Scanned by CamScanner

विशाल जनसमूह ने अपनी सहमति दी।[30]

फ्रैडरिक के विश्व-पत्र में एलेक्जेण्डर द्वारा पाविया की परिषद् में उपस्थित होने से अस्वीकार करने का वर्णन है, किन्तु षडयंत्र के प्रमाणों पर अधिक बल दिया गया है। वह कहता है कि परिषद् कोई लौकिक न्यायालय नहीं थी, क्योंकि वह किसी भी अयाजक की उपस्थिति के बिना ही बैठी तथा मामले पर विचार किया; किन्तु एलेक्जेण्डर ने चर्च की जाँच को स्वीकार करने से यह घोषणा करके मना कर दिया कि उसे सभी मनुष्यों का निर्णय करने का अधिकार है परन्तु उसका निर्णय कोई नहीं कर सकता। परिषद् का निर्णय षड्यंत्र के स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर किया गया। तथा इस आधार पर कि विक्टर के विरुद्ध इसके अतिरिक्त कुछ भी आरोप नहीं था कि उसका निर्वाचन कार्डीनलों के अल्पमत से हुआ है, अतः इसने (परिषद्) एलेक्जेण्डर को दोषी माना तथा विक्टर के निर्वाचन की पुष्टि की। फ्रैडरिक चर्च के निर्णय को मानकर अपनी सहमति प्रदान करता है तथा विक्टर को विश्वव्यापी चर्च का शासक एवं पिता घोषित करता है।[31]

परिषद् का पत्र विक्टर के निर्वाचन की न्यायसंगतता एवं औचित्य पर अधिक बल देता है, तथा फ्रैडरिक का साम्राज्य के विरुद्ध षडयंत्र पर, किन्तु वे दोनों यह प्रतिपादन करने में एकमत हैं कि यह निर्णय चर्च का है, लौकिक सत्ता का नहीं, तथा एलेक्जेण्डर ने चर्च द्वारा निर्णय के लिए अपना मामला प्रस्तुत करना अस्वीकार किया।

इस प्रकार जो संघर्ष 1160 ई० में प्रारंभ हुआ सत्रह वर्ष, अर्थात् 1199 ई० में वेनिस की संधि तक चलता रहा, जब फ्रेडरिक लॉम्बार्ड नगरों की माँग को मानने तथा ऐलेक्जेण्डर तृतीय को मान्यता देने को विवश हो गया। हमारे उद्देश्य के लिए इन वर्षों के इतिहास का सम्प्रति विवरण देना आवश्यक नहीं·····अतः हम पुनः एक परवर्त्ती ग्रन्थ में नगरों की माँग में वर्त्तमान राजनीतिक सिद्धान्तों पर विचार करेंगे·····यहाँ हमारा सम्बन्ध लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के बीच विवादास्पद प्रश्नों से है।

सन्दर्भ

1. E. Bernheim, 'Zur Ceschichte des Wormser Concordata'.
2. Cordex Udalrici, 214.
3. "Casuum Sancti Galli", Contd, ii. 8 (M. G. H., Seriptores', vol. ii).
4. Otto of Freising, 'Gesta Fridcrici', i.
5. "Narratio de electione Lotharii in Regem Romanorum" 6 (M. G. H., S, S. xii. 511).
6. E. Bernheim, 'Lothar III. unddas Wormer Conco dat'.
7. Vita Sancti Bernhardi'. ii.1,5 (Migne, 'P. L.', vol. 185).
8. Cf. Bernheim, op. cit., pp. 37, 38.
9. M. G. H., Legum, Sect., iv. 1, 'Constitutiones', vol, i. 116.
10. H. Witte, 'For schungen zur Geschichte des Wormer Concordat'.
11. Otto of Freising, 'Gesta Friderici', i, (p. 392).
12. Id. id., (pp. 393, 394).
13. M. G. H., Leg., Sect. iv. 'Const'. i. 144, 145.
14. Hadriani IV. et Wilhelmi Regis, Concordia Beneventana (in J. m. Wattcrich, 'Pontificum Romanorum Vitae', vol. ii. p. 352.

Scanned by CamScanner

15 सम्भव है जैसा Wilmar (the editor of the 'Gesta Friderici' in M G.H , Scriptores, vol. xx.) ने बताया है, Lothair III, को Innocent II द्वारा territory (allodium) of the Countess Mathilda के प्रदान का इस लेख द्वारा गलत अर्थ ले लिया गया होगा ।

16. Otto of Freising, 'Gesta Friderici', iii. 10.
17. M. G. H., Leg. Sect. iv., Const, i, 165.
18. Id. id., 166.
19. Id. id., 167 (2).
20. Id. id., 168.
21. 'Gesta Friderici', iv. 34.
22. M. G. H., Leg,, Sect. IV., Const., vol. i. 179.
23. Id. id., 180.
24. Gerhoh of Reichersberg, (De Investigatioone Antichristi', i. 53.
25. Id. id.. 182.
26. Id. id., 184.
27. Id. id., 181.
28. M. G. H., Leg., Sect. IV., Const. vol. i. 185.
29. Id. id., 187, 188.
30. Id. id., 190.
31. Id. id., 189.

Scanned by CamScanner

द्वितीय अध्याय

सैलिस्बरी का जॉन

सैलिस्बरी के जॉन का "पोलीक्रेटिकस" (Policraticus) 1115 ई० तथा 1159 ई० के बीच हेड्रियन चतुर्थ के पोप-पद के कार्यालय में लिखा गया था,[1] तथा इसलिए उस युग की रचना है जबकि पोप तथा सम्राट् के बीच पहले से कुछ संघर्ष विद्यमान था, तथा उस युग से पूर्व की रचना है जब योरोप में एलेक्जेण्डर तृतीय तथा फ्रेडरिक प्रथम के बीच संघर्ष छिड़ा तथा इंगलैंड में हेनरी द्वितीय तथा थामस-ए-बेकेट के बीच स्थानीय किन्तु महत्त्वपूर्ण विवाद छिड़ा। इस प्रकार लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के सम्बन्धों के बारे में विचारों की प्रवृत्ति के प्रमाण के रूप में इसका अध्ययन लाभदायक है, क्योंकि यह एक ऐसे समय में लिखी गई थी जबकि मनुष्यों की भावनाएँ उग्र संघर्ष से उत्तेजित नहीं हुई थीं, किन्तु इसमें क्षतिपूरक कमी यह भी है कि किसी सीमा तक इसमें वैचारिक तथा सामान्यीकृत सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व है जिनके वास्तविक महत्त्व की विशिष्ट तथा व्यावहारिक प्रश्नों के सन्दर्भ में व्याख्या का आवश्यकतानुसार परीक्षण नहीं किया गया। जैसा हम देखेंगे, सेलिस्बरी के जॉन तथा ऑग्सबर्ग के होनोरियस की सैद्धान्तिक स्थिति में पारस्परिक सम्बन्धों के कुछ रोचक सूत्र हैं, तथा लगभग यह प्रतीत होता है कि प्रथम महान् संघर्ष के समाप्त होने तक उस युग के व्यावहारिक प्रश्नों के आधारभूत सिद्धान्तों के वैचारिक विकास पर मनुष्य विचार करने लगे थे।

जॉन एक उग्र चर्चवादी स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। वह न केवल लौकिक सत्ता द्वारा चर्च पर प्रत्येक आक्रमण की कठोर निन्दा तथा लौकिक कानून का अन्य सब कानूनों से श्रेष्ठ होने का खण्डन ही करता है, वरन् वह बहुत स्पष्टता से धार्मिक सत्ता तथा उसके कानूनों का लौकिक से श्रेष्ठ होने का प्रतिपादन भी करता है। साथ ही वह निस्संकोच रूप से धार्मिक सत्ताधारियों द्वारा अवैध धनापहरण की आलोचना करता है तथा चर्च के निरंकुश शासक की उतनी ही कठोरता से निन्दा करता है जितनी कि वह लौकिक निरंकुश शासक की करता है। हमें इसी क्रम में दोनों ही स्थितियों का विचार करना चाहिए क्योंकि प्रत्येक महत्त्वपूर्ण है।

Scanned by CamScanner

एक स्थल पर वह अयोग्य व्यक्तियों की धार्मिक पदों पर नियुक्ति के ऊपर विचार करता है, तथा राजा की निरंकुश सत्ता के समर्थकों को यह प्रतिपादित करता हुआ प्रदर्शित करता है कि राजा सभी कानूनों से परे था, तथा किसी ऐसे व्यक्ति की योग्यता के बारे में सन्देह करना जिसे उसने उस पद के लिए चुना है धर्म-द्रोह जैसा अपराध है। वह कहता है कि वे यह मानते हैं कि लौकिक कानून के बराबर कोई कानून नहीं है, तथा परम्परा के पूर्वोदाहरणों पर तर्क के विपरीत होने पर भी आग्रह करते हैं, तथा जो दैवी कानूनों के प्रति आवेदन करने का प्रयत्न करें उसे राजा का शत्रु मानते हैं।[2] जॉन ने स्पष्टतया राजकीय कानूनवेत्ताओं के स्वर एवं स्वभाव से रोषपूर्वक हानि उठाई थी, अतः लौकिक हस्तक्षेप के विरुद्ध चर्च एवं उसके अधिकारों की सुरक्षा तथा लौकिक न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र से पादरियों को मुक्त रखने के लिए वह रोमन विधि तथा इसके उपबन्धों के उद्धरण प्रस्तुत करके अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाता है।[3] रोमन कानून को उसकी अपील रोचक है, तथा हमें इस तथ्य का स्मरण दिलाती है कि हम अब ऐसे युग में आ पहुँचे हैं जिसमें रोमन कानून का पुनः प्रारम्भ किया गया अध्ययन महत्त्वपूर्ण माना जाना आरम्भ हो गया था। हम राजनीतिक सत्ता के स्वरूप के बारे में उसके सिद्धान्तों का विवेचन करते समय पहले ही देख चुके हैं, कि रोमन न्याय-व्यवस्था के विस्तृत परिचय का उस पर बहुत प्रभाव पड़ा।[4] लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के संघर्षों में वास्तव में रोम का कानून एक दुधारी तलवार थी[5] किन्तु सैलिस्बरी के जॉन को वह एक सुरक्षा का स्वागत योग्य शस्त्र प्रतीत हुआ।

सैलिस्बरी के जॉन ने अपने को धार्मिक सत्ता पर लौकिक आक्रमण की निन्दा तथा उसका विरोध करने तक ही सीमित नहीं रखा, उसने धार्मिक सत्ता की उत्कृष्ट गरिमा तथा शक्ति की ओजपूर्ण घोषणा की। एक लेखांश में तो वह हठपूर्वक कहता है यदि वे दैवी कानूनों के स्वरूप तथा चर्च के अनुशासन से मेल नहीं खाते तो राजाओं के सभी कानून निरर्थक तथा अबैध हैं, वह जस्टीनियन के संहिताओं से उद्धरण देकर यह सिद्ध करता है कि राजकीय कानून धार्मिक सिद्धान्तों के अनुकारी होने चाहिए।[6] दूसरे स्थान पर वह एक मान्यता प्रस्तुत करता है जो हमें पहले ही सुविदित है, तथा प्रतिपादन करता है कि राजा ईश्वर के तथा धरती पर उसका स्थान लेने वाले व्यक्तियों के उसी प्रकार अधीन है जैसे कि मानव शरीर आत्मा से शासित होता है।[7]

तथापि वह इन कल्पनाओं को केवल मात्र सामान्य शब्दों में ही प्रस्तुत नहीं करता, अपितु एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेखांश में उनको दो तलवारों के सिद्धान्त की व्याख्या के रूप में प्रस्तुत करता है, तथा घोषणा करता है कि चर्च से ही राजा अपनी भौतिक तलवार को प्राप्त करता है, क्योंकि दोनों तलवारों पर स्वामित्व चर्च का ही है, किन्तु वह भौतिक तलवार का उपयोग राजा के हाथों से कराता है। अतः राजा "धार्मिक सत्ता" का दूत (या अभिकर्त्ता) है तथा पवित्र पद के उस निम्नस्तरीय कर्तव्य का पालन करता है जो कि पुरोहित के हाथों से करने योग्य नहीं है।[8] यह धारणा संत बर्नार्ड के ग्रन्थ "डे कन्सीडेरेशन" (De Consideratione) के कुछ लेखांशों तथा उसके एक पत्र के ही समानान्तर है, तथा उनको इसका मूल स्रोत माना जा सकता है। इनमें से पहले में वह

Scanned by CamScanner

पोप यूजेनियस तृतीय से आग्रह करता है कि धार्मिक एवं भौतिक दोनों ही तलवारें चर्च तथा पोप के स्वामित्व में हैं; वास्तव में भौतिक तलवार का उपयोग उसे नहीं करना है, किन्तु उसे पुरोहित के अनुरोध (ad nutum) तथा सम्राट् की आज्ञा से ही निकाला जाएगा। दूसरे में वह यह घोषणा करता है कि दोनों तलवारें संत पीटर की हैं, इनमें से एक को उसके अनुरोध पर तथा दूसरी को उसके हाथों से निकाला जाएगा।[9]

यह सिद्धान्त कि दोनों तलवारों पर चर्च का अधिकार है बहुत महत्त्वपूर्ण है। जहां तक हमने अध्ययन किया है, सैलिस्बरी के जॉन तथा संत बर्नार्ड के इन वक्तव्यों की मध्यकाल के प्राचीन साहित्य में ठीक समानता कहीं नहीं है। इनमें से सबसे निकट समानता ऑग्सबर्ग के होनोरियस के 'सुम्मा ग्लोरिया' के वाक्यों में है, जिस पर हम एक पिछले अध्याय में विचार कर चुके हैं। होनोरियस ने यह प्रतिपादित किया कि ईसा ने अपने चर्च पर शासन के लिए केवल "धार्मिक सत्ता" की स्थापना की "राजकीय सत्ता" की नहीं, तथा सिलवेस्टर प्रथम तथा कॉन्सटेन्टाइन के समय तक उसका शासन केवल पुरोहितों द्वारा ही होता था, तथा कॉन्सटेन्टाइन ने सिलवेस्टर को अपने साम्राज्य का मुकुट प्रदान किया, तथा घोषणा की कि पोप की सम्मति के बिना किसी को भी साम्राज्य प्राप्त न हो। तथापि सिलवेस्टर ने स्वीकार किया कि जो विद्रोही हों उनका दमन भौतिक तलवार के बिना नहीं हो सकता, अतः उसने कॉन्सटेन्टाइन को एक सहायक के रूप में सम्मिलित कर लिया, तथा दुष्कर्म करने वालों को दण्ड देने के लिए उसे भौतिक तलवार सौंप दी।[10] संत बर्नार्ड तथा सैलिस्बरी के जॉन के वाक्यों का सम्बन्ध कहाँ तक होनोरियस से है यह कहना कठिन है। वे उसके समान इस सिद्धान्त का सम्बन्ध कि दोनों तलवारें चर्च की हैं "कॉन्सटेन्टाइन के दान" से नहीं जोड़ते; संत बर्नार्ड यह सम्बन्ध सीधा ईसा द्वारा संत पीटर को कहे गए, इस कथन से जोड़ता है जिसमें उसे अपनी तलवार को अपने म्यान में रखने की आज्ञा दी गई है। हम इन वाक्यों का कुछ सम्बन्ध पीटर डेमियन के उन शब्दों से जोड़ सकते हैं, जिनमें वह संत पीटर को दोनों राज्यों के कानूनों को धारण करता हुआ बताता है, जिन पर हम पहले विचार कर चुके हैं।[11] किन्तु ऐसे किसी सम्बन्ध का सुझाव देने का पर्याप्त आधार नहीं प्रतीत होता।

संत बर्नार्ड तथा सैलिस्बरी के जॉन के इन वक्तव्यों को हम क्या महत्त्व प्रदान करें? संत बर्नार्ड के वक्तव्य का सन्दर्भ यह संकेत करता है कि इनके आधार पर यह निष्कर्ष निकालना कि उनका कोई सामान्य महत्त्व है बुद्धिमत्ताहीन होगा। "दे कन्सीडेरेशन" में वह पोप यूजेनियस से यह अनुरोध कर रहा है कि रोमन जनता के दुराग्रह तथा अव्यवस्था के कारण उसके द्वारा न केवल आध्यात्मिक तलवार के ही प्रयोग करने का, अपितु उसके तथा सम्राट् की आज्ञा से भौतिक तलवार का भी उनके विरुद्ध उपयोग करवाने का औचित्य है। अपने पत्र में वह पोप से आग्रह करता है कि पूर्वी चर्च की सुरक्षा के लिए किए गए धर्मयुद्ध में उसे भौतिक तलवार का प्रयोग करवाना चाहिए। यह वक्तव्य कि दोनों तलवारें चर्च की हैं निस्संदेह स्पष्ट है, किन्तु यह विचार निराधार होगा कि संत बर्नार्ड लौकिक सत्ता तथा धार्मिक सत्ता के मध्य सम्बन्धों के विषय में कोई निश्चित सिद्धान्त प्रस्तुत कर रहा है।

Scanned by CamScanner

सैलिस्बरी के जॉन के विषय में बात दूसरी है। उसके शब्दों का प्रसंग उत्पीडक शासक तथा सच्चे राजा के अन्तर का विवेचन है, तथा मूलभूत सिद्धान्त जो वह प्रतिपादित करता है यह है कि राजा कानून के अनुसार शासन करता है, जबकि उत्पीडक शासक अपने को उसके ऊपर रखता है।[12] इस संदर्भ में वे लेखांश आते हैं जिन पर हम विचार कर रहे हैं, तथा इस अध्याय में तथा इससे अगले अध्याय में जॉन राजा का ईश्वर एवं चर्च के कानूनों के साथ सम्बन्धों का विवेचन करता है। वह उन शब्दों से प्रारम्भ करता है जिनको हम उद्धृत कर आए हैं, तथा नाइस की परिषद् में कॉन्सटेन्टाइन की विनम्रता का संक्षिप्त वर्णन करता है कि किस प्रकार उसने केवल अध्यक्षता करना ही स्वीकार नहीं किया परन्तु धर्मवृद्धों के साथ बैठना भी, तथा उसके निर्णयों को दैवी निर्णयों के रूप में स्वीकार किया। यद्यपि उसने परिषद् के सदस्यों को उदारता एवं शान्ति के लिए प्रेरित किया, किन्तु उसने घोषणा की कि पुरोहितों के निर्णयों के अधीन रहने वाले मनुष्य के रूप में उसके लिए उन व्यक्तियों के मामलों की, जिनका निर्णय केवल ईश्वर द्वारा ही हो सकता है परीक्षा न्यायसंगत नहीं थी। जॉन थियोडोसियस के धर्म-बहिष्कार की बात भी उद्धृत करता है, तथा 'राजचिह्नों', तथा साम्राज्य की 'राजमुद्रा' के प्रयोग से संत एम्ब्रोस द्वारा उसे निलम्बित किया गया बताता है; तथा वह निष्कर्ष निकालता है कि जो आशीर्वाद देता है वह आशीर्वाद ग्रहण करने वाले से महान् है, तथा जो पद प्रदान करता है वह पद ग्रहण करने वाले से बड़ा है, जो वैधानिक रूप से एक पद प्रदान करता है वह वैधानिक रूप से उसे छीन भी सकता है। वह कहता है कि क्या सेम्युल ने साउल (Saul) द्वारा आज्ञा-उल्लंघन के कारण उसे पदच्युत करके उसके स्थान पर जैस्से के पुत्र को सिंहासन पर नहीं बैठा दिया था ?[13]

संत विक्टर के ह्यू के एक लेखांश में हम सैलिस्बरी के जॉन के इन वाक्यों से समानता पाते हैं। संत विक्टर का ह्यू धार्मिक सत्ता द्वारा लौकिक सत्ता की स्थापना तथा उसका निर्णय करने का वर्णन करता है।[14]

यह कहना ठीक प्रतीत होगा कि सैलिस्बरी के जॉन, तथा आग्सबर्ग के होनोरियस के ग्रन्थों में हम इस धारणा का प्रथम निश्चित वक्तव्य पाते हैं कि अंततः सभी सत्ताएँ चाहे वे लौकिक हों अथवा धार्मिक, आध्यात्मिक शक्ति की हैं, जबकि संत बर्नार्ड तथा संत विक्टर के ह्यू के वाक्य, जहाँ तक उनका क्षेत्र है इसी धारणा से सम्बद्ध प्रतीत होंगे। यह कहना अनुचित नहीं होगा है कि वह हेनरी चतुर्थ से संघर्ष में ग्रेगोरी सप्तम द्वारा ग्रहण की गई यथार्थ स्थिति के सैद्धान्तिक विकास का ही प्रतिनिधित्व करता है। इस विकास तथा हैड्रियन चतुर्थ के द्वारा सम्राट् फ्रेडरिक बारबरोसा को भेजे गए पत्र में कहाँ तक सम्बन्ध हो सकता है, जिसने, जैसा कि हम देख चुके हैं, बड़ी हलचल उत्पन्न कर दी थी, कहना असंभव है। तथापि यह स्पष्ट है कि यदि हैड्रियन के शब्द किसी ऐसे सिद्धान्त को अभिव्यक्त करने के उद्देश्य से थे, तो इसका जर्मनी में न केवल तुरन्त उग्र रूप से भी खंडन ही नहीं किया था अपितु हैड्रियन चतुर्थ ने भी स्पष्ट रूप से इसको अस्वीकार कर दिया था।

तत्कालीन समस्याओं के प्रति सैलिस्बरी के जॉन के दृष्टिकोण का एक दूसरा भी पक्ष है जो ध्यान देने योग्य है। यदि वह, लौकिक सत्ता के कुप्रयोग को जिसे वह उसके अनौचित्यपूर्ण

Scanned by CamScanner

दावे कहता है, कठोरता से निन्दा करता है तो वह धार्मिक व्यवस्था के कुप्रयोग की आलोचना करने में भी कम संकोचहीन नहीं है। उसने इनके प्रमुख पक्षों को स्वयं तथा पोप हैड्रियन चतुर्थ के मध्य वार्तालाप के रूप में प्रस्तुत किया है, जो उसके अनुसार बेनेवेण्टम में घटित हुआ था। वार्तालाप के बीच हैड्रियन ने उससे पूछा कि मनुष्य, पोप तथा रोमन चर्च के बारे में क्या सोच रहे हैं। जॉन ने उत्तर दिया कि अनेक व्यक्ति शिकायत करते हैं कि रोमन चर्च, जो सभी चर्चों की जननी है, एक माता के रूप में व्यवहार न करके विमाता के रूप में व्यवहार कर रहा है। रोमन पादरी-वर्ग ने यहूदी धर्मशास्त्रियों तथा फरीसियों की भाँति मनुष्यों के कंधों पर भारी बोझ डाल दिया है, जिसको वे स्वयं अपनी अंगुली से भी नहीं छूते। वे लोभी तथा लालची थे, तथा मुक्त रूप से न्याय प्रदान करने के बजाय उसे बेचते थे। पोप स्वयं असहनीय रूप से भारपूर्ण हो गया था—जबकि चर्च और वेदियाँ खंडहर हो रहे थे वह अपने लिए प्रासादों का निर्माण करवा रहा था, तथा राजसी और स्वर्णमय वस्त्र धारण कर रहा था। ईश्वरीय न्याय चर्च के शासकों को दण्डित किए बिना नहीं रह सकता।

जब हैड्रियन ने उससे पूछा कि वह स्वयं बताए कि वह क्या सोचता है तो, उसने उत्तर दिया कि वह चाटुकारी तथा अभिद्रोहात्मक स्वेच्छाचारिकता के मध्य दुःखद स्थिति में अपने को पाता है; किन्तु उसने कार्डीनल ग्विदो देन्स के एक वक्तव्य की शरण ली, जो कि पोप यूजेनियस की उपस्थिति में दिया गया था, कि रोमन चर्च में लालच सर्वव्याप्त है, जो कि सभी बुराइयों की जड़ है। जॉन ने यह कहने की सावधानी रखी कि रोमन पादरियों में उच्चतम सत्यनिष्ठा के व्यक्ति भी हैं, तथापि उसने अपना मत बलपूर्वक स्पष्ट कर दिया कि मनुष्यों की शिकायत भी अनुचित नहीं है। उसने पोप से रोमन चर्च के पदों पर ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करने की प्रार्थना की जो कि नम्र थे, और मिथ्या-गरिमा तथा धन से घृणा करते थे। उसने यह जानना चाहा कि पोप स्वयं उन व्यक्तियों से उपहार एवं धन की माँग क्यों करता है जो उसके पुत्र थे; उसने सुझाव दिया कि वह ऐसा रोमन जनता की निष्ठा अर्जित करने के लिए करता होगा, किन्तु उसने इस पर बल दिया कि इसका कोई औचित्य नहीं, क्योंकि न्याय ऐसी वस्तु नहीं जिसे पैसों के लिए बेचा जाए।[15]

पोप हैड्रियन हँसा तथा उसके निस्संकोच कथन की प्रशंसा की, और उससे सदैव जो वह शिकायतें सुने सूचित करने का अनुरोध किया, तथा उसके कथनों का उत्तर मेनेनियस एग्रिप्पा (Menenius Agrippa's) की पेट तथा शरीर के दूसरे अंगों की कहानी द्वारा दिया, और जॉन ने अपने आपको संतुष्ट प्रदर्शित किया।[16] यह उल्लेखनीय है कि वह अंतिम विषय पर एक बाद की पुस्तक में पुनः विचार करता है, तथा रोमन चर्च की कठिनाइयों का कारण रोमन जनता के लालच को संतुष्ट करने की आवश्यकता को बताता है।[17]

दूसरे स्थानों पर वह अत्यन्त उग्रता से बिशपों तथा आर्चडीकन्स और दूसरे पदाधिकारियों की न्याय-विरुद्ध माँगों की निन्दा करता है, तथा पोप के दूतों को भी क्षमा नहीं करता, जिनके आचरण से ऐसा सोचने को बाध्य करता है कि शैतान ही ईश्वर का रूप बनाकर चर्च के उत्पीडन के लिए चला आया है।[18] यह और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि

Scanned by CamScanner

एक अन्य स्थल पर वह पुरोहितों से क्रोध न करने का अनुरोध करता है, यद्यपि वह उनमें भी अनेक क्रूर तथा निरंकुश बतलाता है। यह प्रतीत होता है कि उसका यह कथन व्यंगात्मक है कि वह रोमन चर्च के प्रतिनिधियों का उल्लेख नहीं कर रहा है, क्योंकि उनका न्याय मनुष्यों द्वारा नहीं हो सकता, तथा यह अचिन्तनीय है कि वे प्रतिनिधि वैसा कार्य करेंगे जो प्रान्तों के गवर्नरों तथा प्रोकोन्सुलों के लिए रोमन कानून द्वारा निषिद्ध है। कौन विश्वास करेगा कि चर्च के धर्माचार्य, जो दुनियाँ के न्यायाधीश तथा प्रकाश स्तम्भ हैं उपहारों से प्रेम करते हैं, जबकि वे निर्धनता का उपदेश देते हैं, तथा इस प्रकार का आचरण करते हैं जिससे वे सभी के लिए आतंक उत्पन्न करते थे तथा कोई भी उनसे प्रेम नहीं करता था।[19] यदि लौकिक उत्पीडक शासक का दैवी तथा मानवीय विधि के अधीन उच्छेद न्यायोचित है, तो कौन यह सोच सकता है कि पुरोहित वर्ग के अन्तर्गत उत्पीडक को प्रेम तथा आदर प्राप्त होगा।[20]

संदर्भ

1. Cf. John of Salisbury, 'Policraticus', vi. 24 and viii. 23.
2. Id. id., vii. 20.
3. Id. id., v. 5.
4. Cf. vol. iii. pp. 136–145.
5. Cf. vol. ii , Part I., c. 8.
6. Id. id., iv. 6.
7. Id. id., v. 2.
8. Id. id., iv. 3.
9. St. Bernard, 'De consideratione', iv. 3.
10. भाग 3 अध्याय 3।
11. देखें भाग 1 अध्याय 4।
12. देखें खण्ड 3।
13. वही 4–3।
14. Hugh of St. Victor, 'De Sacramentis', ii. Part 2, c. 4.
15. John of Salisbury, 'Policraticus', vi. 24.
16. Id. id. id.
17. Id. id., viii. 23.
18. Id. id., v. 16.
19. Id. id., viii. 17.
20. Id. id., id.

Scanned by CamScanner

तृतीय अध्याय

राइखर्सबर्ग का गेर्होह

सबसे महत्त्वपूर्ण लेखक जिसकी रचना, लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के मध्य पुनर्नवीकृत संघर्ष द्वारा उठाए गए प्रश्नों के समकालीन मूल्यांकन का निदर्शन करती है, राइखर्सबर्ग का गेर्होह है।

वह 1093 ई० अथवा 1094 ई० में उत्पन्न हुआ, तथा 1132 ई० में राइखर्सबर्ग के कॉलेजिएट चर्च का अध्यक्ष बना। वह जर्मन पादरियों के सुधारवादी दल का सबसे प्रसिद्ध साहित्यिक प्रतिनिधि था, तथा सम्पूर्ण जीवन पर्यन्त उसकी विशेष रुचि यह रही कि कैथीड्रल एवं कॉलेजियेट चर्च के सदस्य अपने नियम का पूर्णतः पालन करें। वह 'प्रतिष्ठापन' विवाद की अन्तिम अवस्था में पोप के पक्ष का कृतसंकल्प समर्थक रहा, तथा 1169 ई० में अपने देहावसान के समय तक चर्च के कार्यों में उसका सक्रिय योगदान रहा।

उसके साहित्यिक ग्रन्थ, जिनका सम्बन्ध यहाँ हमसे है, दो वर्गों में विभक्त है। प्राचीन अर्थात् फ्रेडरिक बारबरोसा तथा एलेक्जेण्डर तृतीय के संघर्ष के छिड़ने से पूर्व लिखे गए ग्रन्थ मुख्यतया उसके जैसे जर्मन पादरियों के वॉर्म्स के समझौते के प्रति दृष्टिकोण, उसका जर्मन बिशपों की स्थिति पर पड़ने वाला प्रभाव, तथा 'पदचिह्नों' को धारण करने वाले बिशपों के सामन्ती दायित्वों तथा सामन्ती अधिकार-क्षेत्र के कारण उनके लौकिकीकरण के प्रभाव के प्रति उसकी गंभीर रुचि को प्रदर्शित करने की दृष्टि से रोचक हैं। दूसरे वर्ग के ग्रन्थ संघर्ष के प्रारम्भ के बाद लिखे गए, तथा मुख्यतया उससे उत्पन्न प्रश्नों से सम्बन्धित है।

ये रचनाएँ विचित्र रूप से एक ऐसे व्यक्ति के निर्णय को प्रदर्शित करने के कारण महत्त्वपूर्ण हैं, जो यद्यपि एक दृढ़ तथा कठोर सुधारक था, केवल मात्र किसी एक पक्ष का अनुयायी नहीं था, किन्तु इसके विपरीत लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के विरोधी दावों के बीच, एक ऐसा पक्ष धारण करने को प्रयत्नशील था जिसे वह दोनों के बीच एक उचित एवं न्यायसंगत सन्तुलन समझता था। एक ऐसा व्यक्ति जो यद्यपि चर्च की स्वतन्त्रता का निश्चयी समर्थक था, किन्तु साथ ही चर्च द्वारा उसके अतिक्रमण की भी

Scanned by CamScanner

जिसे वह साम्राज्य की स्वतन्त्रता अथवा अधिकार मानता था निर्बाध निन्दा करता था। वास्तव में यह उल्लेखनीय है कि अपने अन्तिम ग्रन्थ डे क्वार्टा विजीलिया नॉक्टिस (De Quarta Vigilia Noctis) में भी जिसे उसने पोप एलेक्जेण्डर तृतीय के पक्ष के प्रति निष्ठा के कारण राइखर्सबर्ग से पलायन करने के बाद लिखा था, वह गम्भीरता-पूर्वक तथा दृढ़तापूर्वक इस सिद्धान्त पर बल देता है कि प्रत्येक सत्ता को दूसरी सत्ता के अधिकारों को मान्यता देना एवं उनका समादर करना चाहिए।[1]

गेर्होह के सिद्धान्तों के प्रथम पक्ष के सम्बन्ध में हम अत्यन्त सुविधापूर्वक ब्रेशिया के आर्नोल्ड के मत का अध्ययन कर सकते हैं। उसके सिद्धान्तों एवं कार्यों के सम्पूर्ण महत्त्व का विवेचन इस ग्रन्थ की परिधि में नहीं आता, क्योंकि उनका सम्बन्ध मध्यकालीन समाज के कई पक्षों से है। तर्कसंगत निर्णयानुसार हमें चर्च द्वारा लौकिक सम्पदा एवं सत्ता के स्वामित्व सम्बन्धी जो उसके विचार रहे प्रतीत होते हैं, उनके परीक्षण से ही हमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। उनके सम्बन्ध में भी हमें बहुत सावधान रहना चाहिए, क्योंकि उसके लेखों से, यदि वास्तव में कोई थे, कुछ भी सुरक्षित नहीं है, तथा उसके विचारों की सूचना ऐसे स्रोतों से मिलती है जो मुख्यतः उसके विरोधी हैं तथा एक-दूसरे से सदा-संगत भी नहीं हैं।[2]

उस काल के लेखक संक्षेप में उसके मत का विवरण प्रस्तुत करते हैं। फ्राईजिंग का ऑटो कहता है कि वह बिशपों का कटु आलोचक, मठवासियों का शत्रु, तथा केवल जनसाधारण की चापलूसी करने वाला था; तथा उसकी मान्यता थी कि पादरी द्वारा सम्पत्ति धारण, बिशपों द्वारा राजचिह्नों का धारण तथा मठवासियों के सम्पदा धारण का समर्थन नहीं किया जा सकता। इन सब पर राजा का स्वामित्व है, तथा उसके द्वारा केवल जनसाधारण को ही ये प्रदान की जानी चाहिए।[3] हिस्टोरिया पोन्टीफिकेलिस (Historia Pontificalis) निश्चयपूर्ण सूचना नहीं देता, किन्तु उसको यह शिक्षा देता हुआ दिखाता है कि कार्डीनलों का चर्च ईश्वर का चर्च नहीं है, तथा वह पोप का इसलिए खण्डन करता था क्योंकि पोप एवं कार्डीनल घमण्डी, पतित एवं हिंसक व्यक्ति थे।[4]

'गेस्टा डी फेडरिको' (Gesta di Federico) का लेखक कहता है कि आर्नोल्ड लगभग अपने समय के सभी व्यक्तियों पर धर्म-विक्रय के दोषी होने का आरोप लगाता था तथा उपदेश देता था कि जनता को न तो उनके सम्मुख पाप स्वीकृति करनी चाहिए न उनसे संस्कार कराने चाहिए, और वह पोप-पद की निन्दा उसकी ईर्ष्या तथा उसके न्यायालयों के भ्रष्टाचार के कारण करता था।[5] लिगूरीनस (Ligurinus) नामक कविता का लेखक सूचना देता है कि आर्नोल्ड का मत था कि पादरियों को प्रथम फल, जनता की स्वतन्त्रेच्छा के उपहार तथा दशमांश मिलना चाहिए, किन्तु यह मठवासियों द्वारा सम्पत्ति के स्वामित्व, तथा पोप द्वारा राजकीय सम्पदा के धारण की निन्दा करता था, तथा शिक्षा देता था कि सभी वर्तमान सम्पत्ति राजा के अधीन है, तथा जनसाधारण को प्रदान की जानी चाहिए।[6]

इस सबसे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि आर्नोल्ड ने लौकिक सम्पत्ति के स्वामित्व के माध्यम से पादरियों के लौकिकीकरण का विरोध किया, तथा इच्छा की कि

Scanned by CamScanner

लौकिक सत्ताधारी उसे वापस ले लें। उसकी स्थिति अभी तक वैसी ही प्रतीत होती है जैसी पैस्कल द्वितीय अथवा गेर्होह की है। तथापि, वह उनसे भी आगे बढ गया था तथा प्रतीयमानतः यह मानने लगा कि जहाँ तक चर्च इस प्रकार लौकिकीकृत था वह चर्च भी नहीं था तथा निष्ठावानों को उसकी सहभागिता से अलग हो जाना चाहिए; उसकी स्थिति ग्यारहवीं शताब्दी के कुछ उग्र सुधारवादियों से भिन्न नहीं थी, किन्तु वह चर्च की सत्ता तक ही सीमित नहीं थी।

इसीलिए गेर्होह ने उसकी निन्दा की है, तथा गेर्होह उसके सिद्धान्तों की निन्दा से सहमत है, तथापि उसने इस पर गम्भीर चिन्ता व्यक्त की कि चर्च ने अपने को उसकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी बना लिया है; स्पष्टतया उसका इस उत्तरदायित्व से बचने के इसके प्रयत्नों के प्रति पूर्ण संदेह है।[7]

नागरिक एवं स्थानीय स्वतन्त्रता के विकास के प्रसंग में, रोम नगर की जनता द्वारा पोप से स्वतन्त्र शासन की स्थापना के प्रयत्न से आर्नोल्ड के सम्बन्धों पर, हम अगली पुस्तक में विचार करेंगे; जबकि रोमवासियों के सम्राट् के निर्वाचन को नियन्त्रित करने के दावे का मध्यकालीन राजनीतिक सिद्धान्तों के इतिहास में कुछ महत्त्व नहीं है। तथापि, यह उल्लेख योग्य है, कि वेज़ल (Wezel) नामक व्यक्ति के फ्रेडरिक बारबरोसा को लिखे गए पत्र में, जिसमें ये दावे प्रस्तुत किए गए हैं, "कान्सटेन्टाइन के दान" को उसी प्रकार अवज्ञापूर्वक एक धोखा बताया है,[8] जैसे कि 1001 ई० में ऑटो तृतीय ने उसके बारे में कहा था।[9]

गेर्होह के प्रारम्भिक ग्रन्थ, जैसा हम अभी कह आए हैं, सर्वप्रथम वॉर्म्स के समझौते तथा चर्च पर उसके प्रभाव के प्रति उसके दृष्टिकोण को प्रदर्शित करने के कारण तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, किन्तु यदि सम्राट् "प्रतिष्ठापन" के अधिकार को त्याग दे तो बिशपों द्वारा "राजचिह्नों" (Regalia) को समर्पित करने के पैस्कल द्वितीय के प्रस्ताव द्वारा उठाए गए प्रश्नों के सम्बन्ध के कारण भी वे रोचक हैं। प्रथम ग्रन्थ में जिससे हमारा सम्बन्ध है, तथा जो 1126 ई० से लेकर 1132 ई० के बीच लिखा गया था, वह उन परिस्थितियों के प्रति जिनके अन्तर्गत राजचिह्न प्रदान एवं धारण किए जाते थे गहरी चिन्ता व्यक्त करता है। उसे इस पर गम्भीर विक्षोभ होता है कि बिशप, मठ के अध्यक्ष, तथा अध्यक्षाएँ निर्वाचन के पश्चात् "राजचिह्नों" को प्राप्त करने के लिए राजसभा में उपस्थित होते हैं, तथा उसके लिए श्रद्धांजलि तथा स्वामिभक्ति प्रदान करते हैं।[10] वह इसी शिकायत को दूसरे ग्रन्थ में दोहराता है, जो कि 1142–43 ई० में लिखा गया है। वास्तव में, वह स्वीकार करता है, कि पोप की एक आज्ञा के अनुसार बिशपों को राजा के प्रति "न्याय" (Iustitia) प्रदान करना चाहिए, किन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं था कि उनको श्रद्धांजलि भेंट करनी चाहिए अथवा निष्ठा की शपथ लेनी चाहिए।[11] प्रश्न का महत्त्व केवल समादर प्रदान करने तक ही सीमित नहीं है, यह स्पष्ट है कि गेर्होह को जो बात सबसे अधिक चिन्तित करती है वह बिशपों द्वारा राजचिह्नों के स्वामित्व से जुड़े हुए उनके कर्तव्यों का स्वरूप था, विशेषतया सामन्ती सैनिक-सेवा प्रदान करना, तथा वह पहले उद्धृत ग्रन्थ में, क्रोधपूर्वक प्रतिपादन करता है कि बिशपों द्वारा चर्च के धन का सैनिकों को

Scanned by CamScanner

बनाए रखने के लिए प्रयोग पूर्णतया अवैधानिक था।[12] इसके कारण वह चर्च की सम्पत्ति के स्वरूप तथा उसके वांछित उपयोग के बारे में विवेचन करने को प्रवृत्त होता है : उसका एक अंश पादरियों के योगक्षेम के लिए, दूसरा चर्च के निर्माण एवं मरम्मत के लिए, तीसरा विधवाओं तथा आवश्यकता वाले व्यक्तियों की मदद के लिए, चौथा स्वयं पादरी एवं उसके कुटुम्ब के भरण-पोषण के लिए, तथा अतिथियों एवं पथिकों के लिए जिनके लिए उसके द्वार हमेशा खुले रहने चाहिए।[13] वह चर्च की सम्पदा के तीन भाग करता है—दशमांश, रियासतें तथा राज एवं सार्वजनिक कार्यों के लिए (Regales aut publicas functions)। उसका स्पष्ट मत है कि देवद्रोह तथा अन्याय के बिना पहली दो प्रकार की सम्पत्तियों को चर्च से अधिग्रहण नहीं किया जा सकता, किन्तु तीसरी के बारे में वह कहता है कि चर्च इस सम्पत्ति को बनाए रखने को अधिक उत्सुक नहीं है, अतः चर्च के लौकिक कार्यों में फँसने की अपेक्षा श्रेष्ठतर हो कि चर्च इस सम्पत्ति से मुक्त हो जाए।[14]

यह एक महत्त्वपूर्ण धारणा है जो सम्भवतः उन उद्देश्यों पर कुछ प्रकाश डाल सके जो कि पैस्कल द्वितीय के राजचिह्नों को समर्पित करने के प्रस्ताव की पृष्ठभूमि में थे। गेर्होह स्पष्टतः सम्पत्ति के उन दो स्वरूपों में स्पष्ट विभेद करता है जो न्यायपूर्वक चर्च की अविभाज्य सम्पत्ति है, तथा वे जिनका अधिकाधिक केवल संदिग्ध लाभ चर्च को हो सकता है तथा जो उसे उसके उचित कर्तव्यों के बाहर फंसाये तथा जिन्हें वह त्याग सकता है। वास्तव में वह हठधर्मितापूर्वक यह नहीं कहता कि उनको छोड़ देना चाहिए, तथापि उसकी स्थिति इसके बहुत निकट है। ये ड्यूकों की रियासतें, काउन्टों की जागीर इत्यादि ऐहिक वस्तुएँ हैं, जबकि दशमांश तथा स्वतंत्रेच्छा से प्रदत्त उपहारों पर ईश्वर का अधिकार है; तथा यद्यपि वह उन व्यक्तियों को नाराज नहीं करना चाहता जिनका यह मत है कि एक बार चर्च को दे देने के बाद उनको वापस लेना धर्मद्रोह है, वह इसकी पुष्टि करता है कि बिशप द्वारा राजकीय एवं सैनिक कर्तव्यों का पालन अपने वर्ग से किसी सीमा तक धर्मच्युति बिना नहीं हो सकता।[15]

इस लेख में प्रदर्शित दृष्टिकोण रोचक एवं महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इससे यह प्रदर्शित होता है कि कुछ लोगों की यह भावना थी कि यदि पैस्कल द्वितीय के प्रस्ताव स्वीकार कर लिए जाते तो अच्छा होता। गेर्होह कई वर्षों तक इस विषय में गम्भीरतया चिन्तित रहा, यद्यपि यह दृष्टिगोचर होगा कि उसका निर्णय इस विषय में समय-समय पर बदलता रहा।

1142–43 ई० में लिखा गया ग्रन्थ, जिसको हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं, बहुत अधिक मात्रा में इसी विषय का विवेचन करता है। वह इस कथन से प्रारम्भ करता है कि राजाओं और बिशपों दोनों के शत्रुओं के रूप में उसका विरोध किया गया है, क्योंकि उसने यह माना है कि जो ईश्वर का है मनुष्यों को उसे ईश्वर को दे देना चाहिए, तथा जो सीजर का है वह सीजर को, क्योंकि दोनों में से कोई भी अपनी सीमा में रहने से सन्तुष्ट नहीं है; किन्तु राजा बिशपों के अधिकारों को हड़प गए हैं, तथा बिशपों ने राजाओं के 'राजचिह्नों' को हड़प लिया है।[16] वह स्पष्ट भाषा में उन बिशपों की निन्दा करता है जो आक्रमणों को संचालित करते हैं तथा चर्च के धन को सैनिक कार्यवाही में

Scanned by CamScanner

खर्च करते हैं; तथा उसका यह निश्चित मत है कि जब बिशप राजा को श्रद्धांजलि देते हैं, तथा निष्ठा की शपथ लेते हैं तो चर्च सांसारिक कर्मों में रत हो ही जाएगा।[17] तथापि, यह प्रतीत होगा कि वह उस समय यह मानने को तैयार नहीं था कि 'राजचिह्नों' को समर्पित कर देना चाहिए, किन्तु यह मानता था कि उनका प्रशासन बिशपों द्वारा बुद्धिमत्तापूर्वक किया जाना चाहिए।[18] वह पैस्कल द्वितीय तथा हेनरी पंचम के बीच संधि-वार्ता का विवरण देता है, तथा सूचना देता है कि पैस्कल 'राजचिह्नों' को सौंपने का प्रस्ताव करने को राजी कर लिया गया था, किन्तु इसके लिए वह अपनी सहमति व्यक्त नहीं करता, तथा उसकी भी सूचना देता है जिसे वह इस प्रस्ताव का प्रत्याक्षर समझता है।[19]

वह वॉर्म्स के समझौते के उपबन्धों तथा अपने युग की परिस्थितियों के बारे में भी एक महत्त्वपूर्ण वक्तव्य अपने ग्रन्थ में देता है। वह कहता है कि समझौते के इन उपबन्धों की सूचना कि जर्मनी के बिशपों का चुनाव सम्राट् की उपस्थिति में हो, तथा वे दण्ड एवं मुद्रा द्वारा राजचिह्नों को प्राप्त करें, लेटरन की परिषद् में क्रोध एवं संदेहपूर्वक ग्रहण की गई थी, तथा वह इस बात पर प्रसन्नता व्यक्त करता है कि पहली शर्त का प्रयोग नहीं हो रहा है, और आशा व्यक्त करता है कि श्रद्धांजलि तथा निष्ठा की प्रथा भी समाप्त हो जाएगी।[20] निष्कर्ष रूप में यह ग्रन्थ वॉर्म्स के समझौते की उस व्याख्या का खण्डन करता है, कि वह बिशपों पर श्रद्धांजलि तथा निष्ठा की शपथ का दायित्व डालता है, जिसको हम पहले ही उद्धृत कर चुके हैं।[21]

दूसरे ग्रन्थ में जिसका शीर्षक "डे नावीटेटीबस ह्यूइस टेम्पोरिस" ('De Novitatibus huis Temporis') है तथा जो 1155–56 ई० में लिखा गया था, वह अपने मूल विचार से और आगे बढ़ गया प्रतीत होता है। वह कहता है कि इस पर विवाद है कि क्या चर्च से 'राजचिह्नों' को ले लेना चाहिए, तब वह यह प्रतिपादित करता प्रतीत होता है कि यह नहीं करना चाहिए। वह स्वीकार करता है कि इस धारिता में कुछ कर्तव्य भी निहित हैं जिनका पालन बिशप को करना चाहिए, अतः यह वैधानिक था कि बिशप राजा के प्रति-निष्ठा की शपथ लें 'Salvo Sui or dinis of ficio', तथा यदि बिशप इस शपथ को भंग करे तो वह अपने आध्यात्मिक न्यायाधीश द्वारा तथा उस सत्ता द्वारा जिससे वह 'राजचिह्नों' से मूलित होता है, धार्मिक तथा लौकिक दोनों गरिमाओं से वंचित किया जा सकता है। उसी ग्रन्थ के दूसरे लेखांश से यह स्पष्ट है कि वह उस समय इन कर्तव्यों में सामन्तों की सैनिक सेवा भी सम्मिलित मानता था, जिनको कि बिशपों द्वारा वह भूमि जो उन्हें 'राजचिह्नों' के रूप में प्राप्त हुई थी, जागीर में दी गई थी। वह केवल यह चाहता है कि उनको नई अधीनताएँ नहीं बनानी चाहिए, तथा दशमांशों एवं स्वतंत्रेच्छा उपहारों का ऐसा उपयोग नहीं करना चाहिए।[22]

गेर्होह के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन जो इन दो प्रबन्धों से विदित होता है स्पष्ट है, किन्तु उसके आगामी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की परीक्षा से यह स्पष्ट हो जाएगा कि उसका चित्त अभी भी इस सारे मामले से बहुत क्षुब्ध था। "डी इन्वेस्टीगेशन एन्टी क्रिस्टी" ('De Investigatione Antichristi') नामक ग्रन्थ में जो कि 1161–62 ई० में लिखा गया था, वह, यदि सम्राट् 'प्रतिष्ठापन' का अधिकार त्याग दे तो 'राज-सम्पदा' के समर्पण के

Scanned by CamScanner

बारे में हेनरी पंचम तथा पैस्कल द्वितीय के मध्य समझौता वार्ता का दूसरा विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है।[23] वह इस प्रस्ताव को हेनरी पंचम की ओर से परन्तु असद्भाव से प्रस्तुत किया गया प्रदर्शित करता है, क्योंकि वह जानता था कि जर्मन एवं गेलीकन बिशप उससे सहमत नहीं होंगे।[24] पैस्कल ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, किन्तु बिशपों ने इसका तुरन्त क्रोधपूर्वक खण्डन कर दिया। यह बहुत उल्लेख योग्य है कि गेर्होह बाद की घटनाओं का विवरण देने में हेनरी का उद्देश्य पैस्कल को पकड़ने में या तो 'प्रतिष्ठापन' के राजकीय अधिकार को स्वीकार करने या 'राजचिह्नों' का त्याग करने के लिए उसे विवश करता बताता है, तथा वह पैस्कल द्वारा दूसरी बात को स्वीकार करना प्रदर्शित करता है।[25] वह पैस्कल द्वितीय की मृत्यु के बाद भी हेनरी को वही स्थिति बनाए रखते हुए—अर्थात् यह मानते हुए कि या तो चर्च 'राजचिह्नों' को त्याग दे या सम्राट् को बिशपों की नियुक्ति का अधिकार बना रहे प्रदर्शित करता है।[26]

गेर्होह दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत किए गए या प्रस्तुत किए जा सकने वाले तर्कों का एक रोचक सारांश प्रस्तुत करता है। चर्चवादी दल का यह तर्क था कि यह उचित एवं न्यायसंगत था कि चर्च 'राजचिह्नों' द्वारा प्रदान किए जाने वाले धन एवं गरिमा का उपभोग करें, राजकीय पक्ष मानता था कि दशमांश एवं स्वतंत्रेच्छा आहुति पर चर्च का न्यायोचित अधिकार था, तथा उनमें सम्राट् की सेवा का कोई दायित्व निहित नहीं था, किन्तु उनकी मान्यता थी कि 'राजचिह्नों' का प्रश्न इससे भिन्न था। यदि चर्च इनको रखना चाहता है, तो बिशपों को सम्राट् की सेवा तथा नज़राना प्रदान करना होगा, तथा यदि पादरी के लिए लौकिक और सैनिक मामलों में योगदान करना वैधानिक नहीं, तो उन्हें उन 'राजचिह्नों' को छोड़ देना चाहिए जिनके साथ ये दायित्व जुड़े हुए हैं। यदि बिशप यह कहें कि वे सम्राट् की ये सेवाएँ करने, तथा धार्मिक कर्तव्यों का भी पालन करने में भी समर्थ हैं, तो राजकीय पक्षधरों का कहना था कि फिर यह उचित था कि सम्राट् को उनकी नियुक्ति का प्रथम अधिकार प्राप्त हो, क्योंकि यह न्यायोचित नहीं था कि किसी को भी दूसरे सामन्तों की राय से सम्राट् के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा राजपद प्रदान किया जाए।[27] सम्राट् चर्च को स्वतंत्र निर्वाचन का अधिकार न देने को भी कृत-निश्चय थे तथा, बिशप भी 'राजचिह्नों' को न सौंपने के लिए उतने ही कृतनिश्चय थे किन्तु सम्राट् के प्रति परम्परागत सेवा भी करने को तैयार थे।[28]

गेर्होह कहता है कि उसके अधिकार में न तो बिशपों के कार्यों का निर्णय करना, और न यह निर्धारित करना था कि राजा के प्रति निष्ठा की शपथ एवं नज़राने ने बिशपों का दायित्व उन लौकिक मामलों में कहाँ तक बढ़ा दिया था जिसकी कि संत पाल ने निन्दा की है, वह कहता है कि वास्तव में इस प्रकार प्रतिबन्धित होने पर भी वे प्रार्थना एवं अध्ययन के लिए कुछ समय निकाल सकते हैं, और इस प्रकार अपने दायित्वों के बावजूद लगभग स्वतंत्र रह सकते हैं। ईश्वर ही यह निर्णय करेगा कि 'राजचिह्नों' का स्वामित्व चर्च का कहाँ तक साधक अथवा बाधक है। अंततः ईश्वर ही अपने चर्च को वह स्वतंत्रता प्रदान करे जो उसके योग्य है।[29]

कुछ आगे बढ़कर गेर्होह उसी ग्रन्थ में इसी विषय का पुनः निरूपण किसी सीमा तक

Scanned by CamScanner

भिन्न शब्दों में करता है। उसने स्पष्टतः अनुभव किया, कि 'राजचिह्नों' के स्वामित्व में लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के कर्तव्यों के मध्य भ्रांति की बहुत अधिक संभावना थी, तथा वह बलपूर्वक उन दोनों के अन्तर का प्रतिपादन दो तलवारों की शब्दावली द्वारा करता है। स्वयं ईसा ने धर्म-ग्रन्थ में इन दो सत्ताओं में विभेद किया है; जब उसके शिष्यों के इस कथन के उत्तर में कि "देखो ये दो तलवारें है" उसने कहा कि "यही पर्याप्त है।" किन्तु गेर्होह कहता है कि अब एक ऐसी तीसरी शक्ति हमारे बीच है जो दोनों का सम्मिश्रण है; वह इस तथ्य का एक प्रभावशाली उदाहरण इसमें पाता है कि कभी-कभी बिशप के सम्मुख केवल क्रास ही धारण नहीं किया जाता, जो चर्च के पद एवं ईसाई विनम्रता का प्रतीक था, किन्तु ड्यूक का 'राजचिह्न' भी जो उसे राजा द्वारा अपराधियों को दण्ड देने के लिए अधिकार के प्रतीक रूप में उसे प्रदान किया गया है। गेर्होह को यह विकृत एवं अविवेक-पूर्ण प्रतीत होता है, वास्तव में यहूदी पुरोहितों को लौकिक तलवार प्रयोग करने की अनुमति थी, ईसाई पुरोहितों को नहीं।[30] वह कहता है कि यदि यह प्रतिपादित किया जाए कि राजाओं ने अपनी धार्मिक उदारता के कारण बिशपों को ड्यूक के तथा अन्य पदों के अधिकार-क्षेत्र की आय प्रदान की है, तथा उनमें निहित न्याय की व्यवस्था का अधिकार भी प्रदान किया है, अतः यह उचित ही है कि इस अधिकार के प्रतीक बिशप के आगे ले जाए जाएँ तो, वह उत्तर देगा कि, यद्यपि वह इस उदारता के लिए राजाओं की प्रशंसा करता है, तथापि उसके मत में यह अधिक अच्छा होता यदि वे न्याय प्रदान करने की सत्ता अपने पास ही रखे रहते, तथा आय को बिशपों को प्रदान कर देते।[31] रोम में उसके अनुसार जो बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवस्था थी उसका वैपरीत्य वह फ्रैंक्स की निन्दनीय परम्परा से प्रदर्शित करता है। वह कहता है कि रोम में नगर का प्रधान पोप से दीवानी मामलों के निर्णय का अधिकार प्राप्त करता था, किन्तु फौजदारी अधिकार-क्षेत्र की प्राप्ति सम्राट् से होती थी, जबकि इन साम्राज्यों में बिशप अपने प्रतिनिधि (Vicarias potestates) नियुक्त करते थे, जो दीवानी व फौजदारी दोनों प्रकार के मामलों का न्याय करते थे, और इस प्रकार अपने को रक्तपात के लिए उत्तरदायी बनाते थे, जो पादरी के लिए वर्जित था।[32] कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो यह तर्क देते थे कि अन्ततोगत्वा यह भी वैसी ही बात थी जैसी कि पुरोहितों द्वारा राजाओं की नियुक्ति, किन्तु वह इस मान्यता का खण्डन बलपूर्वक उन शब्दों में करता है जो बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वह कहता है कि बिशप न तो सम्राटों का निर्माण करते हैं न उनकी नियुक्ति, किन्तु वे उनको केवल आशीर्वाद देते हैं, तथा ऐसे व्यक्तियों के सिर पर राजमुकुट रखते हैं जो या तो सामन्तों एवं जनता के निर्वाचन से, अथवा वंश-परम्परा के उत्तराधिकार से उसके पात्र बने हैं। राजा पुरोहितों के आशीर्वाद से नहीं बनते किन्तु दिव्य नियमों के अनुसार, मानवीय निर्वाचन एवं सहमति से बनते हैं।[33]

गेर्होह उस सिद्धान्त का खण्डन करता है जिसे वह ब्रेशिया के आर्नोल्ड का सिद्धान्त बताता है, कि चर्च जिसने लौकिक मामलों में अपने को लिप्त कर लिया है अब ईश्वर का चर्च नहीं रहा है। तथापि वह रोमन चर्च द्वारा आर्नोल्ड के वध में योगदान पर गहरी चिन्ता व्यक्त करता है, तथा उसकी कठोर निन्दा करता है। वह विषय के विवाद का उपसंहार यह कहकर करता है कि वह चर्च के अधिकारियों द्वारा 'राजचिह्नों' के धारण का

Scanned by CamScanner

विरोधी नहीं है, यदि वे विनम्रता से एवं वैधानिक रूप से उनका प्रयोग करें, किन्तु जब पादरी या बिशप अपने कर्तव्यों को त्याग दें, तथा अपने को लौकिक मामलों में व्यस्त बना दें, जब वे लौकिक तलवार का प्रयोग उनके विरुद्ध करें जिनको कि वे अपने शत्रु समझते हैं, श्रद्धालुओं द्वारा प्रदत्त दशमांश तथा आहुतियों के धन का प्रयोग अश्वों और रथों से अपने को सुसज्जित करने के लिए करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक स्थानों में विध्वंस के घृणित कार्य को प्रतिष्ठित कर रहे हैं, क्योंकि ऐसे कार्य ईसा के अनुरूप न होकर ईसा विरोधियों के अनुरूप हैं।[34]

हम बिशपों द्वारा 'राजचिह्नों' के स्वामित्व के विषय में गेर्होह के दृष्टिकोण पर विस्तारपूर्वक विचार कर चुके हैं, क्योंकि यह पैस्कल द्वारा उन्हें त्यागने के महत्व पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। यह स्पष्ट है कि सुधारवादी दल के प्रसिद्ध सदस्यों में कम से कम कुछ तो ऐसे थे जो यह अनुभव करते थे कि इनकी धृति चर्च को बड़ी कठिनाई में डाल देती है, तथा उसको लौकिकीकरण की ओर प्रेरित करती है, तथा बिशपों एवं पादरियों के उचित कर्तव्यों से विमुख करती है। स्पष्टतः गेर्होह इससे अत्यधिक विक्षुब्ध एवं व्याकुल था। अपने प्रारम्भिक दिनों में वह यह स्पष्टतः मानने को प्रस्तुत प्रतीत होता है कि 'राजचिह्नों' का त्याग लाभपूर्वक किया जा सकता है, किन्तु बाद की रचनाओं में उसका यह समग्र रूप से विचार प्रतीत होता है कि उनको बनाए रखना चाहिए, किन्तु वह उनसे आने वाले खतरों, चर्च के लौकिकीकरण के खतरे तथा जैसा हम देख चुके हैं, क्रमशः लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के उचित कर्तव्यों में अव्यवस्था के खतरे का प्रबल अनुभव करता था। वह 'प्रतिष्ठापन' विवाद में पोप की मान्यता का तथा धार्मिक सत्ता की स्वतंत्रता का निश्चयी तथा उत्साही समर्थक था किन्तु वह दोनों सत्ताओं के मूलभूत अन्तर से अभिज्ञ था; हम देख चुके हैं कि वह 'दोनों तलवारें' में कितना स्पष्ट विभेद करता है।

इस प्रकार हम उस बिन्दु पर आ जाते हैं जहाँ गेर्होह की मान्यता के दूसरे महत्वपूर्ण पक्ष को स्वाभाविक संक्रमण उपलब्ध होता है, जिसका सम्बन्ध लौकिक तथा धार्मिक सत्ता के पारस्परिक सम्बन्धों से है। इस विषय में उसकी धारणाएँ मुख्यतः पोप एलेक्जेण्डर तृतीय के निर्वाचन से प्रारम्भ होने वाले फ्रेडरिक बारबरोसा तथा पोप-पद के बीच हिंसक संघर्ष के संदर्भ में विकसित हुई थीं। किन्तु उनका वर्णन करने से पूर्व गेर्होह के एक प्रारम्भिक ग्रन्थ में वर्णित कुछ मान्यताओं का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे। चौंसठवें साम (Psalm Lxiv) पर अपनी टीका में, जिसका काल 1151 ई० माना जाता है, वह इसकी पुष्टि करता है कि पोपों ने कई राजाओं और सामन्तों को उनकी अयोग्यता एवं क्रूरता के कारण पदच्युत एवं धर्म-बहिष्कृत भी किया है, तथा उनके स्थानों पर दूसरों को प्रतिष्ठित किया है, ताकि वे तलवार से उन पर आक्रमण कर सकें जो चर्च एवं साम्राज्य के शत्रु हैं, किन्तु वह चर्च के अधिकारियों को चेतावनी देता है कि वे सावधान रहें ताकि वे अपने शत्रुओं की मृत्यु के लिए अपने को उत्तरदायी न बना लें।[35] वह उन बिशपों की निन्दा करता है जो अपने व्यक्तित्व, चर्च के पद, तथा काउन्ट के पद की गरिमा में विभेद नहीं करते थे, तथा युद्ध करके निर्दोष व्यक्तियों की भी हत्या कराते थे, तथा वह अपनी यह उत्कट अभिलाषा व्यक्त करता है कि धार्मिक कार्य धार्मिक व्यक्तियों द्वारा किए जाएँ, तथा

Scanned by CamScanner

लौकिक कार्य लौकिक व्यक्तियों द्वारा, तथा दोनों सत्ताओं की उचित सीमा बनाए रखी जाए।[36] गेर्होह स्पष्टतः चर्च के शत्रु राजाओं तथा सामन्तों के धर्म-बहिष्कार एवं पदच्युति की निन्दा नहीं करना चाहता है; कुछ आगे जाकर वह स्पष्टतया कहता है कि उसके मत में यह औचित्यपूर्ण एवं न्यायोचित था।[37] वह एक अन्य सिद्धान्त का सुझाव देता है जिसका इन्नोसेन्ट तृतीय के दावों में महत्त्वपूर्ण विकास हुआ, कि विभिन्न देशों के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में हस्तक्षेप किया जाए, जिस पर हम अगले खण्ड में विचार करेंगे। वह सुझाव देता है कि यह उचित है कि किसी देश के आन्तरिक झगड़ों में, एवं देशों के पारस्परिक विग्रह की दशा में, चर्च यह घोषित करे कि कौनसा पक्ष न्यायपूर्ण है, तथा उस पक्ष के समर्थकों की अपने प्रतिनिधियों द्वारा सहायता करे, तथा वह इस तथ्य का अनुमोदन करते हुए वर्णन करता है कि जबकि कुछ समय पूर्व हंगरी के राजा ने यूनानियों से युद्ध करने का विचार किया, तो उसने पहले बिशपों की एक परिषद् बुलाई, तथा जब उन्होंने घोषणा की कि हंगरी के द्वारा ही शांति-संधि को तोड़ा गया है, तो वह अपनी परियोजना से विरत हो गया। वह प्रतिपादन करता है कि यदि चर्च के बिशप विवादपूर्ण मामलों के जिनसे युद्ध की सम्भावना हो, न्यायपूर्ण या अन्यायपूर्ण होने का निर्णय दें, तथा विशेषतया यदि उनके निर्णय की पुष्टि पोप कर दे तो कोई भी राजा उनका प्रतिरोध नहीं कर सकेगा क्योंकि पोप राज्यों के ऊपर स्थापित किया गया है, तथा उसे उनको बनाने का व मिटाने का अधिकार है।[38]

यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि उस समय गेर्होह उन सामान्य सिद्धान्तों को मानता था जो कि हम अधार्मिक शासकों को पदच्युत एवं धर्म-बहिष्कृत करने के पोप के अधिकार के विषय में हिल्डेब्राण्ड का मत कह सकते हैं। यद्यपि वह प्रत्यक्षतया हिल्डेब्राण्ड या हेनरी पंचम का नाम नहीं लेता, किन्तु उनकी ओर संकेत बहुत स्पष्ट प्रतीत होता है, और निश्चित ही ऐसे मामले में कार्य करने के पोप के अधिकार के सिद्धान्त की पुष्टि स्पष्ट है। तथापि हमें यह ध्यान देने की सावधानी रखनी चाहिए कि गेर्होह इसे दोनों सत्ताओं के कर्तव्यों में अन्तर के अपने सिद्धान्त का खण्डन नहीं मानता। कुछ आगे चलकर उसी ग्रन्थ में वह इस बात पर बल देता है कि पादरियों को अपने को दण्ड-न्याय से पृथक् रखकर अपना कार्य लौकिक अधिकारियों को यह शिक्षा देना मात्र मानना चाहिए कि क्या ठीक है तथा न्यायोचित है, तथा वह अपने मत का सार पोप निकोलस प्रथम के सम्राट् माइकेल को लिखे पत्र में से पोप जिलेसियस के इन शब्दों के उद्धरण से प्रस्तुत करता है, जिनमें कहा गया है कि ईसा द्वारा दोनों सत्ताओं को अलग करके उन्हें अलग-अलग कार्य प्रदान किए गए।[39] तथापि गेर्होह के मत को पूर्णतया समझने के लिए हम नए संघर्ष छिड़ने के बाद लिखे गए प्रबन्धों पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

उसका "डी इनवेस्टीगेशन एन्टी क्रिस्टी" (De Investigatione Antichristi) नामक ग्रन्थ जिससे हम बहुत से उद्धरण पहले ही दे चुके हैं, जैसा हमने बताया था, 1161–62 ई० में पोप के विवादास्पद निर्वाचन के लगभग दो वर्ष बाद लिखा गया था, तथा गेर्होह सुझाव देता है कि यह विपत्ति चर्च पर ईश्वर के दण्ड का एक भाग थी। दूसरे धर्मद्रोहों की दशा में यह निर्णय करना सुगम था, कि कैथोलिक चर्च कौनसा है, किन्तु

इस मामले में बुद्धिमान एवं सत्य के सच्चे प्रेमियों के अतिरिक्त किसी दूसरे के लिए किसी निश्चय पर पहुँचना सुगम नहीं है।[40] वह वास्तविक निर्वाचन का विस्तृत विवरण देता है, तथा निष्कर्ष निकालता है कि यह अबतक स्पष्ट है कि एलेक्जेण्डर का पक्ष अधिक ठीक था,[41] किन्तु वह वर्णन करता है कि किस प्रकार एलेक्जेण्डर के विरोधियों ने उस पर आरोप लगाए जिनका हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं—अर्थात्, एलेक्जेण्डर तथा उसके पक्ष के कार्डीनलों ने हैड्रियन चतुर्थ के जीवित रहते ही सम्राट् के विरुद्ध सिसली तथा मिलेनीज के राजा से मिलकर षडयंत्र किया था, तथा शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की थी कि वे किसी भी ऐसे व्यक्ति को पोप नहीं चुनेंगे जो षडयंत्र का सदस्य नहीं था, तथा सिसली व मिलन के लोगों द्वारा इसकी प्रतिज्ञा करने के लिए उनको रिश्वत दी गई थी कि वे फ्रैडरिक को धर्म-बहिष्कृत कर देंगे, तथा उनकी राय के बिना उसे दोष मुक्त नहीं करेंगे।[42] वह वर्णन करता है कि उसमें विक्टर तथा एलेक्जेण्डर के आचरणों में अन्तर भी बताया गया है, जबकि विक्टर ने पाविया में उपस्थित होकर अपना दावा परिषद् के सम्मुख प्रस्तुत किया था, एलेक्जेण्डर ने गर्वपूर्वक वैसा करने से अस्वीकार कर दिया था।[43]

ऐसा प्रतीत होता है कि गेर्होह इन कारणों से बहुत विचलित हो गया, तथा उसे यह आभास हुआ कि चर्च का निर्णय इस विषय में इतना विभाजित है कि किसी भी निर्णय पर पहुँचना उसे कठिन प्रतीत हुआ। एलेक्जेण्डर के समर्थक यह प्रतिपादन करते थे कि एन्टीयोक (Antioch) तथा यरूशलम के धर्म-पीठ उसे स्वीकार करते हैं। किन्तु विक्टर के समर्थकों के अनुसार दूसरे चर्चों के निर्णय का विचार करना भी आवश्यक था, क्योंकि विशेषतः पूर्वीय चर्चों की जानकारी बहुत कम थी।[44] गेर्होह एलेक्जेण्डर द्वारा पाविया की परिषद् के सम्मुख अपनी स्थिति की निर्दोषिता सिद्ध न करने के कार्य से परेशान हो गया था। वह प्रतिपादन करता है कि ईसा ने शिष्यों द्वारा अपने पुनर्जीवित होने पर संदेह करने पर स्वयं स्वर्ग से उतर कर दर्शन दिए थे, तथा संत पीटर ने संत पाल की झिड़की के सामने आत्मसमर्पण कर दिया था।[45] वह विक्टर के पक्ष में निर्णय करने ही वाला था कि उसे तूलूज (Toulouse) में एक परिषद् के होने का समाचार मिला जिसमें एक सौ बिशप, फ्रांस, इंग्लैण्ड तथा स्पेन के राजा, विक्टर के दूत, एलेक्जेण्डर, तथा सम्राट उपस्थित थे, तथा परिषद् ने एलेक्जेण्डर के पक्ष में निर्णय दिया तथा विक्टर को धर्म-बहिष्कृत कर दिया।[46] तथापि वह इससे विश्वस्त नहीं हुआ, क्योंकि परिषद् ने षडयंत्र के आरोप पर विचार नहीं किया था, तथा वह अनुभव करता था कि यह सर्वाधिक गम्भीर प्रश्न है, तथा आरोप की सत्यता या असत्यता का निर्धारण केवल सामान्य परिषद् में ही हो सकता है।[47]

गेर्होह के मन में मुख्यतः दो प्रश्न थे, क्या षड्यंत्र का आरोप सत्य है, तथा क्या सामान्य परिषद् के सम्मुख उस पर लगाए गए आरोपों को प्रस्तुत करने में अस्वीकार करना एलेक्जेन्डर तृतीय के लिए उचित था। वह सम्राट् के विरुद्ध यदि यह आरोप सत्य हो,[48] षडयंत्र की निन्दा करने में संकोचरहित है, तथा सामान्य परिषद् के निर्णय के अतिरिक्त उसे इस कठिनाई से उबरने का कोई भी मार्ग नहीं दिखाई देता।[49] वह विस्तार-पूर्वक इस प्रश्न की परीक्षा करता है कि किस प्रकार एवं किन शब्दों में पोप अपने ऊपर लगाए गए आरोपों से अपने को मुक्त कर सकता है। वह कहता है कि संत पाल ने यरूशलम

Scanned by CamScanner

में प्रेरितों से विचार-विनिमय किया था ताकि उनके सिद्धान्तों से किसी भी प्रकार से भिन्न होने के कारण वह लोक निन्दा को जन्म न दे, तथा वह वर्णन करता है कि किस प्रकार पोप मार्सेलस (Marcellus) ने, जिसने मूर्त्तियों के प्रति चढ़ावा अर्पित किया था, धर्माचार्यों के यह स्वीकार करने पर कि उसका निर्णय कोई भी नहीं कर सकता, तथा क्योंकि वह अपने को चर्च के सम्मुख दोषमुक्त नहीं कर सका था, उसने स्वयं अपने को धर्म-बहिष्कार तथा पदच्युति का दण्ड दिया था, तथा किस प्रकार पोप लियो तृतीय ने सार्वजनिक रूप से, शार्लेमान तथा जनता की उपस्थिति में अपने ऊपर लगाए गए आरोपों से अपने को मुक्त किया था।[50] वास्तव में गेर्होह इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है कि कोई भी पोप का न्याय नहीं कर सकता,[51] तथापि वह इसे स्वीकार नहीं करता कि यह सिद्धान्त विवादास्पद-निर्वाचन की दशा में प्रयोग किया जा सकता है। उस मामले में उसका विचार है कि दावेदारों को अपने को अपने भाइयों (निर्वाचक-बिशपों) के सामने प्रस्तुत करना चाहिए तथा अपना दावा प्रस्तुत करना चाहिए ताकि ईश्वर का चर्च दोषों का प्रतिरोध एवं अच्छाइयों को स्वीकार कर सके।[52] वह विक्टर तथा उसके समर्थक को कार्डिनलों के साक्ष्य के आधार पर जो स्वयं उसमें भागीदार थे, उस षडयंत्र के प्रति अपनी आशंका की पुनः पुष्टि करता है, जो सम्राट् के विरुद्ध किया गया था, तथा माँग करता है कि जिन पर यह आरोप लगाया गया है वे अपने को उससे दोषमुक्त करें तथा साम्राज्य के शत्रुओं से सम्बन्ध तोड़ लें, विशेषतः इसलिए कि सम्राट् उनके द्वारा सभी शिकायत किए गए मामलों में न्याय करने को तैयार है।[53] गेर्होह ने जिस प्रकार प्रारम्भ किया था, उसी प्रकार वह यह कहकर अध्याय का उपसंहार करता है कि इन कठिनाइयों का एक मात्र हल सामान्य परिषद् को बुलाने में है, जो दो दावेदारों के बीच निर्णय कर सके, तथा धार्मिक एवं राजकीय सत्ता के बीच शांति स्थापित कर सके।

यह बहुत उल्लेखनीय है कि गेर्होह सारी परिस्थिति से इतना विक्षुब्ध था कि उसने पोप की राजसभा (Romani) की सम्पूर्ण नीति की कठोर निन्दा अपनी पुस्तक में चालू रखी। उसने उन पर सबसे बढ़कर अभिमान तथा लालच का आरोप लगाया, तथा अवज्ञा-पूर्वक सुझाव देता है कि वे अन्ततः सभी बिशप पदों को समाप्त करके चर्च के सभी अंगों को प्रत्यक्षतः रोम के शासन के अधीन ले आएँ, वे शासकों एवं प्रजाओं के राजनीतिक सम्बन्धों में हस्तक्षेप करेंगे, जो उनकी आज्ञापालन न करेंगे उनको धर्म-बहिष्कृत करेंगे, और ये सब कार्य वे धन के लिए करेंगे।[54] वह वर्तमान संघर्ष एवं धर्म-विद्रोह का कारण रोमनों के लालच को बताता है, जो कि सिसेलियन राजाओं तथा मिलन वासियों के स्वर्ण द्वारा भ्रष्ट बना दिए गए हैं, तथा वह मिलन द्वारा राजकीय सत्ता के प्रतिरोध का कारण रोमवासियों के समर्थन को बताता है।[55] उसे वास्तव में इसका खयाल है कि उत्साह के अति-रेक के कारण उसकी निन्दा हो सकती है, किन्तु उसकी मान्यता थी कि वह ये तर्क व्यक्तिगत रूप से किसी के विरुद्ध नहीं दे रहा है, किन्तु केवल उन भयंकर परिणामों की ओर संकेत कर रहा था जो इन दोषों के कारण होंगे, क्योंकि इसका वास्तविक भय था कि यदि इन लोकापवादों की अपेक्षा की गई तो रोमन चर्च के प्रति आज्ञापालन में उसी प्रकार व्यतिक्रम होगा जैसा यूनानियों ने किया था।[56]

Scanned by CamScanner

एक बार फिर वह एलेक्जेण्डर के निर्वाचन की वैधता के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क देता है, तथा कहता है कि वास्तव में चर्च तीन भागों में विभाजित था, एक भाग एलेक्जेण्डर को स्वीकार करता था, दूसरा विक्टर को, जबकि तीसरा दोनों में से किसी को भी न स्वीकार करता था न अस्वीकार, किन्तु परिस्थितियों के अधिक परिपूर्ण तथा उचित विचार की आशा करता था, जो केवल राजाओं की सहमति से बुलाई गई सामान्य परिषद् में ही सम्भव था। उसने स्वयं को किसी निर्णय पर पहुँचने में असमर्थ पाया, किन्तु वह तीसरे पक्ष से सहमत प्रतीत होता है।[57]

यह ग्रन्थ पोप के दल में पायी जाने वाली इस प्रवृत्ति की जो सम्राट् के ऊपर राजनीतिक सत्ता की माँग करती है अत्यन्त कठोर निन्दा से समाप्त होता है। जब वे चित्रों तथा पत्रों में प्रदर्शित करते हैं कि सम्राट् पोप को नज़राना देता है—जो निस्संदेह हैड्रियन चतुर्थ तथा फ्रेडरिक बारबरोसा के मध्य क्रोधपूर्ण पत्र-व्यवहार का उल्लेख है, जिसका हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं,[58]—जब वे सम्राट् तथा उसके विरुद्ध विद्रोह करने वालों के बीच मध्यस्थ बने, तब उन्होंने पोप को सम्राटों के ऊपर अधीश्वर बनाया, तथा सम्राट् को एक सामन्त की स्थिति में ला पटका। वास्तव में यह उस सत्ता को नष्ट करना है जिसे ईश्वर ने बनाया है, ईश्वर के आदेशों की अवहेलना, तथा दोनों तलवारों की प्रकृति के मध्य भ्रान्ति उत्पन्न करना है। प्रत्येक सत्ता को अपने स्थान एवं कार्यों से संतुष्ट रहना चाहिए,[59] राजा या सम्राट् को उस वस्तु को अपनी नहीं समझना चाहिए जो कि पुरोहितों की हो तथा बिशप को सीज़र की वस्तु सीज़र को सौंप देनी चाहिए, तथा यदि वे 'राजचिह्नों' को धारण करना चाहें तो उनको राजा का उपयुक्त एवं न्यायोचित सम्मान करना चाहिए। वह पुनः इसका प्रतिपादन करता है कि यह उचित नहीं कि बिशप नज़राना दे : राजा को इसी से सन्तुष्ट हो जाना चाहिए कि बिशप निष्ठा की शपथ ले, तथा यह कि वह, अपने पद को सुरक्षित रखते हुए राजमुकुट की रक्षा करेगा।[60]

यह ग्रन्थ पोप-पद के निर्वाचन के विषय में तात्कालिक विवाद तथा दोनों सत्ताओं के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में धार्मिक व्यक्तियों के मन की दशा के विषय में विद्यमान जर्मनी की विचारधारा पर पर्याप्त रूप में प्रकाश डालता है। क्योंकि यह उल्लेखनीय है कि यह उसकी धार्मिक भावनाओं की गहनता है जो कि गेरहोह को इस बारे में सावधान बनाती है कि कहीं चर्च लौकिक मामलों में लिप्त न हो जाएँ। वह चर्च की स्वतंत्रता की आवश्यकता की परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है, उसे अयाजक "प्रतिष्ठापन" के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता एवं न्याय के विषय में कोई सन्देह नहीं है, किन्तु जैसा उसने अनुभव किया कि उस युग की यह इतनी समस्या नहीं थी कि चर्च को किस प्रकार लौकिक सत्ता के आक्रमण से रोका जाए, जितनी यह थी कि वह लौकिक मामलों में फँसने से अपने को किस प्रकार बचाए जिनमें अपनी सफलताओं के कारण वह फंस गया था।

यह सभी बातें उसकी कुछ बाद की रचनाओं में बहुत स्पष्टता से वर्णित हैं। 1166–67 ई० में उसने रोमन चर्च के कार्डीनलों को एक लेख में सम्बोधित किया। वास्तव में उसने जब "डी इन्वेस्टीगेशन एन्टीक्रिस्टी" लिखा था तब से परिस्थिति बहुत बदल गई थी। विरोधी पोप विक्टर की मृत्यु हो चुकी थी, तथा पैस्कल उसका

Scanned by CamScanner

उत्तराधिकारी बन चुका था। उसका निर्वाचन जर्मन राजाओं के मई 1165 ई० के विश्व-पत्र में रोमन चर्च के बिशपों एवं कार्डीनलों द्वारा, लम्बार्डी तथा टस्कनी के बिशपों एवं रोम के नगराध्यक्ष तथा अन्य नागरिकों की उपस्थिति में हुआ, तथा साम्राज्य के चर्चों एवं राजकुमारों ने उसे मान्यता दी थी।[61] तथापि गेर्होह उसके अस्वीकरण के विषय में स्पष्ट रूप से था, तथा उसने यह आरोप लगाया कि किसी भी कार्डीनल बिशप ने उसके अभिषेक में भाग नहीं लिया था, तथा अब वह निश्चित रूप से एलेक्जेण्डर तृतीय को वैधानिक पोप मानता था।[62] तथापि वह उस बड़ी कठिनाई को भी बताता था जो कि उसके समर्थकों को इस कारण होती थी क्योंकि सिसली के राजा तथा मिलन वासियों के साथ उसके षडयंत्र के आरोप का खण्डन नहीं किया गया था, तथा एलेक्जेण्डर के कुछ समर्थकों की यह मान्यता भी थी कि हैड्रियन चतुर्थ के कार्य की निन्दा नहीं की जा सकती।[63] उसने तर्क दिया कि एलेक्जेण्डर तथा उसके समर्थकों को यह समझ लेना चाहिए कि यद्यपि यह सत्य था कि पोप एवं उसके कार्य किसी मानवीय न्याय के अधिकार-क्षेत्र में नहीं आते, किन्तु यह केवल उसके धार्मिक पद एवं कार्यों के विषय में था, न कि लौकिक मामलों से उसके सम्बन्धों के विषय में : इनके विषय में उसके कार्य संशोधन योग्य थे,[64] तथा उसने अनेक दृष्टान्तों से यह दिखलाया कि स्वयं पोपों ने इसे स्वीकार किया है, तथा इन मामलों से सम्बन्धित आरोपों से अपने को मुक्त किया है; उसने लियो चतुर्थ के शुद्धिकरण को भी इसमें सम्मिलित किया था।[65] अतः यदि शिकायत की जाए कि पोप तथा कार्डीनलों ने कोई ऐसा कार्य किया है जिससे साम्राज्य को खतरा उत्पन्न हुआ है तथा चर्च का विभाजन हुआ है, तो न्यायोचित यही होगा कि या तो इसे सिद्ध किया जाए या इसका खण्डन किया जाए।[66] यदि यह सिद्ध हो जाए कि पोप ने गलती की है, तो इसे बदला एवं सुधारा जा सकता है.....वैसा करने के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं.....यह अनेक दृष्टान्त प्रस्तुत करता है, जिसमें संत पीटर, बोनीफेस द्वितीय, पैस्कल द्वितीय एवं केलीक्टस द्वितीय सम्मिलित हैं।[67] वह सुझाव देता है कि सिसली के राजा के साथ आरोपित समझौता जिसके बारे में इतना संघर्ष हुआ था, पोप हैड्रियन द्वारा दबाव में आकर किया गया था तथा वह कार्डीनलों से प्रार्थना करता है कि सार्वजनिक रूप से यह सिद्ध कर दें कि यह कभी किया ही नहीं गया था, या इसका औचित्य सिद्ध करें, या इसका संशोधन करें।[68]

गेर्होह ने पोप तथा कार्डीनलों को चेतावनी दी कि उनका निरन्तर विद्यमान मौन इस झगड़े को इतनी सीमा तक बढ़ा देगा कि "राजसत्ता" एवं "धार्मिक सत्ता" एक दूसरे को नष्ट कर देंगी, तथा वह उनको जिलेशियस के शब्दों का स्मरण दिलाता है जिसको वह पोप निकोलस प्रथम के सम्राट् माइकल को लिखे गए पत्र से उद्धृत करता है, जिसमें यह बताया गया है कि यह स्वयं ईसा ही थे जिसने लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं को उनके विशिष्ट कार्य सौंपे। वह कहता है, कि यदि ये सिद्धान्त स्मरण रखे जाते, तो दोनों सत्ताओं में वर्तमान संघर्ष ही नहीं होता, ये दोनों सत्ताएँ तब तक चलती रहनी चाहिए जबतक कि ईसा स्वयं अपनी अंतिम विजय के लिए उपस्थित नहीं होते।[69] अतः उसने कार्डीनलों से अनुरोध किया, कि यदि वे चर्च के विभाजित सदस्यों को वास्तव में मिलाना

चाहते हैं, तो वे इसे स्पष्ट कर दें, कि उनके प्रति आरोप के विरुद्ध वे साम्राज्य को नष्ट नहीं करना चाहते।[70]

एक अन्य लेखांश में उसने अनुग्रह किया है कि लौकिक शासक, यदि वे अन्यायपूर्वक शासन की इच्छा करें, तो उनको अनुदेशित करना चाहिए न कि उन्हें नष्ट करना चाहिए; तथा वह सूचना देता है कि अनेक वार्ताओं में सम्राट् ने उससे यह स्पष्ट कर दिया है वह अपने न्यायोचित अधिकारों की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहता, वह पोप का समर्थन करने को प्रस्तुत है यदि वह इनको स्वीकार कर ले, किन्तु वह अपनी सम्पूर्ण शक्ति से किसी भी ऐसे व्यक्ति का प्रतिरोध करने को कृतनिश्चय है जो उसके कार्यों में हस्तक्षेप करता है, तथा उसे विश्वास है कोई भी संत पीटर का सच्चा उत्तराधिकारी नहीं हो सकता यदि वह पोप-पद के नाम पर यह प्रयत्न करे कि वह न केवल पादरियों ही का, वरन् साम्राज्य का भी शासक है।[71] गेर्होह ने, जैसा वह कहता है, यह आशा की थी कि ये कठिनाइयाँ या तो सामान्य परिषद् द्वारा या व्यक्तिगत वार्ताओं से सुलझ सकती हैं, तथा सम्राट् को उसके सलाहकारों ने इससे सहमत होने की राय भी दी थी, किन्तु पोप के सलाहकारों ने इन प्रस्तावों के विपरीत राय दी। अतः वह सुझाव देता है कि श्रेष्ठतम मार्ग यही होगा कि चर्च तथा साम्राज्य के प्रमुख व्यक्तियों को सम्बोधित पत्र में अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों की पोप स्वयं परीक्षा करे।[72]

गेर्होह का अंतिम ग्रन्थ डी क्वार्टा विजीलिया नॉक्टिस (De Quarta Vigilia Noctis) उसकी मृत्यु के दो वर्ष पूर्व 1167 ई० में लिखा गया था। अपनी एलेक्जेण्डर तृतीय के प्रति निष्ठा के कारण वह राइखर्सबर्ग से निष्कासित कर दिया गया था, तथा यह ग्रन्थ एक ऐसे व्यक्ति के स्वभाव की रोचक एवं हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति है जो, सम्राट् द्वारा चर्च के मामलों में हस्तक्षेप के अन्याय एवं अनौचित्य के बारे में अपने विश्वासों के प्रति दृढ़ था, और साथ ही चर्च के दोषों के प्रति तथा पोप के समर्थकों की जो उसे खतरनाक प्रवृत्तियाँ प्रतीत होती थीं सच्चा और निष्कपट आलोचक था, वह एक ऐसा व्यक्ति था जो रोम के आज्ञापालन के लिए निष्ठावान था, साथ ही साम्राज्य का एक निष्ठावान नागरिक भी था। उसकी वृद्धावस्था में जैसा वह कहता है उसने अपने आपको अपने "आश्रय" से निष्कासित, एवं शत्रुओं के सम्मुख अनावृत पाया जो उसके विनाश के प्यासे थे, तथा जिन्होंने उसके आश्रय को नष्ट कर दिया क्योंकि वह पोप के प्रति निष्ठावान था तथा नकली पोपों विक्टर और पैस्कल को मान्यता नहीं देता था।[73] तथापि वह अपने निष्कपट एवं निष्पक्ष मत पर सुदृढ़ रहा जो उसके सम्पूर्ण ग्रन्थ में अभिलक्षित होता है, तथा उसकी दृढ़ धारणा है कि चर्च के कष्ट तथा लौकिक सत्ता के आक्रमण राज्य के चतुर्थ एवं अंतिम प्रश्न के दुःखद लक्षण नहीं थे जितना कि चर्च में बढ़ता हुआ लालच।[74]

वह वास्तव में इस गंभीर दोष के लिए चर्च की निन्दा सीधे एवं निस्संकोच ढंग से करता है। वह दृढ़ता से पोप एवं कार्डीनलों की वैधानिक स्थिति का संरक्षण करता है, किन्तु चर्च पर लूट-खसोट एवं भ्रष्टाचार के आरोप लगाता है। चर्च के निर्णयों के न्यायोचित होने पर भी उनका मूल्य माँगा जाता था, तथा कभी वे अन्यायपूर्ण भी होते थे, तथा रिश्वत द्वारा प्राप्त किए जाते थे।[75] वह इस पर खेद प्रकट करता है कि ग्रेगोरी

Scanned by CamScanner

सप्तम और हेनरी चतुर्थ के बीच संघर्ष छिड़ने के बाद से पोप विशाल धनराशि देकर रोमन जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए विवश हो गए थे, तथा रोमनों के लालच को संतुष्ट करने के लिए उस धन को प्रत्येक स्थान से उगाहने को बाध्य हो गए थे।[76] वह अत्यन्त गंभीरतापूर्वक कुछ कार्डीनलों की धृष्टता एवं लालच की भी निन्दा करता है।[77]

पोप द्वारा धर्मविच्छेदकारियों के प्रति कैथोलिकों से युद्ध करने के आग्रह के औचित्य का प्रतिपादन करने में उसे कोई संकोच नहीं है,[78] तथा वह वर्णन करता है कि किस प्रकार ईश्वरीय न्याय ने सम्राट् तथा उसकी सेना पर प्रहार किया, जबकि वे विरोधी पोप पैस्कल सहित रोम आए, तथा उनमें से बहुत से प्लेग के शिकार हो गए तथा मारे गए।[79] दूसरी ओर, वह पोप को लौकिक सत्ता का दावा करने के विरुद्ध गम्भीर चेतावनी देता है क्योंकि उसे कोई अधिकार नहीं है। वह पोप से सावधान रहने का आग्रह करता है ताकि वह लौकिक सम्मान प्रदान करने के अधिकार का दावा न करे जैसे कि वे उसकी जागीर हों; यद्यपि वह स्वीकार करता है कि कॉन्सटेन्टाइन के दान ने उसे रोम नगर के लौकिक मामलों के प्रशासन का अधिकार प्रदान किया है, तथापि वह अनुरोध करता है कि सम्राटों ने रोम और संसार पर भी शासन किया है।[80]

सम्राट् द्वारा पोप को इस प्रकार के सम्मान के प्रतीक प्रदान करने की वह अत्यन्त कठोरता से आलोचना करता है जो कि स्वयं उसके लिए असम्मानजनक हों। वह स्वीकार करता है कि अपनी विनम्रता के कारण एक बार कॉन्सटेन्टाइन ने पोप सिल्वेस्टर के "सैनिक" (Strator) के रूप में कार्य किया था, तथापि सिल्वेस्टर ने उसे कभी भी अपना "सेनापति" (Marshal) नहीं कहा, और न कभी चित्रों में वैसा प्रदर्शित किया, तथा तब से लेकर अबतक किसी भी सम्राट् को उस रूप में प्रदर्शित नहीं किया गया है। दूसरी ओर, रोमन पोपों तथा सम्राटों ने सदैव एक-दूसरे का आदर एवं सहायता की है, तथा वह इस पर आश्चर्य प्रकट करता है कि अब रोमन वैसा चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करें, वह उनसे सन्त पीटर के शब्दों पर ध्यान देने का अनुरोध करता है जिसने कहा है "ईश्वर से डरो राजा का सम्मान करो"। [81]

गेर्होह स्पष्टतया उस लोकापवाद को नहीं भूला था जो हैड्रियन चतुर्थ के फ्रैडरिक को लिखे गए पत्र के शब्दों एवं परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ था।[82] तथा वह यह स्पष्ट करने को कृतनिश्चय था कि वह तथा रोमन धर्मपीठ के जर्मनी में विद्यमान निष्ठावान नागरिक पोप द्वारा किसी ऐसी लौकिक सत्ता के दावे को स्वीकार करने को राजी नहीं हैं जो वस्तुतः उसके अधिकार में नहीं हो। दूसरी ओर, वह सम्राट् को भी चेतावनी देता है कि वह उस अधिकार का दावा न करे जो कि उसका नहीं है, तथा बिशपों को नियुक्त एवं पदच्युत करने के अधिकार का भी दावा न करे जो सम्पूर्णतया उसके क्षेत्र से परे है।[83]

वह लौकिक एवं धार्मिक सत्ता के अधिकारों के तात्कालिक स्रोत के सिद्धान्तों को एक संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित लेखांश में संहृत करता है। वह कहता है कि जैसे ईश्वर ने आदम को पृथ्वी की धूल से बनाया था, तथा ईश्वर ने फिर उसमें प्राण फूंक दिए, और इस प्रकार सभी जीवित प्राणियों से ऊपर उसे बनाया, इसी प्रकार सम्राट् या राजा भी जनता या सेना द्वारा बनता है, तथा जब सामन्त या उनमें सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति उसके शासन को

Scanned by CamScanner

मान्यता दे देते हैं, तो वह पुरोहितों के आशीर्वादों से उसे जीवन की अन्तरात्मा के रूप में प्राप्त करता है। इसी प्रकार पोप या बिशप भी पहले पादरियों के निर्वाचन एवं अभिषेक द्वारा (in spiritu promovendus) होता है तथा बाद में (tamquam formandus in corpore) प्रमुख लोगों की सहमति से सम्राट् या राजा द्वारा सम्मानित होता है, तथा उसकी सहायता से (conniventia) राजचिह्नों को धारण करता है।[84]

इस वाक्यसमूह में ऐसे शब्द हैं जो अस्पष्ट हैं, किन्तु उनकी सामान्य प्रवृत्ति यह स्पष्ट कर देती है कि यद्यपि गेर्होह लौकिक शासक को आशीर्वाद देने में पोप या पादरी के महत्त्वपूर्ण स्थान को तथा बिशप द्वारा राजचिह्नों के स्वामित्व के विषय में लौकिक सत्ता के महत्त्व को स्वीकार करता था तथापि वह दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित करता था कि न तो सम्राट् न राजा ही बिशप या पोप को नियुक्त कर सकते थे, न बिशप और पोप ही राजा या सम्राट् को नियुक्त करते थे, किन्तु प्रत्येक दशा में उनके अधिकार के स्रोत वही थे जिन्हें उनको चुनने का अधिकार था।

यदि केवल प्रत्येक अपनी सत्ता से संतुष्ट रहे, तथा जो दूसरे के अधिकार में है उस पर दावा छोड़ दे, तो रात्रि के चतुर्थ प्रहर में भी सच्ची शान्ति हो सकती है, तथा गेर्होह एक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करता है, जो कुछ व्यक्तियों के विचार में 1091 ई० में लिखी गई थी।

"querit apostolicus regem depellere regno; Rex frurite contra papatum tollere papae, Si foret in medio, qui litem rumpere posset Sie, ut rex regnum, papatum papa teneat, Inter utrumque malam fierit discretio magna."

किन्तु, वह भाव भरे शब्दों में कहता है, कि इस संघर्ष को कौन समाप्त कर सकता है जबतक कि प्रभु ईसा स्वयं पीटर के जलपोत में आकर लोभ के तूफान को शान्त न करें, वह लोभ जो कि चरम ईसा-विरोधी है।[85]

वह इस प्रार्थना से समाप्त करता है कि ईसा उसके चर्च में आएँगे, जो इस चौथे प्रहर में सबसे अधिक खतरे में है, उन झूठे पुरोहितों का दमन करेंगे जो उसके घर में व्यापार और लूट-खसोट कर रहे हैं, तथा उन राजाओं का दमन करेंगे जो धर्म के बहाने अत्याचार को प्रोत्साहन दे रहे हैं—प्रभु ईसा आकर चर्च तथा संसार को बचाएँगे तथा 'राजसत्ता' और 'धार्मिक सत्ता' के बीच शांति स्थापित करेंगे।[86]

सन्दर्भ

1. क्र० आगे देखें इसी अध्याय में।
2. आर्नल्ड के सम्बन्ध में विशेष द्रष्टव्य : R. Breyer, 'Arnold von Brescin', in Raumer, 'Historisches Taschenbuch, Sachate Folge, Achter Jahrgang', मुझे इससे बहुत सहायता मिली है।
3. Otto of Freising, 'Gesta Fridirici', ii. 20.
4. 'Historia Pontificalis', 31.
5. Gesta di Federico I. (ed. Monaci).

Scanned by CamScanner

6. Gerhoh of Reichersberg, 'De Investigatione Antichristi', i. 40.
7. ,Monumenta Corbeiensia', 404.
8. M. G. H., Leg., Sect. IV., Const., vol. 26.
9. Gerhoh of Reichersberg—'De edifieio Dei', 12.
10. Id., 'De Ordine donorum Sancti Spiritus', (p. 283).
11. Id., 'De edificio Dei', 13.
12. Id. id., 17.
13. Id. id,, 25.
14. Id. id., 22.
15. Id., 'De Ordine donorum Sancti Spiritus', (p. 274).
16. Id. id., (pp, 276, 277).
17. Id. id., (pp. 278, 279.
18. Id. id., (p. 279.
19. Id. id., (p. 280).
20. See. p. 347.
21. Id., 'De Novitalibus huis Temporis', 12.
22. Id. id., 19.
23. Id., 'De Investigatione Antichristi', 24.
24. Id. id., id.
25. Id. id.. 25.
26. Id. id,. 27.
27. Id. id., id.
28. Id. id., id.
29. Id. id. 35.
30. Id. id., 36,
31. Id. id. 36.
32. Id. id., 37.
33. Id. id., 38.
34. Id. id., 40.
35. Id., 'Comm. on ps. Lxiv'. (p. 454).
36. Id. id., (p. 454).
37. Id. id., (p. 462).
38. Id. id., (p. 467).
39. Id. id., (p. 462).
40. Id. id., p. 465.
41. Id. id., p. 53.
42. id, id., id.
43. Id. id,, id.
44. Id. id. 55.
45. Id. id., id.
46. Id. id,, 56.
47. Id. id , id.
48. Id. id., id.
49. Id. id., 57.
50. Id. id., id.
51. Id. id., id.
52. Id. id., id.
53. Id. id., id.
54. Id. id., 58.
55. Id. id., id.
56. Id. id., id.
57. Id. id., 68.
58. Cf. p. 313.
59. Id. id.. 72.
60. Id. id., id.
61. M. G. H , Leg., Sect. IV., Const., vol. i. 223.
62. Gerhoh, 'Opusculum ad Cardinales' (p. 401).
63. Id. id. (p. 401).
64. Id. id. (p. 401.)
65. Id. id. (pp. 401, 402, 410).
66. Id. id. (p. 402).
67. Id. id, (p. 405).
68. Id. id. (p. 405).
69. Id. id. (p. 402).
70. 1d. id. (p. 403).
71. 1d. id. (p. 408).
72. Id. id. (p. 404).
73. Id., 'De Quarta Vigilia Noctis', 2.
74. Id. id., 10.
75. Id. id., 7.
76. Id. id., 8.
77. Id. id., 11.
78. Id. id., 12.
79. Id. id., 15.
80. Id. id., 17.
81. Id. id., 12.
82. Cf. p. 313.
83. Id. id., 17.
84. Id. id., 17.
85. Id. id., 17.
86. Id. id , 21.

Scanned by CamScanner

चतुर्थ अध्याय

उपसंहार

हमने इस ग्रन्थ में दसवीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक लौकिक एवं धार्मिक सत्ताओं के सम्बन्धों के सिद्धान्तों का विकास प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमने इन्नोसेन्ट तृतीय के पदारोहण से पूर्व ही इस ग्रन्थ को समाप्त कर दिया है, क्योंकि हमारे विचार में उसके कार्यों और सिद्धान्तों का विवेचन तेरहवीं शताब्दी के सिद्धान्तों एवं परिस्थितियों के साथ प्रत्यक्ष-सम्बन्ध की दृष्टि से करना श्रेष्ठ होगा, जिसका विवेचन हम अगली पुस्तक में करेंगे। हमने कार्यों तथा सिद्धान्तों दोनों का ही विवेचन यथा-संभव तटस्थ रूप से करने का प्रयास किया है, ताकि जहाँ तक संभव हो वे अपने आप अपने को प्रकट कर सकें, और अब यदि हम कुछ सामान्य निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करें, तो हमें आशा है कि इनको हमारे द्वारा पूर्व-कथित तथ्यों से पूर्णतया पृथक् रखा जाएगा।

हम प्रारम्भ में यह कहना चाहते हैं, कि यदि किसी विश्वसनीय निष्कर्ष को प्राप्त करना है, तो हमें इन शताब्दियों के इतिहास का पश्चिम में कान्सटेन्टाइन के धर्म-परिवर्तन के युग से लेकर धार्मिक एवं लौकिक सत्ताओं के सम्बन्धों के सम्पूर्ण इतिहास के संदर्भ में अध्ययन करना होगा। ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी के महान् संघर्षों को पृथक् करने के प्रयत्न से विभ्रम के अतिरिक्त और कुछ उत्पन्न नहीं होगा, और वास्तव में बहुत विभ्रम उत्पन्न हो भी चुका है। यदि हम उत्तरकालीन संघर्ष को समझना चाहें तो विशेषतः दोनों सत्ताओं के नवीं शताब्दी के सम्बन्धों के जटिल स्वरूप का सावधानी से अध्ययन आवश्यक है।

वास्तविकता यह है कि मध्ययुग के परम्परागत राजनीतिक सिद्धान्त का सर्वाधिक विशिष्ट तत्त्व मानव समाज की रचना की द्विविधता के सिद्धान्त में है, जो जीवन के आध्यात्मिक एवं लौकिक पक्ष की द्वैधता संत पीटर के यहूदी अधिकारियों को सम्बोधित शब्दों में स्पष्टतया वर्णित है, "हमें मनुष्यों के स्थान पर ईश्वर का आज्ञापालन करना चाहिए" (Acts. v. 29)। निस्संदेह यह संभव है कि जब साम्राज्य ने ईसाई धर्म स्वीकार किया, तो एक क्षण को संकोच हुआ हो, किन्तु पश्चिम में यदि कोई संकोच था तो वह केवल क्षणिक था, तथा सामान्य सिद्धान्तों का वर्णन एवं चिन्तन विशेषतया संत अम्बरोस

Scanned by CamScanner

द्वारा चौथी शताब्दी में एवं जिलेसियस प्रथम द्वारा पाँचवीं शताब्दी में किया गया अर्थात् इस सिद्धान्त का कि मानव समाज का शासन दो सत्ताओं द्वारा होता है, न कि एक के द्वारा, जो क्रमशः लौकिक एवं धार्मिक हैं, वे सत्ताएँ दो अधिकारियों में निहित हैं धार्मिक एवं लौकिक, दोनों सत्ताओं में से प्रत्येक अपनी आपत्ति में दैवी है तथा प्रत्येक अपने क्षेत्र में दूसरी से स्वतंत्र है। इस सिद्धान्त का स्पष्ट एवं बलपूर्वक वर्णन पुनः नवीं शताब्दी में किया गया, तथा ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी में भी यह मनुष्यों के मस्तिष्क में वर्तमान था।

पश्चिमी जगत में तात्विक रूप से यह एक नया सिद्धान्त था इसमें संदेह नहीं। हम केवल यही बताने का प्रयास करेंगे, कि हेलेनिक एवं रोमन दोनों सभ्यताओं के देशों में, तथा ईसा के तुरन्त पूर्व की शताब्दियों में, यहूदियों के देशों में विचारों एवं भावों के आन्दोलनों का उससे अधिक स्पष्ट एवं गहन विवेचन होना चाहिए जितना अभी तक किया गया है। नयी धारणा के महत्त्व की व्याख्या की शायद ही कोई आवश्यकता हो, अर्थात् इस धारणा के महत्त्व की कि धार्मिक क्षेत्र का जीवन लौकिक सत्ता के अधीन नहीं है, किन्तु उससे स्वतंत्र है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व के महत्त्व के नवीन विकास का एक पक्ष है, और सर्वाधिक अनुपेक्षणीय नहीं, यह स्वतन्त्रता की एक नई धारणा है।

यदि यह संकल्पना महत्त्वपूर्ण एवं उसके परिणाम दूरगामी थे, तो मानव समाज के व्यावहारिक संगठन में उसके प्रयोग का प्रयास अत्यन्त कठिन था और आज भी वैसा ही है। यह देखना या यह सोचना कि हम लौकिक तथा आध्यात्मिक के मध्य अन्तर देख रहे हैं सरल है, जब हम उनके विषय में सामान्य रूप से या जीवन की वास्तविक यथार्थताओं से पृथक् का विचार करते हैं; किन्तु जब हम इस विभेद का इन पर प्रयोग करने का प्रयास करते हैं, तो यह बहुत भिन्न हो जाता है। हमने प्रथम पुस्तक में नवीं शताब्दी की परिस्थितियों से इसके कुछ पक्षों के उदाहरण देने का प्रयास किया है, तथा दसवीं और ग्यारहवीं में बिशपों तथा मठाधीशों के पदों के सामन्तीकरण, तथा उनके बढ़ते हुए राजनीतिक महत्त्व से व्यावहारिक कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गयी थीं; परन्तु इसके अतिरिक्त दोनों शक्तियों के आपेक्षिक सत्ता के प्रश्न ने भी पर्याप्त कठिनाइयाँ उत्पन्न कर दी थीं, तथा मध्ययुग में उनका कोई अंतिम हल नहीं निकला, और न इस मामले में हमें अभी तक ही सफलता मिली है।

वह विषय जिस पर हम इस ग्रन्थ में विचार कर रहे हैं वह प्रश्न है कि ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दियों में, द्वैध सत्ता की कल्पना को कहाँ तक सत्ता की एकता के सिद्धान्त द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया था, जिसमें एक सत्ता का दूसरी पर प्रभुत्व था। यदि हम किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहें तो हमें प्रश्न के तीन पक्षों में स्पष्ट विभेद करना होगा : प्रथम, वास्तव में एक सत्ता कहाँ तक दूसरी के कार्यों में हस्तक्षेप करती थी अथवा दूसरी पर सत्ता का प्रयोग करती थी; द्वितीय, कहाँ तक इसका कोई सिद्धान्त या तत्त्व विकसित हुआ, और तृतीय, कहाँ तक संभावित घटनाओं या मनुष्यों द्वारा निर्मित सिद्धान्तों का वास्तविक महत्त्व मध्यकालीन राजनीतिक जीवन एवं विचारों के यथार्थ स्वरूप पर पड़ा।

हमारे मत में प्रथम प्रश्न अत्यधिक महत्त्व का है, क्योंकि यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि

Scanned by CamScanner

जिस समय का हम विचार कर रहे हैं, उसमें चाहे जिन सैद्धान्तिक निर्णयों पर बल दिया जाता हो, वे अधिकांशतः वैचारिक कल्पना के परिणाम या क्रमबद्ध विचारों की अभिव्यक्ति नहीं थे, किन्तु वे किन्हीं व्यावहारिक कठिनाइयों अथवा आवश्यकताओं के कारण उठे थे। उनमें प्रथम वस्तु जिसका ध्यान रखना चाहिए यह है कि हमारे द्वारा वर्णित सभी सिद्धान्तों एवं कार्यों की पृष्ठभूमि में दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उदित हुए धार्मिक सुधार का महान् आन्दोलन चर्च एवं पोप-पद की भ्रष्ट परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह था, जिसकी एक अभिव्यक्ति क्लूनिक सुधार थे, तथा क्लूनी कुछ समय के लिए जिसका केन्द्र था। यह स्पष्ट है कि ऑटो प्रथम से लेकर हेनरी तृतीय पर्यन्त पोप-पद एवं चर्च सम्बन्धी संगठनों पर सम्राट् व्यापक अधिकार रखते थे, उसका पहला कारण तो यह था कि चर्च की सम्पूर्ण व्यवस्था भ्रष्ट एवं असंगठित थी, और दूसरा कारण महान् धार्मिक पदाधिकारियों का राजनीतिक महत्त्व था। निस्संदेह ऑटो प्रथम के पोप-पद सम्बन्धी कार्यों के निर्धारण में राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा एवं धार्मिक सिद्धान्तों के प्रभाव में स्पष्ट भेद कर सकना अत्यन्त कठिन है, किन्तु यह कहना सत्य होगा कि उसके द्वारा तथा उसके तात्कालिक उत्तराधिकारियों द्वारा प्रयुक्त अधिकारों का औचित्य उनके परिणामों से पुष्ट होता है। और यह हेनरी तृतीय के कार्यों के बारे में अधिक स्पष्टतया सत्य है।

यह स्पष्ट है कि जहाँ तक साम्राज्यिक कार्य सुधारवादी भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता था अथवा उनसे मेल खाता था, तबतक अधिकांश प्रसिद्ध एवं उत्साही चर्च के सदस्यों ने इसका कोई विरोध नहीं किया। हमारे मत में यह पीटर डेमियन तथा कार्डीनल हम्बर्ट जैसे व्यक्तियों के दृष्टिकोण से स्पष्ट प्रतीत होता है, यद्यपि उस समय भी कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो साम्राज्यिक कार्यों के औचित्य को अस्वीकार करते थे अथवा उसमें संदेह करते थे, जिनमें मर्सबर्ग का थीटमार, लीज का वजो, तथा "डी ऑरडीनेन्डो पोन्टीफिस" (De Ordinando Pontifice) नामक निबन्ध (tract) का रचयिता जैसे मनुष्य थे—किन्तु वे अपवाद प्रतीत होते हैं। दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में लौकिक सत्ता के कार्यों का औचित्य सिद्धान्तों पर उतना आधारित नहीं है जितना कि व्यावहारिक दशाओं पर है, तथा यह ध्यान देने योग्य है कि फ्रेडरिक बारबरोसा का एलेक्जेण्डर तृतीय के विवादास्पद निर्वाचन के बारे में कार्य उसी प्रकार के कारणों से औपचारिक रूप से उचित सिद्ध हुआ है—अर्थात् इस मान्यता के आधार पर कि यदि चर्च प्रशासन की व्यवस्था को उसके स्वयं के अधिकारियों से कोई खतरा हो, तो लौकिक सत्ता का कर्तव्य है कि वह अपनी सत्ता से धार्मिक मामलों के निर्धारण के लिए नहीं, अपितु उचित चर्च सम्बन्धी व्यवस्था को गति देने के लिए हस्तेक्षप करे।

बिशपों एवं मठाधीशों की नियुक्ति में राजाओं एवं सम्राटों द्वारा जिस अधिकार का दावा किया जाता था, उसका भी आंशिक रूप से औचित्य समान परिस्थितियों के कारण हो सकता था, परन्तु वास्तव में दसवीं शताब्दी में विकसित सामन्ती व्यवस्था की दशाओं के अन्तर्गत बड़े पादरियों की राजनीतिक स्थिति का परिणाम था; तथा जैसा बाद को सिद्ध हुआ उसे पूर्णतया दूर कर देना असंभव था। हेनरी तृतीय की मृत्यु तक सुधारवादी दल, निर्वाचकों के अधिकारों पर बल देते हुए भी, सामान्य रूप से नियुक्ति के विषय में समाज

Scanned by CamScanner

के राजनीतिक अध्यक्ष के महत्त्वपूर्ण स्थान के औचित्य को अस्वीकार नहीं करता था।

इसलिए, यदि यह सत्य है कि लौकिक सत्ता द्वारा धार्मिक मामलों में अधिकारों के प्रयोग का अपना तर्कसम्मत औचित्य इन शताब्दियों की वास्तविक परिस्थितियों के कारण था, तो यह भी सत्य है इसके विरुद्ध विद्रोह, नई परिस्थितियों के कारण ही उठा तथा नई परिस्थितियों के कारण ही उसका औचित्य है, तथा ये नई परिस्थितियाँ सब मिलाकर स्पष्ट हैं। हेनरी तृतीय की मृत्यु के साथ साम्राज्य ने सुधार के आन्दोलनों का प्रतिनिधित्व करना समाप्त कर दिया, और वास्तव में शीघ्र ही वह भ्रष्टाचार का केन्द्र प्रतीत होने लगा, तथा इसी कारण अयाजक 'प्रतिष्ठापन' अर्थात् लौकिक सत्ता द्वारा नियुक्ति का विरोध होने लगा। इस प्रकार सुधारवादी दल के लिए यह संघर्ष चर्च की स्वाधीनता का संघर्ष बन गया। निस्संदेह यह सत्य है कि उसमें अन्य कारण तथा महत्त्वाकांक्षाएँ भी सम्मिलित हो गयी थीं, किन्तु यह सुझाव हमें विवेकहीन प्रतीत होता है कि स्वतंत्रता की माँग अवास्तविक थी, सुधारवादी चर्च के नेताओं के लिए स्वतंत्रता सुधार की आवश्यक शर्त हो गयी थी। हल ढूँढ निकालने के पहले गंभीर प्रयत्न अर्थात् पैस्कल द्वारा 'राजचिह्नों के समर्पण के, जिसका तात्पर्य बड़े पादरियों की राजनीतिक स्थिति एवं अधिकारों के समर्पण से था, क्रान्तिकारी प्रस्ताव को इसी कारण वास्तविक महत्त्व प्राप्त है। जब चर्च के नेताओं को इस क्रान्तिकारी प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए सहमत करना असंभव सिद्ध हो गया तो यह स्पष्ट हो गया कि एक मात्र संभव हल समझौता था, तथा 1122 ई० में वॉर्म्स के समझौते का यथार्थ स्वरूप यही था।

यदि हम अब इस प्रश्न के दूसरे पक्ष को देखें, और यह पता लगाएँ कि किस प्रकार, एवं किस सीमा तक धार्मिक सत्ता लौकिक सत्ता पर अधिकारों का दावा तथा उनका प्रयोग करने लगी, तो यह प्रतीत होगा कि हम पुनः वस्तुनिष्ठ तथ्यों एवं उनके परिणामों का विवेचन कर रहे हैं। साम्राज्यिक सत्ता में सुधारवादी भावना के अभाव का परिणाम स्वाधीनता की माँग हुआ, तथा ग्रेगोरी सप्तम के मत में साम्राज्य में तथा फ्रान्स में भी लौकिक सत्ता न केवल सुधारों की विरोधी अपितु भ्रष्टाचार का वास्तविक केन्द्र थी, विशेषतः धर्म-विक्रय की जिसके कारण केवल अपराधी धार्मिक अधिकारियों पर ही आक्रमण करने के स्थान पर वह लौकिक अधिकारियों पर भी आक्रमण करने को प्रेरित हुआ। निस्संदेह यह एक नई नीति थी, क्योंकि सम्पूर्ण इतिहास की भाँति, व्यक्तिगत व्यक्तित्व की मौलिक अथवा निर्माणकारी शक्ति ने यहाँ भी महत्त्वपूर्ण या निर्धारक योगदान दिया, किन्तु यह नीति स्वयं में स्पष्ट तथा वास्तविक परिस्थितियों से संगत थी। निस्संदेह यह, यदि एक पूर्णतया नवीन वस्तु नहीं, तो कम से कम उस युग का एक क्रान्तिकारी कदम तो था ही कि राजा या सम्राट् को धर्म-बहिष्कृत कर दिया जाए, किन्तु यह कार्य धार्मिक सत्ता के मूलभूत सिद्धान्त, एवं उस युग की वास्तविक परिस्थितियों दोनों का प्रतिनिधित्व करता था। यह कार्य विवेकहीन था, किन्तु उसमें निहित परिणाम उससे अधिक दूरगामी थे, क्योंकि ग्रेगोरी के मत में धर्म-बहिष्कृत करने के अधिकार में पदच्युत करने का अधिकार भी निहित था।

यह विचार करने का कोई कारण नहीं कि ईसाई चर्च के सदस्य बने रहने का अधिकार

Scanned by CamScanner

छीने जाने पर राजा को पदच्युत करने के अधिकार का दावा करते समय ग्रेगोरी लौकिक मामलों में लौकिक सत्ता पर किसी सैद्धान्तिक अधिकार का दावा करना चाहता था; किन्तु वास्तव में ग्रेगोरी के कार्य में और उस कार्य के द्वारा धार्मिक सत्ता लौकिक सत्ता पर व्यापक एवं असीमित अधिकार का दावा कर रही थी, तथा यद्यपि ग्रेगोरी सप्तम से लेकर इन्नोसेन्ट तृतीय तक के पोपों ने किसी सीमा तक हेनरी चतुर्थ की मृत्यु के बाद भी, इस पर बल देने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया, तथापि यह सत्य है कि इस अधिकार का दावा किया था तथा इस दावे का परित्याग नहीं किया गया।

अब हम ऐसी स्थिति में पहुँच चुके हैं कि जहाँ हमें दूसरे प्रश्न पर स्पष्टतया लौटना चाहिए, वह प्रश्न यह है कि इस काल में कहाँ तक एक सत्ता का दूसरी पर प्रभुत्व का सिद्धान्त विकसित हुआ। यदि हमें भ्रम में पड़ने से बचना है तो हमें यहाँ पहले से ही कुछ भेद करने की सावधानी रखनी होगी। इसको प्रतिपादित किया जा सकता है कि एक सत्ता अपने महत्त्व एवं मूल गौरव में दूसरी से श्रेष्ठ थी, या इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि एक सत्ता का स्वरूप दूसरी से इतना उत्कृष्ट था, कि, यदि उन दोनों के बीच कोई विवाद उठता, तो उत्कृष्टतर सत्ता का मत माना जाता, अथवा इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि दोनों सत्ताओं में से एक दूसरी के अधिकारों का स्रोत थी, तथा उसके अपने क्षेत्र में भी उस पर सैद्धान्तिक रूप से सत्ता धारण करती रही थी।

इन मान्यताओं में से प्रथम सामान्यतः स्वीकृत थी। मध्यकालीन विचारक सामान्यतः यह मानते थे कि वे मामले जिनसे धार्मिक सत्ता का सम्बन्ध था लौकिक सत्ता के अधिकार के मामले से अधिक महत्त्वपूर्ण थे तथा धार्मिक पद का गौरव लौकिक पद से कहीं अधिक था। यह मत फ्ल्यूरी के ह्यू का है, तथा केटीनो के ग्रेगोरी जैसे कुछ लेखकों तथा यॉर्क ट्रेक्टेट के लेखक द्वारा प्रयुक्त वाक्यों के बावजूद इसका खण्डन अत्यन्त कठिन है।

दूसरी मान्यता एक और अधिक कठिन प्रश्न को उठाती है, क्योंकि मध्ययुग की सामान्य मान्यता यह थी कि प्रत्येक सत्ता का अपना भिन्न क्षेत्र है, और सिद्धान्ततः इस पर संदेह का प्रश्न नहीं उठता। किन्तु वास्तव में यह सत्य है कि सभी लौकिक एवं धार्मिक सत्ता ईश्वरीय नियमों तथा प्रकृति के नियमों के अधीन समझी जाती थी, तथा धार्मिक या लौकिक सभी कानून, जो इनके विरुद्ध थे अवैधानिक समझे जाते थे। किन्तु ईश्वर एवं प्रकृति के कानूनों को चर्च के कानूनों, या धार्मिक कानूनों से अभिन्न नहीं समझना चाहिए, हमने इस मामले पर इस ग्रन्थ की दूसरी पुस्तक में विस्तार से विचार किया है,[1] तथा वहाँ हमने यह प्रदर्शित किया है कि इसका बहुत कम प्रमाण है कि यह माना जाता था कि इन कानूनों में संघर्ष की दशा में धार्मिक सत्ता का निर्णय अंतिम था।

निस्संदेह यह सत्य है कि हमारे लिए मध्ययुगीन मनःस्थिति की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन है; हम अब भी बड़ी सीमा तक राज-सत्ता की उस संकल्पना से प्रभावित हैं जो चर्च या राजा में किसी निरंकुश एवं किसी सीमा तक स्वेच्छाचारी सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है, परन्तु जो मध्ययुग में पूर्णतया अज्ञात थी। एकमात्र राजसत्ता जिसे वे स्वीकार करते थे कानून की थी, तथा वह भी ईश्वर एवं प्रकृति के अधीन थी। उनकी दृष्टि में दोनों कानूनी व्यवस्थाओं के मध्य के संघर्ष का प्रश्न उससे कहीं भिन्न था जैसा कि आज हमारे

Scanned by CamScanner

लिए है। यथार्थ रूप में उनमें संघर्ष तभी संभव था जबकि एक सत्ता दूसरी के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती।

तो हमें तीसरी मान्यता के बारे में क्या कहना है? वास्तव में हमारे द्वारा परीक्षित साहित्य से यह स्पष्ट है, कि यदि धार्मिक सत्ता के लौकिक सत्ता पर उसके क्षेत्र में प्रभुत्व के बारे में कोई सिद्धान्त ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी में था, तो वह केवल ग्रेगोरी सप्तम के कुछ पत्रों में, या ऑग्सबर्ग के होनोरियस, या सैलिसबरी के जॉन में, और सम्भवतः केनोनिस्ट ऱ्यूफीनस में ही उपलब्ध होता है, क्योंकि हमारे द्वारा परीक्षित किसी भी अन्य लेखक में वह स्पष्टतया उपलब्ध नहीं होता। अतः सर्वप्रथम प्रश्न करना चाहिए कि क्या इस प्रकार का सिद्धान्त ग्रेगोरी सप्तम की रचनाओं में अन्तर्निहित है? सामान्य रूप से हम सोचते हैं कि ऐसा नहीं है।

यह दावे वस्तुतः व्यावहारिक रूप में क्रान्तिकारी थे, किन्तु यदि हम उन्हें समझना चाहें, तो हमें प्रश्न करना चाहिए कि सैद्धान्तिक रूप में ये क्या थे, तथा हम सोचते हैं कि सिद्धान्त पर्याप्त रूप में स्पष्ट हैं। ग्रेगोरी ने सम्राटों तथा राजाओं पर उसी धार्मिक अधिकार-क्षेत्र का दावा किया जैसा किसी भी अन्य लौकिक व्यक्ति पर, क्योंकि उचित कारण होने पर उसे उनको धर्म-बहिष्कृत करने, अर्थात्, निष्ठावानों के समाज से पृथक् करने का अधिकार था। उसने इससे यह निष्कर्ष निकाला कि उचित धार्मिक कारण होने पर तथा एक मात्र इसी कारण से उसे उनको धर्म-बहिष्कृत करने के साथ-साथ पदच्युत घोषित करने का भी अधिकार है, तथा उनके प्रति ली गई निष्ठा की शपथ को अवैधानिक घोषित करने का भी अधिकार है। यह सत्य है कि वह वास्तव में कहीं भी इसके समर्थन में प्रमाणों का विवेचन नहीं करता तथा कुछ संदिग्ध दृष्टान्तों को उद्धृत करने से अधिक कुछ नहीं करता किन्तु यह विचार करना तर्कयुक्त होगा कि उसके मत में ईसाई समाज में धर्म-बहिष्कृत शासक का स्थान होना असंभव था।

यह वैसा ही सिद्धान्त नही है जैसा कि यह दावा कि आध्यात्मिक सत्ता को, जिसका प्रतिनिधित्व पोप द्वारा किया जाता है—लौकिक मामलों में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त हैं। वास्तव में हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 1076 ई० से 1080 ई० तक उसका आचरण इसका स्पष्ट प्रमाण है कि वह इस प्रकार का दावा नहीं करता था तथा उसका कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं था। उसके लिए हेनरी तथा रूडोल्फ की स्थिति, केनोसा में हेनरी के दोषमुक्त कर दिए जाने के बाद से, जर्मन जनता द्वारा निश्चित किया जाने वाला मामला था। यदि उसने यह प्रस्ताव किया कि वह अथवा उसका प्रतिनिधि उस निर्णय में भाग ले, तो उसका कारण यह था कि उसे वैसा करने का निमन्त्रण था। हमारा यह कहने का अभिप्राय नहीं है कि ग्रेगोरी सप्तम का उन परिस्थितियों के बारे में वैसा ही स्पष्ट दृष्टिकोण था जैसा कि हमने इन शब्दों में व्यक्त किया है, किन्तु हमारा विचार है कि उसके आचरण में कुछ इस प्रकार की बात निहित है। ग्रेगोरी के कार्यों और शब्दों में निस्संदेह एक सिद्धान्त निहित है, किन्तु वह सिद्धान्त यह है कि धार्मिक सत्ता धार्मिक मामलों में उन लोगों पर भी जो लौकिक सत्ताधारी थे, उतनी ही पूर्ण थी, जैसे कि अन्य सभी मनुष्यों पर, तथा धर्म-बहिष्कार उनको सत्ताधारण के अयोग्य बना देता था; यह वह सिद्धान्त नहीं था कि लौकिक

Scanned by CamScanner

सत्ता धार्मिक से उद्भूत है, अथवा लौकिक मामलों में भी उसके अधीन है।

ऑग्सबर्ग के होनोरियस तक हम ऐसे किसी विचार को नहीं पाते। यहाँ हमें इस प्रकार की कुछ मान्यता उपलब्ध होती है। अंततः यहाँ हमें वह सिद्धान्त उपलब्ध होता प्रतीत होता है जो औपचारिक रूप से जिलेशियन सिद्धान्त से द्वैध से असंगत है। क्योंकि वह इस पर बल देता प्रतीत होता है कि धार्मिक सत्ता ही ईसा की एक मात्र एवं सच्ची प्रतिनिधि है, तथा लौकिक सत्ता उससे उत्पन्न हुई है। यह सत्य है कि यह मान्यता उसके द्वारा कॉन्सटेन्टाइन के दान के प्रसंग के कारण किसी सीमा तक भ्रमपूर्ण प्रतीत होती है। होनोरियस तथा नोनान्तुला का प्लैसीडस पहले लेखक हैं जिनके बारे में हम आश्वस्त होकर कह सकते हैं कि वे दान का अर्थ यह लगाते थे कि कॉन्सटेन्टाइन ने पोप को पश्चिम में सारी साम्राज्यिक सत्ता सौंप दी; बाद में इसी शताब्दी में केनोनिस्ट पेन्कापालिया (Pancapalea) ने ऐसी ही व्याख्या प्रस्तुत की।[2] तथा होनोरियस इसका अभिप्राय यहाँ तक समझता है कि कॉन्सटेन्टाइन ने साम्राज्य के सभी भागों पर से अपना सम्पूर्ण अधिकार त्याग दिया। तथापि यह धारणा होनोरियस की अधिक क्रान्तिकारी धारणा से संगत नहीं थी, कि मूल रूप में सभी राजनीतिक एवं धार्मिक सत्ता के थे, तथा लौकिक शासक की शक्ति भी उससे ही उद्भूत है।

जॉन आफ सैलिसबरी भी इसी मत का प्रतिपादक प्रतीत होता है, क्योंकि वह यह प्रतिपादित करता है कि दोनों तलवारों पर आध्यात्मिक सत्ता का स्वामित्व है, तथा उससे ही राजा अपनी तलवार प्राप्त करता है, राजा "धार्मिक सत्ता" का "मंत्री" अथवा "सेवक" है तथा धार्मिक पद के उस भाग का प्रशासन करता है, जो पुरोहित द्वारा करने के योग्य नहीं है। तथापि जॉन का यह वक्तव्य उसके ग्रन्थ में अकेला है, तथा यह किसी सीमा तक अनिश्चित है कि उसमें निहित सभी बातों पर बल देना उसे अभीष्ट था।

बर्नार्ड के उसी प्रकार के वाक्यांश, जो जॉन आफ सैलिसबरी के मन में वर्तमान हो सकते हैं, इतने आकस्मिक एवं आनुषंगिक हैं कि हम उनकी इस प्रकार व्याख्या नहीं कर सकते कि उसका यह मत था, तथा संत विक्टर के ह्यू के वाक्य इतने स्पष्ट हैं कि हम कोई निर्णय नहीं ले सकते। जहाँ तक हम जानते हैं, कि बारहवीं शताब्दी में केवल एक लेखक है जिसका दो सत्ताओं का विवेचन इस दिशा में प्रवृत्त प्रतीत होता है, तथा वह है ग्रेशियन के "डेक्रेटम" (Decretum) पर लिखने वाला केनोनिस्ट रूयूफीनस। हम इसके वाक्यांशों का द्वितीय खंड में विस्तार से विवेचन कर चुके हैं, तथा पुनः हम केवल यही कह सकते हैं कि वह ग्रेशियन के डेक्रेटम के इस वाक्यांश की व्याख्या करता प्रतीत होता है : "clavigero (i. e. petro), tarreni simul et celestis imperiiiure commisit" जिसका अर्थ वह यह बताता है कि किसी सीमा तक पोप को धार्मिक एवं लौकिक दोनों विषयों में ही अधिकार हैं, उसके शब्द यह भी सुझाते प्रतीत होते हैं कि वह इसका अर्थ इससे अधिक कुछ नहीं समझता कि सम्राट् के निर्वाचन की पुष्टि करना तथा यदि अपनी सत्ता का वे दुरुपयोग करें, तो उसे और अन्य लौकिक शासकों को ठीक मार्ग पर लाना पोप के अधिकार में था।[3]

होनोरियस, सैलिस्बरी के जॉन तथा रूयूफीनस की मान्यताएँ महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि

Scanned by CamScanner

वे एक नए सिद्धान्त के प्रथम दर्शन को सूचित करती हैं, एक सिद्धान्त जो कि चर्च के परम्परागत मत के विपरीत, चर्च में सत्ता की एकता की धारणा को स्थापित कर देता। अगली पुस्तक में हमें तेरहवीं शताब्दी में इस धारणा के इतिहास एवं महत्त्व का विवेचन करना होगा। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी के किसी लेखक ने इस धारणा को प्रस्तुत किया था; बारहवीं शताब्दी में यह होनोरियस तथा संभवतः सैलिस्बरी के जॉन, एवं रयूफीनस में उपलब्ध होती है, किन्तु यह ध्यान रखने की बात है यह केवल उनमें ही मिलती है।

संभवतः यह सुझाया जा सके कि हमें इसके साथ हैड्रियन चतुर्थ के फ्रेडरिक बारबरोसा को सम्बोधित पत्र की विचित्र घटना को जोड़ना चाहिए, जिसमें उसका यह अभिप्राय निहित होने की शंका की गई थी कि साम्राज्य पोप के अधीन एक जागीर है, तथा सम्राट् पोप के अधीन सामन्त है। यदि हम यह सोचें कि हैड्रियन चतुर्थ इस पर बल देना चाहता था, तो निस्संदेह इसका महत्त्व पोप पक्ष की नीति के विषय में होगा, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि हैड्रियन ने ऐसे दावे को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया था, अथवा इन शब्दों से इस प्रकार का अर्थ निकालने का स्पष्ट खण्डन किया था। किसी भी अर्थ में सामन्ती-प्रभुता का दावा धार्मिक सत्ता के लौकिक सत्ता की तुलना में मौलिक श्रेष्ठता के दावे से पूर्णतया भिन्न वस्तु होता।

इस प्रकार लौकिक सत्ता के अधिकारों के धार्मिक सत्ता से उद्भूत एवं उनके अधीन होने का सिद्धान्त, जहाँ तक उसका बारहवीं शताब्दी में अस्तित्व था, केवल मात्र एक व्यक्तिगत सम्मति थी जिसे एक अथवा संभवतः तीन महत्त्वपूर्ण लेखकों ने व्यक्त किया था; उसको चर्च में कोई अधिकृत रूप से स्वीकृत या सामान्य रूप से या व्यापक रूप से माने जाते हुए प्रदर्शित नहीं करना चाहिए। इसे किसी भी परिषद् या किसी भी पोप की सहमति नहीं मिली।

हमें अंततः प्रश्न करना चाहिए कि जिन सिद्धान्तों का हम विवेचन कर रहे हैं ग्यारहवीं तथा बारहवीं शताब्दी के वास्तविक सार्वजनिक जीवन में उनका यथार्थ रूप से कितना महत्त्वपूर्ण स्थान था। इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करते समय, हमें ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों एवं सिद्धान्तों तथा बारहवीं शताब्दी के उन लेखकों के सिद्धान्तों में जिनका हम अभी विवेचन कर रहे थे सूक्ष्म विभेद रखना चाहिए।

ग्रेगोरी सप्तम के कार्यों ने एक तूफान को जन्म देने में योग दिया जो कि कम से कम हेनरी चतुर्थ की मृत्यु तक चलता रहा, तथा पोपों द्वारा इस सिद्धान्त को कई शताब्दियों तक प्रतिपादित किया जाता रहा कि धार्मिक अपराध के कारण लौकिक शासक को न केवल धर्म-बहिष्कृत करने अपितु पदच्युत करने का भी अधिकार पोपों को है। तथापि इसका यही अभिप्राय नहीं है कि पदच्युत करने का भी अधिकार स्वीकार कर लिया गया था, संभवत पदच्युत करने के अधिकार को गंभीरतापूर्वक चुनौती नहीं दी गई थी, किन्तु पदच्युत करने का अधिकार एक भिन्न वस्तु थी, तथा कई व्यक्ति इसे हेनरी चतुर्थ के काल में भी अस्वीकार करते थे। सत्य यह है कि किसी राजा या सम्राट् के विरुद्ध अन्य कारणों से जब कभी असन्तोष तथा विद्रोह होता था, उस दशा को छोड़कर उसका सामान्यतः कोई

Scanned by CamScanner

महत्त्व नहीं था। हम इस मामले का अगली पुस्तक में जब हम तेरहवीं शताब्दी का वर्णन करेंगे अधिक पूर्णता से विवेचन करेंगे। जहाँ तक बारहवीं शताब्दी का प्रश्न है इस मामले का बहुत थोड़ा महत्त्व था।

होनोरियस, सैलिस्बरी के जॉन तथा ऱ्यूफीनस के सिद्धान्त जहाँ तक बारहवीं शताब्दी का प्रश्न है, केवल कुछ व्यक्तियों के सिद्धान्त थे, जीवन की वास्तविक दशाओं एवं तथ्यों से उनका कोई सम्बन्ध नहीं था; उनके द्वारा स्वयं उनसे कोई व्यावहारिक निष्कर्ष नहीं निकाले गए, तथा यह सोचने का भी कोई आधार नहीं है कि उस युग के विचारों में भी उनका कोई महत्त्वपूर्ण स्थान था। वास्तव में ठीक उसी समय इंग्लैंड तथा फ्रांस के महान् प्रशासकों के हाथों में राज्य की सत्ता एवं अधिकार सुगठित एवं विस्तृत हो रहे थे, तथा यह विचार करना तर्कहीन है कि महान् राजा एवं मंत्री यह स्वीकार करते थे कि उनको प्राप्त अधिकार पोप द्वारा प्रदत्त हैं। सत्य यह है कि दोनों सत्ताओं के अधिकारों की ठीक सीमारेखा में स्पष्ट विभेद कर पाना अत्यन्त कठिन था, किन्तु यह विभेद सामान्यतः किया जाता था, तथा दैवी व्यवस्था का एक अंग समझा जाता था।

हमारे द्वारा वर्णित युग में दोनों सत्ताओं के सम्बन्धों के सामान्यतः स्वीकृत सिद्धान्तों की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति टूरनाई के केनोनिस्ट स्टीफेन (Canonist Stephen of Tournai) के शब्दों में मिली है, जो कि बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिख रहा था। एक राष्ट्र मंडल एवं एक राजा के अधीन दो जनताएँ, दो जीवनचर्याएँ, दो सत्ताए, तथा द्विविध कार्य क्षेत्र है। वह राष्ट्रमंडल चर्च है, दो जनताएँ चर्च की दो व्यवस्थाएँ हैं·····अर्थात्, पादरी एवं अयाजक वर्ग, दो जीवनचर्याएँ धार्मिक, आत्मिक एवं लौकिक हैं; दो सत्ता पुरोहित वर्ग तथा राजा हैं; द्विविध कार्यक्षेत्र दैवी एवं मानवीय कानून हैं। प्रत्येक को उसका देय दो, तथा सभी वस्तुओं में सामाञ्जस्य हो जाएगा।[4]

संदर्भ

1. कृ० देखें खण्ड 2।
2. Cf. vol. ii.
3. Cf. vol. ii.
4. Stephen of Tournai, 'Summa Decreti', Introduction.

Scanned by CamScanner

Texts of Authors Referred to in Volume IV

Abbe of Fleury, 'Collectio Canonum' — Migne, Patrologia Latina, vol 139.

Adalbero, 'Carmen'—Migne, Patrologia Latina, vol. 141.

St. Adalbert, 'Vita'—Migne, Patrologia Latina, vol 137.

Alexander II, Epistles—Migne, Patrologia Latina, vol. 146

'Annales Hildesheimenses'—Monumenta Germaniae Historica Scriptores, vol. 3.

Annales Paderboraenses—Monumenta Germanie Historica, Scripptores, vol. 3.

Annales Romani—Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol. 5

Anonimus Haserensis — Monumenta Germaniae Historica. Scriptores, vol. 7.

Anselm, 'Continuator Sigeberti Gemblacensis' Monumenta Germaniae Historica, vol. 7.

Anselm 'Historiae Dedicationis Ecclesiae S. Remigii',—Migne, Patrologia Latina, vol. 12.

Anselm of Lucca, 'Liber contra Wibertum' — Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol 1.

Arnulf, 'Gesta Archiepiscoporum Mediolanensium'—Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol 8.

Atto of Vercelli, 'De Pressuris Ecclesiasticis',—Migne, Patrologia Latina, vol. 137.

St. Bernard, 'Vita'—Migne, Patrologia Latina, vol. 185.

····'De Consideratione'—Migne, Patrologia Latina, vol. 182.

·····Epistles—Migne, Patrologia Latina, vol 182.

Bernard of Constance, Epistola, in Bernald, Libellus II — Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 2.

Bernard of Constance, 'Liber Canonum contra Heinricum Quartum'... Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 1.

Bernald, 'Libelli' — Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 2.

Berthhold, 'Annales' — Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol. 5.

Bontzo, 'Liber ad Amicum' Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 1.

Scanned by CamScanner

Bruno, 'De Bello Saxonico' — Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol 5.

Bruno of Segni, 'Epistola' Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol 2.

Calixtus II., Epistles Migne, Patrologia Latina, vol 163

"Casuum Sancti Galli, continuator"—Monumenta Germaniae Historica Scriptores vol 2.

Clement II, Epistles—Migne, Patrologia Latina vol. 142.

'Codex Udalici' in Monumenta Bambergensia, ed. P. Jaffe.

'Concordia Beneventanum'—in J M. Watterich, 'Pontificorum Romanorum Vitae' vol 2.

Constitutiones — Monumenta Germaniae Historica, Legum, sect. iv., vol. 1.

'Continuator Reginonis'— Monumenta Germaniae Historica, Scriptores vol. 1.

Councils—Mansi, Concilia.

'De Ordinando Pontifice' Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 1.

'De Unitate Ecclesiae Conservanda'—Monumenta Germaniae Historica 'Libelli De Lite', vol. 2.

Deusdedit, 'Collectior Canonum'—ed. V. W. von Glanvell, 1905.

'Libellus contra invasores et simnoniacos'—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 2.

'Dicta cuiusdam de discordia Papae et Regis'—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 1.

'Disputatio vel Defensio Paschalis' Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol 2.

Eadmer, 'Historia Novorum', Rolls Series

Ekkehard. 'Chronicon'—Monumenta Germaniae Historica, Scriptores. vol. 6.

Fulbert of Chartres, Epistles—Migne, Patrologia Latina, vol. 141.

Gebhardt of Salzburg, 'Epistola' — Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 1.

Gerbert, Epistles—ed. J. Havet, 1889.

Gerhoh of Reichersberg—Monumenta Germaniae Historica, 'Cibelli De Lite', vol 3.

'Gesta di Federico I'. ed. Monaci

Godfrey of Vendome, 'Libelli—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol 2.

Gregory V., Epistles—Migne, Patrologia Latina, vol. 137.

Gregory VII., 'Registrum' ed. Jaffe, 'Bibliotheca Rerum Germanicarum, vol. 2.

Scanned by CamScanner

Gregory of Catino, 'Orthodoxa Defensio Imperialis' -- Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 2.
Gunther, 'Ligurinus'—ed. Dumge
Hatto of Maintz Epistola – Mansi, Concilia, vol 18 A., p. 204.
'Historia Pontificalis' – Monumenta Germaniae Historica Scriptores, vol 20.
Honorius, of Augusburg, Summa Gloria' Monumenta Germaniae Historica, Libelli De Lite', vol. 3
Hugh of Fleury, 'Tractatus de Regia Potestate et Sdcerdotali Dignitate Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli de Lite', vol. 2.
Hugh of St. Victor, 'De Sacramentis' -- Migne, Patrologia Latina, vol 176.
Hugo Cantor, Historia', Rolls Series
Hugo Metellus Certamen Papae et Regis' — Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 3.
Humbert of Silva Candida, 'Adversus Simoniocos'—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol 1.
Hunold 'Carmen de Anulo et Baculo'--Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De ite', vol. 3.
Ivo of Chartres. Epistolae' — Monumenta Germaniae Historica 'Libelli De Lite', vol. 2.
John XIII., Epistles – Migne, Patrologia Latina, vol. 135
John of Salisbury 'Policraticus'—ed C. C I. Webb 1909.
Lambert of Herself, 'Annales'—Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol. 5.
Lanfrance, 'Vita'—Migne, Patrologia Latina, vol 150
Leo IX., Epistles—Migne, Patrologia Latina, vol 143.
—'Vita'—Migne, Patrologia Latina. vol 143.
St. Lietbert, 'Vita'—Migne, Patrologia Latina, vol. 146.
uitprand of Cremona,'De Rebus Gestis Ottonis'—Monumenta Germaniae Historica', Scriptores, vol 3
Manegold, 'Ad Gebehardum' Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 1.
'Monumenta Bambergensia' — ed. P. Jaffe, 'Bibliotheca Rerum Germanicarum', vol. 5.
'Monumenta Corbeiensia'—ed. P. Jaffe, 'Bibliotheca Rerum Germanicarum', vol. 1.
'Narratio de electione Lothari in Regem Romanorum' - Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol. 12
Nicholas II., Epistles—'Monumenta Migne, Patrologia Latina, vol. 143
Otto of Freising, 'Gesta Friderici' — Monumenta Germaniae Historica,

Scanned by CamScanner

Scriptores, vol. 20.
Paschal II., Epistle — 'Monumenta Moguntina', P. Jaffe, 'Bibliotheca Rerum Germanicaru', vol. 3.
Peter Crassus. 'Defensio Heinrici Regis'—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 1.
Peter Damian, 'Disceptatio Synodalis',—Monumenta Germaniae Historica, Libelli De Lite', vol 1.
——Epistles and Sermons—Migne, Patrologia Latina, vol 144.
——'Liber Gratissimus'—Monumenda Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol 1.
——'Opuscula'—Migne, Patrologia Latina, vol. 145.
Placidus of Nonantula, 'Liber de Honore Ecclesiae'—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol 2
Rangerius, 'Liber de Anulo et Baculo', Monumenta Germaniae Hlstorica, 'Libelli De Lite, vol 2.
Ratherius of Verona, 'Praeloquirum' – Migne, Patrologia Latina, vol. 136.
'Regesta Pontificum'—ed Jaffe, Wattenbach
Rodolphus Glaber, 'Historiae'- Migne, Patrologia Latina, vol 142.
Rufinus, 'Summa Decretorum' ed. H Singer
Siegfried of Maintz, Epistles — Migne, Patrologia Latina, vol 146, and 'Monumenta Bambergensia'. Jaffe, 'Bibliotheca Rerum Germanicarum', vol 5.
Sigebert of Gembloux, 'Chronicon'—Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol. 6.
——'Leodicensium Epistola adversus Paschalem Papam'—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 2.
Silvester II.. 'De Informatione Episcoporum' Migne, Patrologia Latina, vol. 139.
Stephen of Tournai, 'Summa Decretorum'—ed. J. F. von Schulte.
Suger, 'Vita Ludovici VI',—Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol 26.
Thietmar of Merseburg, 'Chronicon'—Monumenta Germaniae Historica, Scriptores, vol. 3.
'Tractatus Eboracenses'—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De ite', vol. 3.
'Tractatus de Investitura Episcopali' Monumenta Germaniae Historica 'Libelli De Lite', vol. 2.
St, Udalcicus, 'Vita'—Migne, Patrologia Latina, vol. 135.
Urban II,, Epistles—Migne, Patrologia Latina, vol 151.
Wenrich of Trier, 'Epistola'—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 1.

Scanned by CamScanner

Wido of Ferrara, 'De Seismate Hildebrandi'.—Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol. 1.

Wido of Osnaburg, 'Liber de Controversia Hildebrandi et Heinricci' Monumenta Germaniae Historica, 'Libelli De Lite', vol 1.

William the Conqueror, Epistle—in Gregory VII,, 'Epistolae Extra Vigantes', Migne, Patrologia Latina, vol 148.

William of Malmesbury, 'Gesta' Rolls Series

Wippo, 'Vita Chuonradi',—Migne, Patrologia Latina, vol. 142

Scanned by CamScanner

Index Of Names Referred To In Volume IV

Abbo, Abbot of Fleury
Adalbero, nephew of St. Udalric
Adalbero, Archbishop of Rheims
Adalbert, Archbishop of Maintz
Alexander II, Pope
Alexander III, Pope
Altmann, Bishop of Passau
Ambrose, St.
Ambrosiaster
'Annales Romani'
'Annales of Hildesheim'
Anselm, Bishop elect of Lucca
Anselm of Canterbury
Anselm Monk of Rheims
Aquileia
Arnold of Brescia
Arnulf, Archbishop of Rheims
Arnulf, historian of Milan Church
Arnulf, Bishop of Auxonne
Atto, Bishop of Vercelli
Augusburg
Avisgaudus
Bamburg, Bishop of
Benedict V
Benedict IX
Benedict X
Beneventum, Treaty of
Bernald
Bernard of Constance
Bernard St.
Bernheim E.
Berthold
Besancon
Bonizo, Bishop of Sutri
Breyer, R.
Brixen, Council of
Bruno of Toul
Bruno, Pope Gregory V
Bruno, Bishop of Segni
Bruno, 'De Belle Saxonico'
Burchardt, Count
Cadalous of Parma, Antipope
Calixtus II, Pope
Cannossa
Cachulfus
Celestine I Pope
Clement II
Clement, Antipope
Clermont, Council of
Cluny, Abbey of
Conrad II, Emperor
Conard, son of Henery IV
Conard III
Constance, Treaty of
Constantine I
Constantine, 'Donation of

Scanned by CamScanner

Corsica
Councils of
Troslianum,
Augusburg
Frankfurt
Paris
Maintz
Rheims
Cremona
Rome
Sutri
Guastalla
Lateran
Nordhausen,
Pavia
Toulouse
Deimbert, Archbishop of Sens
Damasus II (Pope of Brixen), Pope
'De Unitate Ecclesiae Conservenda'
'De Ordinando Pontifice'
Deusdedit, Cardinal
'Dictatus Papae'
'Dispitatio vel Defensio Paschalis Papae'
Dummler E
Ecclesiastical and secular authorities—
Gelasius' doctrine
Otto III
Conrad II
Leo VIII
Benedict V
Leo IX
Peter Damian
Gregory VII
Elster, Battle of
Eskil of Lund
Eugenius III (Pope)
Faenza
Fredrick I, Emperor
Fulbert, Bishop of Chartres
Gebhardt, Archbishop of Salzburg
Gebhardt, Bishop of Eichstadt (Pope Victor II),
Gelasius I
Gelasius II, Pope
Gerhoh of Reichersberg
Gierke, Otto von
Glaber, Rodolphus
Godfrey, Abbot of Vendome
Gotofrid, elected Archbishop of Milan
Grado
Gregory of Catino
Gregory I
Gregory V Pope.
Hermann, Bishop of Metz
Hermann, Archbishop of Cologne
Hermann of Salm, elected King of Germany
Hildebrand
Honorius of Augusburg
Honorius II, Antipope
Hugh of St. Victor
Hugh King of Italy
Hugh Archbishop of Lyons
Hugh of Fleury
Hugo Metellus
Humbert, Cardinal of Silva Candida
Hunald

Scanned by CamScanner

Innocent I, Pope
Innocent II, Pope
Isidore of Seville
Isoceannus, Archbishop of Lyons
Ivo, Bishop of Chartres
John IX Pope
John XII Pope
John XIII Pope
John XV Pope
John XIX Pope
John of Salisbury
Kuno, Cardinal
Lambert of Hersfelo
Lanfranc, Archbishop
Leo I, Pope
Leo III, Pope
Leo VIII, Pope
Leo IX, Pope
Liege, Attack by Paschal II
Lietbert Bishop of Cambral
Lothair I
Lothair III
Louis the Pious
Luitprand, Bishop of Cremona
Maccabean Period
Maintz, Councilof
Manegold of Lautenbach
Martin, St. of Tours
Maurice, Archbishop of Bruges
Megenard
Merseburg
Milan Archbishopric
Mirbt, C.
Nicholas II Pope
Nithard, Bishop of Liege
Odoramnus, monk of St. Peter at Siena
Otto I
Otto III
Papal deposition—
John XII
Benedict V
Gregory VI
Henery IV
Papal election—
Leo VIII
John XIII
Clement II
Damasus II
Leo IX
Victor II
Stephen IX
Benedict X
Nicholas II
Paschal II Pope
Paschal Antipope
Patrician of Rome
Pavia, Council of
Peiser, Cerson
Peter Crassus
Peter Damian
Peter Leonis, Prefect of Rome
Peter Leonis, Cardinal
Peter, St Abbey of
Philip I, King of France
Palacidus of Nonantula
Poppo of Brixen
Rainald Bishop of Angers
Rangerius, Bishop of Lucca
Ratherius, Bishop of Verona
Reigino's 'Chronicle'
Rodolgus Glaber

Scanned by CamScanner

Rudolph of Suabia
Rufinus
Saltet, Abbe Louis
Sancho King of Aragon
Sigebert of Gembloux
Silvester II, (Gerbert) Pope
Stephen II, Pope
Stephen of Tournai
Suabian revolt against Henery
Suidger of Bamberg
Theobald, Count of Chartres
Theodric, Bishop of Verdun
Theophano, Empress widow of Otto III
Thietmar of Merseburg
Toulouse Council of
'Tractatus de Investitura Episcoporum
'Tractatus Eboracenses'
"Transmarinum imperium"
Trier, Archbishop of
Troslianum, Council
Udalric, St.
Urban II Pope
Verdun
Victor II
Victor III
Victor IV, Pope
Vincent, St. abbey of
Wazo, Bishop of Liege
Wenrich of Trier
Werner, Count
Wibert, Archdeacon of Toul
Wido, Bishop of Ferrara
Wido of Osnaburg
Wiger, Archbishop of Ravenna
Willam of Champeaux, Bishop of Chalons
William I, the Conqueror
Wippo, author of 'Life of Conrad I'
Worms, Settlement of
Worms, Council of
Wurzburg

Scanned by CamScanner